एक लंबी अवधि के बाद, अभी-अभी मेरी दो कृतियाँ—आवारों की दुनिया और दर्द की तस्वीरें—आपके सम्मुख आ चुकी हैं, यह मेरी सबसे अंतिम [अभी के लिए मैं इसे अंतिम ही कह लूं] रचना है। इसके सृजन के मूल में जिनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन अखंड रूप से विद्यमान रहे हैं, वे हैं हमारे साहित्यिक-ऋषि आदरणीय भाई श्री शिवपूजन जी सहाय। आपका मुझ पर सदा से छलकता सा स्नेह रहा है, आपकी उद्बोधक वाणी मेरे लिए क्लैव्यं मा स्मगम'''मामनुस्मर युद्ध च'''की याद दिलाती हुई मुझे अनुप्राणित करती रही है। उसी का परिणाम है कि जो लेखनी पाँच वर्षों से एकांत विश्राम ले रही थी, वह पुनः हाथ में न आती। आज श्रद्धा-पूर्वक उनके प्रति मैं नतमस्तक हूँ।

बचपन से पढ़ने की जो प्यास लगी, वह अब तक न बुझी, फिर लिखने की प्रवृत्ति ने होड़ बदा, मैं उस प्रवृत्ति-प्रवाह में बहता चला। क्या लिखता चला, मुझे स्वयं पता नहीं, पर अविराम गति में लिखता चला। तब भी नहीं जानता था कि मैं क्या लिख रहा हूँ, अब भी मैं पा नहीं रहा कि लिखना मेरे लिए इतना प्रिय क्यों है! प्रस्तुत कृति का प्रणयन उसी स्वाभाविक प्रवृत्ति का एक मूर्त्त रूप है।

साहित्य अपने समय का अनुगामी रहा है, साहित्य-स्रष्टा प्रयत्न करके भी अपने को उससे विलग नहीं रख सकता, मैं भी यहाँ अछूता न रह सका। फिर जान-बूझकर या अनजान में, मुझसे जैसी-कुछ रूप-सृष्टि संभव हो सकी है, वह आपके सामने है। ये रूप आपको भाएँगे ही—मैं जोर देकर नहीं कह सकता। फिर भी आपने मेरी अन्य कृतियों की तरह इसे पसंद किया तो वह आपका सौजन्य होगा और मेरा सौभाग्य।

पटना, ५-५-४६ —अनूप

प्रथम परिच्छेद

डा० शांति-स्वरूप लंबी अवांध तक एक बड़े शहर के हॉस्पिटल से सिविल-सार्जन का कार्य-भार संपादन कर प्रतिष्ठा के साथ अलग हट गए। अपने कार्यकाल में यश के साथ अच्छी संपत्ति की अर्ज्जन की, बड़े अच्छे बंगले बनवाए, बाग लगाया, अपने जन्म-स्थान के गाँव के आस-पास बहुत-सी जमीन खरीदी, उसी गाँव में एक उम्दा पुस्तकालय-भवन बनवाकर, अच्छी-खासी पुस्तकों से उसे सुसज्जित किया और अपनी डीह पर एक अच्छा आलीशान मकान बनवाया। आज जब शहरों में लोगों की अपार भीड़ अस्त-व्यस्त-सी दीखी, तभी उन्होंने निश्चय किया कि शांति-पूर्वक जब तक वह जीवित हैं, उन्हें उसी दिहात की ही शरण लेनी चाहिए और ऐसा विचार कर, एक दिन, अचानक वे अपने गाँव की ओर चल पड़े।

डा० शांति-स्वरूप अब शहर के नहीं—गाँव के एक सभ्य किसान हैं। किसानों के साथ उनकी अभिन्न आत्मीयता है, हृदय का बंधुत्व है, शालीनता है। आज उन्हें देखकर कोई नहीं कह सकता कि कभी उनका शहर के साथ घनिष्टता रही हो। वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, बैठना-उठना—सभी बातों में शिष्टता, सरलता—जैसे सादगी ही इनके जीवन की प्रिय वस्तु रही हो, जैसे अकृत्रिमता किसी ओर से भी उन्हें घेरने में कभी

समर्थ न हो सकी हो। यही कारण है कि, जब से वे अपने गाँव में आ बसे तबसे वे सभी के प्रिय पात्र हो उठे—खास कर उनके, जो सब तरह से अपदस्थ समझे जाते हैं, जो सब तरह से त्रस्त हैं, संत्रस्त हैं, दीन हैं, दुखी हैं, अकिंचन हैं,—ऐसे व्यक्ति जिन्होंने सुख को सुख कहकर कभी स्वीकार न किया, जिन्होंने हँसते दिन और इठलाती रातों के रंगीन सपने कभी न देखे, जिनकी बुभुक्षा को परिश्रम का पसीना न पूरा कर सका, जिनकी प्यास सदैव अन-बुझी-जैसीही कंठ को क्लेश देती रही।

मगर शांतिस्वरूप इतनों के प्रिय पात्र होकर भी क्यों राजा बाबू के लिए विष का काँटा समझे गए, यह न तो डा० स्वरूप स्वयँ कह सकते हैं, न उनके अन्य दूसरे ग्रामीण बन्धु ही! जब कभी कोई डा० साहब के पास आ ओठों में इसका कारण उनसे पूछ बैठता है तब वे हँसकर इतना ही कह देते हैं— भाई, यह तो मनुष्य का स्वभाव है। यदि मैं उन्हें न अच्छा लगता हूँ तो मैं क्या करूँ ?—और वह बात वहीं-की-वहीं शेष हो जाती है।

मगर बातें शेष नहीं हो पातीं। राजा बाबू गाँव के एक दबंग जमींदार हैं। उनकी अपनी एक शान है। रात को दिन और दिन को रात वह बनाना जानते हैं। हाकिम-हुकामों में उनकी बड़ी पैठ है। आए दिन एक-न-एक जलसा उनके दरबार में हुआ करता है। उनके साथ बैठने-उठने वाले अपनी एक प्रतिष्ठा और धाक समझते हैं। उनमें जी-हुजूरों की भी कमी नहीं। जी-हुजूरी इसलिए कि अन्य दूसरे लोग उससे भय खायँ, उसके लिए सभी तरह के रास्ते खुले रहें। वे नहीं चाहते कि उनके रास्तों में कोई रोड़ा बनकर पड़ा रहे, वे रोड़े को उठाकर दूर फेंक देना

चाहते हैं और इतनी दूर कि फिर वह वहाँ आने की हिम्मत न करे, वह चूर-चूर होकर धूल बन जाय। हाँ, उनके सामने जो-भी कुछ रहें, धूल बनकर ही रहें। इससे ज्यादा किसी का अस्तित्व वे देख नहीं सकते। जब उनके दरबारियों की इतनी चलती-बनती है, तब खुद राजा बाबू के विषय में और कुछ कहना व्यर्थ है। राजा बाबू अब तक गाँववालों को इसीरूप में रखते आ रहे हैं। जैसे वे रहने वाले ग्रामीण निरा धूल हों—धूल से अधिक उनका मूल्य नहीं। जैसे वे जीवित मृत्यु की प्राण-हीन, किन्तु हिलती-डुलती हुई प्रतिमा हों।

मगर यहीं पर एक बड़ा प्रभेद है। जो एक के लिए धूल से अधिक अस्तित्व नहीं रखता, वही दूसरे के लिए विश्वात्मा का एक अंश विशेष है। वह अंश विशेष ही नहीं—वह तो स्वयँ उनका उपास्य है, वही तो उसका नारायण है। डा० स्वरूप वैज्ञानिक हैं सही, पर उनमें विज्ञान गौण है, और ज्ञान प्रधान है। वे मस्तिष्क से किसी का मूल्य निर्द्धारित नहीं करते—हृदय से करते हैं। हृदय ही इनकी जैसी अपनी वस्तु हो, मस्तिष्क की प्रधानता वे स्वयँ स्वीकार नहीं करते। फिर भी मस्तिष्क उनका उतना पुष्ट और सबल है जितनी उनकी देह-यष्टि। मगर वह सदैव से हृदयवान ही अधिक रहते आ रहे हैं। इससे इनकी आत्मा बलवती रही है। इसीसे वे सदैव प्रसन्न- चित्त हैं। आपद्-आशंकाओं की झंझा में निर्वात-दीप-शिखा की तरह अडिग, हँस-कर दुनिया में चलनेवाले, दुनिया को सदैव सजीव की तरह मानने वाले। जीव मात्र को विश्वात्मा का अंश समझना और समझ कर उनके प्रति प्रेममय, ८ ... [illegible]

स्वभाव-सा हो गया है। फिर जहाँ एक ही परिधि के ओर-छोर पर राजा बाबू और डा० साहब रह रहे हों—वहाँ मनका मेल तो दूर की बात, प्रभेद की प्रमुखता ही अधिक निकट है। पर यह प्रभेद राजा बाबू की ओर से चाहे जैसा हो, जिस कारण हो, डा० स्वरूप अपने हृदय से उसे प्रभेद नहीं मानते। वह समझते हैं कि जब तक उनकी ओर से कोई भूल नहीं होती तब तक दूसरों से हानि होने की संभावना नहीं। अगर हो भी तो उसके लिए दुःख क्या ?

इसलिए डा० स्वरूप अपने जीवन की गति में निर्विघ्न बहते जा रहे हैं। उन्हें इधर-उधर, दायें-बाएँ, घूम-घूम कर देखना पसंद नहीं—अपने रास्ते पर, दृष्टि को सामने की ओर रखे चलना ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है। उन्हें न किसी की शिकायत या शिकवा की पर्वाह है और न मान-सम्मान की प्यास। उन्हें तो शांति चाहिए और शांति का निःश्वास निर्द्वंद्व वह ले रहे हैं। वे इतना ही जानते हैं, वे इतना ही चाहते हैं। उनका काम अपनी गति से चल रहा है। वे प्रातः उठते और नित्य-नैमेत्तिक कार्यों से छुट्टी पाकर वायु-सेवन को निकल पड़ते—निकल पड़ते बड़ी दूर तक—गाँव से बाहर—खुले मैदान में—जहाँ हरे-भरे खेत-ही-खेत नजर आते। उन्हें यह हरियाली बहुत भाती और उषा कालीन हरियालियों पर जब बाल सूर्य की सुकमार किरणें अपने मुसकानों के फुहारें बिखेर देतीं, तब वह ज्ञान-तपस्वी डा० स्वरूप अपने निर्निमेप नेत्रों से उस सुषमा को अपने आप में भर कर आत्म विभोर हो उठते हैं। लगता है जैसे उन्हें अपने स्वरूप का ज्ञान भी उस क्षण नहीं रह पाता। पर कौन कहता है, वे सचमुच

अपने को उस समय अधिक खो देते हैं या उसी समय अपने आपको और भी अधिक उज्जीवित और भी अधिक प्राणवान—और और भी अधिक स्वरूपमय हो उठते हैं। जो भी हो, इन्हें यह प्रातः कालीन वायु-सेवन अधिक प्रिय है—और जब गाँव वाले प्रातः काल उठकर और कामों में लगे होते हैं, तभी वे देखते हैं कि, सूर्योदय की गति के साथ स्वयँ डा० साहब पूरब की ओर से टहल कर अपने स्थान पर आ रहे हैं।

मगर वे अपने स्थान पर आ भी नहीं पाते कि कभी तो रास्ते में ही कोई उनसे सामने पहुँच कर हाथ बांध खड़ा हो जाता है और सुनाता है कि, इसके घर में अमुक बीमार है, अमुक को अमुक रोग लग गया है, तब उनके लिए यह जरूरी हो जाता है कि, उसे चलकर वह देख ही लें क्यों न। और जब वह उस टोले में जा पहुँचते हैं तब सिर्फ उस बीमार को ही देख नहीं आते बल्कि उस आस-पास के घरों की खैर-कुशल जान लेना उनके लिए आवश्यक हो उठता है। इस तरह उनका काम प्रारम्भ हो जाता है। फिर तो घर लौट आने पर दिन-भर आने जाने वालों का क्रम बना रहता है। मगर यह उनका अब व्यवसाय नहीं—सेवा मात्र है। व्यवसाय के लिए दो एक डाक्टर-वैद्य उस गाँव में अवश्य हैं और उन्हें जब कभी इनकी राय या परामर्श की आवश्यकता बोध होती है तो वह बहुत प्रसन्न वदन उन्हें अपनी राय देते हैं। इस तरह उनकी जीविका को इनसे बल ही मिलता है, कुछ व्याघात नहीं। डा० साहब को अवश्य एक स्वप्न है—और वह स्वप्न है, ग्रामीणों को किस तरह वह प्रसन्न और स्वस्थ्य देख सकें। वे सोचते हैं—बीमारी

इतनी क्यों हैं ? क्यों लोग आए दिन एक-न-एक रोग के शिकार बन बैठते हैं। इन पर उनकी अपनी दृष्टि है और उसी दृष्टि से वे चाहते हैं कि किस तरह आमूल सुधार किया जाय। मगर अभी तक तो उनका अन्वेषण है, अभी तो प्रयोग आना ही चाहता है।

और उस प्रयोग में हाथ बटाने के लिए एक दिन जब अनायास ही उनकी एकलौती कन्या—अभया—एक सुसंस्कृता सुन्दरी अपने नागरिक जीवन की मधुरिमा लेकर मेडिकल कालिज की अंतिम परीक्षा में पास हो अपने पिता के पास आ पहुँची तब उस ग्रामीण नर-नारियों ने एक विस्मित दृष्टि से देखा—देखा कि यह जो अभी-अभी नारी-मूर्त्ति में उनके सामने है, वह क्या है ? वह नारी है या देवी या और कुछ ? और जो-कुछ वह है, वह कुछ कम कौतुकमयी नहीं, कम विस्मयात्मिका नहीं।

हाँ, अभया कौतुकमयी ही है, विस्मयात्मिका ही है—न केवल सौंदर्य में, लावण्य में, रंग की रमणीयता में, कमणीयता में ही, वरन् बुद्धि की प्रखरता में भी, विचार की गहनता में भी, साथ ही वय की चपलता में भी, तीष्णता में भी। एक शब्द में यदि कहा जाय तो कहा जा सकता है कि वह एक नारी- मूर्त्ति में अदम्य दुस्साहस है, झंझा है, वात्याचक्र है, सिंधु की गर्जन और भैरव की लास्य है।

और ऐसी अभया जब अपने पिता से कहती है—तुम यहाँ क्यों आए पिताजी, ये गाँववाले कितने उजड्ड हैं। न बैठने का शऊर, न बोलने का सलिका, आखिर ऐसी जगह कोई आदमी रह सकता है भला, तब उसके पिता हँसते हुए कहता है—यहीं तो आदमी रह सकता है, अभय, आदमी नाम का जीव यहीं रह

सकता है—दूसरी जगह नहीं। शहर में जो रहता है—वह तो निरा एक मशीन है। उसे उतनी फुर्सत कहाँ कि वह घूम कर देखे औरों को—औरों की वात तो दूर रहे, अपने आपको ही तो देखे, देखे कि वह क्या है, उसके जीवन का उद्देश्य क्या है, वह किधर जा रहा है और क्या करने जा रहा है। उतना उसे सोचने-विचारने का अवकाश कहाँ। आखिर वैसी जिंदगी किस काम की, जिसमें सरसता नहीं, नवीनता नहीं, न जीने की कोई साध, न मन की कोई हवस। ओह, वह भी कोई जीना है!

—जीना—आश्चर्य से अपने पिता की ओर देखती हुई हँस कर तव वह अभया पूछ वैठती है—यह क्या कह रहे हो, पिता-जी ,जिन्हें हम यहाँ देख रहे हैं, ये भी क्या जीवित हैं? क्या इन्हें जीवित कहना इसका उपहास करना नहीं है?

—उपहास!—डा० स्वरूप अपनी पुत्री के प्रश्नों को सुनकर कुछ क्षण तक मौन हो जाते हैं। उन्हें शीघ्र कुछ उत्तर देते नहीं बनता। अभया ऐसी नहीं हैं, कि उसे ऐसी-वैसी बातें कह कर भुला लिया जाय। वह कुछ क्षणों तक ऊहापोह में पड़े रहते हैं, फिर आप-ही-आप बोल उठते हैं—नहीं, उपहास मैं नहीं कर रहा, अभय, जो सत्य है, वही मैं कह रहा था। तुम देखती हो, ये कितने सूधे हैं, सरल हैं, निष्कपट हैं। जो दिलमें हैं, वही ओठों पर, यहाँ भीतर कुछ और बाहर कुछ—सो न पाओगी। यहाँ सच सच है और झूठ झूठ। ये सच को झूठ और झूठ को सच बनाना नहीं चाहते—नहीं जानते। यहाँ कपटाचार, छल-छंद नहीं। यहाँ आम को इमली कहकर नहीं पुकारा जाता। इतनी निष्कपटता तुम अन्यत्र न पा सकोगी। ये दुःख में रहना पसंद

करते हैं, पर सुख के लिए दूसरों की जेब नहीं कतरते। फिर जिसने जान-बूझ कर दुःख को अंगीकार कर लिया है, उसके सामने दुःख रह ही कहाँ गया, अभय। तुम इनके बाहरी स्तर को देख कर समझती हो कि ये रुखड़े हैं, अधिक कठोर हैं, उद्दण्ड हैं; पर नहीं, अगर तुम इनके अंतः प्रदेश में घुसकर एक बार देखने का प्रयत्न करो तो देखोगी कि ये कितने निर्मल, कितने स्निग्ध, कितने दयामय और कितने हृदयवान हैं। और जिसका हृदय निर्मल नहीं, स्निग्ध नहीं, दयामय नहीं, उसे क्या तुम मनुष्य कहोगी अभय ? तभी तो मैं कह रहा था......

अभया कुछ क्षण तक स्तब्ध रहकर अपने पिता की ओर देखने लगती है। फिर खिंची-खिंची-सी वह बोल उठती है—तुम्हें तो भीतर-भीतर की बातें ही अधिक प्रिय हैं, बाबूजी, तुमतो ऐसा कहोगे ही। अगर न कहते तो ऐसों के बीच आज तुम्हें धूनी रमाने की शायद जरूरत नहीं पड़ती। मगर...मैं...मैं...ओह, मैं बाबूजी माफ करो—मैं यहाँ जी न सकूँगी—हाँ, सच कहती हूँ—मैं जी न...

—यहीं तो जी सकोगी, बिटिया—यहीं तो...

और कहते-कहते डा० स्वरूप ठहाका मार कर हँस पड़ते हैं। अभया अपनी वक्रता लिए वहाँ से अन्यत्र चली जाती है। डा० स्वरूप उसकी ओर घूम कर देखते हुए हँसते-हँसते ही बोल उठते हैं—पागल है, पागल !

द्वितीय परिच्छेद

डा० स्वरूप के लगातार कई संतान हुई, पर सब-की-सब अकाल काल-कवलित हुई, अन्त में जो बची और बच रही है—अभया वही है। यही कारण है कि पिता का सारा स्नेह इसी पर केंद्रित है। अभया जैसी ही भूमीष्ठ हुई, माता चल बसी; मगर उसकी माता के देहावसान से डा० स्वरूप विचलित न हुए—न हुए इसलिए कि उनकी प्रियतमा भार्या ने अपनी धरोहर के रूप में प्रसूतिका गृह में ही, उस नवजात शिशु को सौंपते हुए उनसे कहा था—देखना, इसकी संभाल रखना। क्या हुआ—यह पुत्री है, पर पुत्र से कम यह ओजस्वी न होगी—इतना मैं कहे जाती हूँ—और डा० स्वरूप ने भी उस आसन्न मृत्युमुखी को आश्वासन के शब्दों में कहा था—पुत्र पुत्री का विभेद मेरे सामने कोई मूल्य नहीं रखता, सुखदे। तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारी थाती क्या होकर रहेगी—यह तो समय ही बतलायगा। काश, तुम जीवित रहतीं ......

और डा० स्वरूप ने सचमुच अपनी प्रतिज्ञा बड़ी प्रतिष्ठा के साथ निवाही। उन्होंने अभया को पाला-पोसा और अपने हृदय के रस से उसे संजीवित किया। उस आदर-यत्न से पाली-पोसी गई मातृ-हीना कन्या अभया ने जब दुनिया को देखा तब उसने पाया कि वह अपने आप में हँसती हुई—चाँदनी बिखेरती हुई,

सभी ओर से और सब तरह प्रसन्न है, दुख नाम की वस्तु वहाँ जैसे है ही नहीं; जो इच्छा की उसकी उसी क्षण पूर्त्ति। न कृपणता, न संकीर्णता, न उदासीनता, न कोई न्यूनता।

उन्होंने उसे उसी बचपन से पुरुष के रूप में रखा। उसे पुरुष रूप में रखना ही उनके जी को अधिक भाता, ढीला पजामा, कमीज,—यही उसकी पोशाक रहती। केश गर्दन तक आकर कटे हुए, बचपन से ही खूब दौड़ना-कूदना, उसके बाद घुड़सवारी. घुड़सवारी में होड़ बदना। वह अपने भी अच्छे सवारों में थे। यही कारण था कि अभया में पुरुष प्रकृति ही प्रधान रही; पर जन्मतः वह नारी है, इसलिए नारीत्व भी उससे कुछ दूर जा नहीं सकता। तीक्ष्ण तो वह थी ही, दर्जे में कभी किसी से पीछे न रही—न सिर्फ पढ़ने-लिखने में ही, वरन् लड़ाई-झगड़े में, मार-पीट में—किसी बात में उन्नीस नहीं—सदैव बीस ही रही। स्वभाव से उद्धत, चलने में तेज, बोलने में वाचाल, झगड़ने में जमीन-आस्मान को एक कर देने वाली, किसी की आँखें न सहीं, किसी का ताव न सहा, किसी की शान को अपनी शान के सामने बढ़ी हुई न देखा, ऐसी प्रखर थी वह।

और तभी तो उसके पिता ने उसका नाम अभया रखा—एकांत उपयुक्त।

और इस तरह वह कदम-कदम बढ़ते हुए, मंजिल-पर-मंजिल पार करते, बहुत कम उम्र में, बी० एस-सी० परीक्षा में सर्व प्रथम रही। तब उसके पिता ने एक निश्चिन्तता की साँस ली और उसे बुलाकर पूछा—अब क्या चाहती हो, अभय, जो चाहो—कहो…

—मैं डाक्टर बनूँगी।

—डाक्टर !—पिता हँस कर बोले—क्या बाप का पेशा अख्तियार करोगी, अभय, चीरना-फाड़ना......

—हाँ, चीरना-फाड़ना ही मुझे अच्छा लगता है बाबूजी। मैं जोड़ना क्या जानूँ। जोड़ना-तगड़ना मुझे अच्छा नहीं लगता। सच कहती हूं, बाबूजी, मुझे डाक्टर ही बनने दो।

—मगर, डाक्टर का काम जोड़ना-तगड़ना ही है, अभय, यह तुम्हें न भूलना चाहिए।—हँसकर डा० स्वरूप ने कहा।

—मगर, पहले तो चीरना-फाँड़ना ही होगा, बाबूजी, यह भी आपको याद रखना चाहिए—हँसती हुई ही अभया ने उत्तर दिया।

और पिता-पुत्री—दोनों हँस पड़े—और हँसते-हँसते ही पिता ने कहा—तो उसे भी पूरा कर लो, बेटी। मैं रोकूँगा नहीं।

और आज, फल-स्वरूप, अभया एम० बी० बी० एस परीक्षा में सफल तो रही ही, सर्जरी में सर्व प्रथम रही।

जो एक दिन मारने-पीटने में पटु थी, आज सर्जरी के तेज अस्त्रों को चलाने में उतनी ही दक्ष, उतनी ही पटु और उतनी ही निष्णात है।

और सर्जरी में निष्णात उस अभया ने जब अपने पिता से, एक दिन, पूछा कि अब मैं क्या करूँ? क्या इतने दिनों की तपस्या, यों ही, इस दिहात में व्यर्थ जायगी? पिताजी, क्या कहते हो? तब उस चतुर पिता ने उत्तर में कहा—तपस्या व्यर्थ की चीज नहीं हुआ करती, बेटी। जिस चीज के लिए तुम्हारी वह अनवरत तपस्या थी वह तो तुमने पूर्ण कर ली है। रहा अब उसका कार्य रूप में संचालन, सो वह भी हो लेगा। तुम्हें उसके

लिए चिन्ता न करनी पड़ेगी। और अगर उसका संचालन न भी करना पड़े तो इससे क्या? विद्या यों व्यर्थ की चीज नहीं है, अभय! वह तो मनुष्य तन का एक शृंगार है—शोभा है। तुम अभी दिहात की बात कह रही थीं। आज दिहात में ही तो तुम-जैसे डाक्टरों की आवश्यकता है। जहाँ के लोग पैसे के अभाव में अपनी चिकित्सा नहीं करा सकते, जहाँ के लोग यह नहीं जानते कि रोग कहाँ से, कैसे और क्यों फूट निकलते हैं और उनसे बचने के लिए उन्हें क्या करना चाहिए। आज उनकी आँखें खोलना क्या कम बड़ी बात है? इससे बढ़कर तुम्हारी विद्या का सुन्दर सदुपयोग और कहाँ हो सकता है? अभया मैं चाहता हूं कि, वहाँ के लोग स्वास्थ्य का साधारण ज्ञान रखें, उन्हें यह बताया जाय कि रोग की उत्पत्ति कहाँ से होती है और किस तरह उनसे उन्हें बचाया जा सकता है। क्या यह काम कुछ सामान्य है, अभय? मगर, खैर, अभी-अभी तुम बहुत परिश्रम कर आई हो, बेटी, अभी तो तुम्हें कुछ दिनों के लिए पूरा आराम चाहिए। फिर देखा जायगा। काम की क्या कमी है?

डा० स्वरूप बोल कर चुप हो गए। अभया भी कुछ क्षणों तक चुप हो उनके विचारों पर सोचती रही, फिर वह आप ही आप बोल उठी—तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध मुझे कुछ कहना नहीं है, बाबूजी; पर मैं समझ नहीं पाती कि, जो काम खुद अपने आप तुम कर सकते हो, उसकी ओर मुझे क्यों घसीटना चाहते हो, जब कि मैं पाती हूं कि जो काम तुम्हारे लिए आसान हो सकता है, उसे तुम मुझ पर क्यों सौंपो? मुझे इससे भिन्न ही क्यों न

रहने दो, मैं क्यों न अपनी राह अपने से खोज निकालूँ ? क्या यह मेरे लिए उचित नहीं ?

—क्यों नहीं, क्यों नहीं, अभय—हँसते हुए डा० स्वरूप बोल उठे—मैं जानता हूं, तुम ऐसा क्यों कह रही हो ? पर, मुझे इसके लिए कोई खेद नहीं। मैं जानता हूं, तुम्हारा यहाँ मन नहीं लगता, तुम्हारी तबीयत यहाँ जमती नहीं दीखती—सो तो ऐसा होगा ही। तुम्हारे लिए मन लगाने का यहाँ साधन नहीं, सोसाइटी नहीं, तुम अपने आप में स्वतन्त्र हो, मैं तुम्हारी स्वतंत्रता का अपहरण नहीं करना चाहता। मैं उसका आदर करता हूं। तुम अपनी राह अपने से तैयार कर सकती हो। मुझे तुम पर गर्व है। तुम पर विश्वास है, पर कुछ दिन क्यों न यहाँ रह कर देखो, फिर जब इच्छा होगी, जैसी इच्छा होगी, कर लेना। मैं रास्ता रोक कर खड़ा न हो सकूँगा। इतना भर तुम्हें विश्वास दिलाता हूं। क्यों, ठीक है न ? क्या कह रही हो ?

—मुझे और कुछ कहना नहीं है, बाबूजी। मैं तुमसे बगावत नहीं करती, जो भी कहोगे, वही होगा।

अभया वहाँ से उठ कर चल पड़ती है और डा० स्वरूप बाहर की ओर चल देते हैं।

जो अभया नागरिक जीवन से इतना ओत-प्रोत है, उसके लिए निरा दिहात का वातावरण उसके मानस-स्तर को अचंचल किए है। वह नहीं चाहती है, वह अचंचल होकर ठूँठ-सी पड़ी रहे, उसमें हलचल न हो, वह स्तब्ध होकर नहीं रहना चाहती। वह पाती है कि, यह जो स्थिरता है, वह तो नितांत शीतल है, बर्फ से भी अधिक शीतल। और शीतलता जीवन नहीं है, उसे

तो उष्णता चाहिए, उष्णता के अभाव में वह पीलापन के अधिक निकट पहुँच गई है, उसे लालिमा चाहिए, उस लालिमा में तरलता न हो, वह ठोस हो, वह सघन हो। और सघनता के लिए वह विह्वल-बेचैन हो उठती है। वह चारो ओर दृष्टि दौड़ा कर देखती है—देखती है कि उसके आस-पास, जहाँ तक उसकी दृष्टि जाती है, फूँस के छोटे-बड़े झोपड़े हैं, झोपड़ों की घनी पंक्तियाँ हैं, उनमें औरत-मर्द, बूढ़े-बच्चे किलबिल-किलबिल करते हैं। कहीं से धूएँ निकलते हैं, कहीं से केवल धूल-ही-धूल निकल कर हवा के साथ बहती हुई वातावरण को धूमिल किए छोड़ती है। वह पाती है, बहुत से औरत-मर्द बाहर खेतों से घास या अनाज के बोझों को सिर पर लादे हुए हँसते-बोलते आ रहे हैं, कुछ ही दूरी पर वह पाती है कि छोटे-छोटे चरवाहे खेतों से मवेशियों को चरा कर, धूल उड़ाते हुए गाँव की ओर आ रहे हैं। शीत का दिन है; पर उनके शरीर पर ढंकने को पूरे वस्त्र नहीं—जो भी हैं, काफी गन्दे! अभी-अभी कुआँ पर चारो ओर से घेर कर जो औरतें पानी भर रही हैं, उन्हें भी तो जैसे सर्दी लगती नहीं, पहनने को उनकी वे गन्दी साड़ियाँ और बदन पर गन्दे सलूके ··· उफ, यही दिहात है! बाबूजी का दिहात ··· जहाँ उनके देवता का निवास है ··· उफ कितनी गहरी गरीबी के शिकार हैं ये अभागे मानव! और यही शोभा है इस दिहात की!!

अभया इस से अधिक सोच नहीं सकती, वह अपनी जगह से उठ पड़ती है, वह अपने बदन को आईने के पास आकर देखती है—देखती है, उसे लगता है, जैसे उसकी साँस बहुत धीमी गति में चल रही है। लगता है, जैसे उसका दम घूँट

रहा है। ओह, वह इस तरह जिन्दा नहीं रह सकती, उसे बाहर की हवा चाहिए—वह शुद्ध और खुली हवा के बिना जी नहीं सकती। वह अपने घर में ही किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहती है। वह सोच नहीं सकता कि उसे अब क्या करना चाहिए; पर वह कुछ समझ नहीं पाती। वह वहीं चक्कर काटने लगती है, फिर भी उसका मन शांत नहीं होता, वह कमरे से बाहर निकल पड़ती है, दरवाजे पर आती है, दरवाजे की फुलवारी में कुछ क्षण घूम-घूम कर फूलों को देखती है, उसी क्षण वह पाती है कि उसका नौकर किसुन फूल के पौदों में पानी पटा रहा है। किसुन उसकी ओर देखता है और देखते ही हँस कर पूछ बैठता है—क्या कुछ फूल तोड़ दूँ? ये गेंदे—नहीं, गुलाब! देखो, ये कैसे फूल रहे हैं? दूँ, तोड़ दूँ··· ··

अभया कुछ क्षण तक उसी तरह उदास रहती है, फिर कहती है—नहीं-नहीं, पेड़ में ही रहने दो वही अच्छा लगता है······

किसुन कुछ समझ नहीं पाता। वह सीधा है, बूढ़ा है, वह सदा से गाँव में ही रहा, वहीं बालक से जवान हुआ और जवान से बुढ़ापे में आया; पर कहीं हिला नहीं—डोला नहीं! वह अभया की ओर देखता है; पर समझ नहीं पाता कि किस तरह वह उसकी अभ्यर्थना करे···फूल तोड़ कर वह देना चाहता था—आखिर अपनी अभ्यर्थना प्रदर्शित करने के लिए ही तो! पर अभया ने उसकी कद्र न की, उसने उसके जी को न जाना। किसुन अब भी अपनी आँखों में कौतूहल भर कर ठिठका-सा, खोया-सा उसी तरह पड़ा है। पटाने के लिए भरा हुआ कल सा उसके हाथ में ज्यों-का-त्यों अटका है·····

मगर अभया चार-पाँच कदम आगे बढ़ते ही रुक कर बोल उठी—तुम गुलाब तोड़ना चाहते थे न किसुन, लाओ एक तोड़ कर, देखना, एक से ज्यादा नहीं ·····

और किसुन अपने आप में हरा हो उठा, और हँसते हुए ही बोला—एक ही तोड़ूँगा, बेटी रानी। देखो, ये कितने फूले-फूले हैं। मैं तो खुद नहीं तोड़ना चाहता ! इतनी सुन्दर फुलवारी और कहाँ देखने को मिलेगी ? डाक्टर साहब को इन फूलों से कितना प्यार है ? जभी तो वे इनका इतना संभार रखते हैं ·····

किसुन बड़े यत्न से एक छोटी-सी टहनी से लगे गुलाब का एक फूल तोड़ कर उसके हाथ पर रख देता है। अभया उसे लेकर आगे बढ़ जाती है ·····

अभया आगे बढ़ जाती है। उस समय सूर्य की किरणों से पश्चिम का क्षितिज रंगीन हो उठा है, दूर पहाड़ की शिखाएँ उन रंगों से और भी रंगीन हो उठी हैं। अभया उस ओर देखती है, उसका हृदय आह्लादित हो उठता है. वह घर से बाहर निकलते ही सड़क पर आ जाती है और उस पर बढ़ निकलती है; पर उसे कुछ पता नहीं है कि वह कहाँ जा रही है, क्यों जा रही है और कहाँ तक वह जायगी। वह जा रही है। बढ़ती हुई जा रही है। इस तरह वह बहुत दूर निकल पड़ती है। उस समय लोग सिमटे हुए, खेतों से थके-मांदे अपने-अपने घरों की ओर लौट रहे हैं। वे लौटने वाले जब अभया को अकेली और उन्मुक्त उस रास्ते पर बढ़ते हुए देखते हैं, तब उनकी डगें शिथिल पड़ जाती हैं और उचक-उचक कर उसकी ओर घूरने लगते हैं। अठारह-उन्नीस की हृष्ट-पुष्ट तरुणी अपनी सौंदर्य-श्री को

बिखरती हुई, कहाँ जा रही है, किसकी खोज में जा रही है, वे लौटने वाले कुछ समझ नहीं पाते। मगर अभया का इस ओर ध्यान नहीं है। कौन क्या कहता जा रहा है, उसके विषय में, उस ओर वह घूमकर देखना नहीं चाहती, वह तो बढ़ते हुए जाना चाहती है, जैसे उसे आगे बढ़ने के सिवा और कुछ काम रह नहीं गया है। जैसे वह कहीं विश्राम लेना ही नहीं चाहती।

मगर उसे विश्राम लेना ही पड़ा। जब उसने पाया कि बाहर की सर्द हवा उसके खुले केशों को ही नहीं केवल छितरा रही है वरन उसके अंग-प्रत्यंगों को भी झकझोर रही है, तब उसने शीत का अनुभव किया। ओह, उसने गर्म कपड़े तो घर पर ही छोड़ रखे हैं। अब तो सूर्य भी जाने कब अस्त हो गया, धूमिल संध्या देखते-ही-देखते कुछ सघन हो आई और पूरब क्षितिज के ऊपर त्रयोदशी का चाँद हँसता हुआ दीखने लगा! तब वह अपनी सीमा पर ठिठकी सी पड़ी रही। पहाड़ अब भी दूर था, उसकी इच्छा थी कि वह टेकरी पर चढ़कर डूबते हुए सूर्य की शोभा निहारेगी; पर वह गाँव से पहले-पहल बाहर निकली है, उसे उसका ज्ञान भी नहीं है कि पहाड़ कितनी दूर पर है। वह ललचाई-जैसी खड़ी रही, पर और अधिक खड़ी न रह सकी, वह लौट पड़ी। लौटने में ही उसे संतोष का अनुभव हो रहा है। वह बड़ी निर्भय मुद्रा में जिस तरह अकेली निकली थी, उस तरह उस चाँदनी रात में अकेली लौट रही है—न कोई चिंता, न द्वंद्व, उन्मुक्त होकर, निर्बंध होकर।

मगर जैसे ही गाँव के पश्चिमी छोर पर पहुँचती है वैसे ही वह चंचल हो उठती है; पर वह क्यों चंचल है—उसे कारण

का कुछ पता नहीं लगता। उसकी चाल मंद पड़ जाती है, वह किंचित् अस्त-व्यस्त हो उठती है, फिर भी उसका ध्यान अपनी जगह संयत है। वह अपनी चाल को द्रुत करना चाहती है, पर वह कर नहीं पाती। उसी समय उसके कानों में रोने की आवाज प्रखर हो उठती है, तब वह समझती है कि क्यों उसकी चाल धीमी पड़ी हुई है। शायद यही रोने की आवाज तो बहुत धीमी गति में आकर उसके कानों से टकरा-टकरा रही थी इतनी देर तक! अब वह समझ गई कि अब तक जो आवाज आ रही थी, वही यही थी और इसी घर से आ रही थी। वह किंचित् रुकी, फिर वही रोने की आवाज आई! ओह, यह आवाज! कितनी कष्ट-दायक, कितनी पीड़ित!

अभया रुकी थी, पर अब रुकी न रह सकी और जिधर से आवाज आ रही थी, अयाचित अतिथि की तरह वह अपनी द्रुत-गति में चल पड़ी।

दिहात की दरिद्रता का इतना बीभत्स रूप हो सकता है—अभया को इसका रंचमात्र भी अनुभव न था; पर जैसे ही वह उस घर में घुसी, उसे लगा—दरिद्रता नग्न होकर उसके सामने जैसे बिलख रही है! आजन्म सुख की सेज पर पली, बढ़ी और आनन्द के हाथों सँवारी वह अभया भग्नगृह के भग्नतम देह-यष्टि में सिसकती-बिलखती एक बूढ़ी को देख सिहर उठी। जिस डा० अभया ने जाने कितने शरीर पर तीष्ण अस्त्रों का सफल नृत्य करते देखा था और स्वयं अपने हाथों नचाया था, आज वह स्वयं सिहर उठी है—यह कितनी बड़ी विडंबना है! नहीं, यही तो नग्न वास्तविकता है।

तृतीय परिच्छेद

अभया ने उस दिन मरणोन्मुख वृद्धा की जितने बड़े धैर्य के साथ परिचर्या की, वह एक स्मरणीय घटना है। रोगियों की सेवा की जा सकती है, परिचर्या हो सकती है, उनकी दवा-दारू भी उचित मात्रा में की जा सकती है, पर उन्हें मृत्यु-मुख से लौटाना सेवक का, परिचायक का या डाक्टर का काम नहीं हो सकता। वह तो उसका काम है जिसने जीवन दिया है। जीवन-मृत्यु जिसका चिरंतन अभिनय है—लीला है! पर यदि मृत्यु के मुँह से निकाल लेना मनुष्य के वश की बात होती तो अवश्य अभया का नाम सर्व प्रथम लिया जाता! फिर भी अभया को संतोष है और संतोष है इसलिए कि उस वृद्धा के लिए उसने उस रात को कुछ उठा न रखा।

अभया जब वहाँ से लौटी तब रात के ग्यारह बज चुके थे। उसे जो-कुछ वहाँ करना चाहिए—सब-कुछ करा कर जब बूढ़ी को नींद हो आई, तब उसने एक निश्चिंतता की साँसली और तब उसे याद आया कि अब उसे घर लौटना ही चाहिए। उसने एकबार रोगिणी की नाड़ी पकड़ी, फिर उसकी ओर देखा, तब वह बोली—सुन, चंपी, तू घबराना नहीं, अब नींद हो आई है, इसे इसी रूप में सोने दे। अगर नींद टूट जाय तो सिर पर पानी की पट्टी चढ़ा देना और चढ़ाए रखना, देखना, वह सूखने न पाए।

मैं अब जाती हूँ, अपने घर से कम्बल भिजवाए देती हूँ। क्यों, घबरायगी तो नहीं ? मैं जाऊँ ?

भोली ग्यारह साल की चंपी उत्तर में कुछ न बोली, केवल उसने सिर हिला दिया।

अभया घर से बाहर आई और आंगन से बढ़कर ज्योंही दरवाजे की ओर मुड़ने को ही थी कि वह फिर लौटी और लौटकर बोल उठी—तूने मेरा घर देखा है री चंपी ?

—हाँ, देखा क्यों नहीं, वह तो सफेद-सफेद पक्की गढ़ी-जैसी है...

—पक्की गढ़ी—शब्द सुनकर अभया भीतर-भीतर हँसी, पर हँसने का वक्त वह न था, दूसरा वक्त होता तो अभया खुलकर हँसती और उसे बताती कि पक्के के जितने मकान होते हैं, सभी गढ़ी नहीं होते; मगर इस समय वह इतनी ही बोली—हाँ, ठीक, तूने देखा है। अगर रात को ऐसी बात हो जाय जब कि मेरी जरूरत तुझे जान पड़े, तो तू भागती हुई मेरे पास आना। अच्छा !

—अच्छा।—चंपी ने अपनी स्वीकृति जतलाई।

और अभया चल पड़ी। उसने घर पहुँच कर देखा कि उसके पिता उस समय बिछावन पर पूरी तरह रजाई से अपने तन को ढँके, लेटे-लेटे ही कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं। वह उनके कमरे में प्रवेश करते ही आप-ही-आप बोल उठी—मुझे आज बहुत देर हो गई, बाबूजी, नहीं, क्यों !

—ओह, अभय,—चौंक कर उसकी ओर देखते हुए डा० स्वरूप बोल उठे—देर तो हुई ही, मगर अब तक थी कहाँ बेटी ?

न जान-न पहचान, मैं समझ नहीं पा रहा था कि आखिर तुम गई कहाँ? मगर मुझे कोई चिंता न थी! यह दिहात है न। यहाँ के लोग निश्छल होते हैं, सूधे-सादे! भय की बात नहीं। मगर थी कहाँ, अभय! ......मगर, यह क्या, तुमने गर्म कपड़े क्यों न रख लिए थे अपने साथ? सर्दी लग जायगी—अभय, सर्दी! यह दिहात है न! यहाँ सर्दी ज्यादा पड़ा करती है।

—सर्दी मुझे न पकड़ेगी, बाबूजी!—हँसती हुई अभया बोली और बोलते-बोलते ही अपने कमरे में जाकर अलवान लपेट आई फिर उसने अपने विलंब का कारण संक्षेप में कह सुनाया, फिर उसे याद हो आई कि अभी तो उसे रोगिणी के लिए अपने घर से कम्बल भिजवानी है, तब वह दौड़ी हुई अपने स्टोर रूम में गई और वहाँ से एक चुनकर किसुन के लड़के सुगला को बुलाकर कहा—जा चंपी के घर इसे लेकर, उसे दे आ।

सुगला समझ न सका कि कौन चंपी है और कहाँ उसे जाना है, वह अभया के मुंह की ओर देखने लगा।

अभया ने उसे देखा कि वह अकबक खड़ा है, वह बिगड़ी और बिगड़ कर बोली—क्यों, इस तरह खड़ा क्यों रह गया! जा चंपी के यहाँ! क्या चंपी को नहीं जानता?

—नहीं।

—नहीं! गाँव में दिन भर चक्कर काटता है और जानता है नहीं!—अभया तुनुक कर बोली—निकम्मे लड़के!

फिर उसने कौन सी चंपी है—पूरा पता बतलाते हुए पूछा—क्या अब भी उसे नहीं जानता?

—अब जान गया—कहकर वह बाहर की ओर कम्बल लेकर चलता बना।

अभया, तब, अपने पिता के पास आई और पैर लटकाए पलंग के एक सिरे पर बैठते हुए बोली—जीने की उम्मीद तो बहुत कम है, क्या ऐसी हालत में और कुछ किया नहीं जा सकता ?

डा० स्वरूप उठँग कर बैठते हुए बोले—मेरा खयाल है, वह बच जा सकती है; फिर देखा जायगा, अभी जब उसे नींद हो आई है, तब आसार कुछ बुरा नहीं। मगर, रात ज्यादा हो रही है, रसोई ठंढी हो रही होगी। जाओ अभय, पहले जो करना चाहिए—करो !

—और आप ?

—मैं खा चुका हूँ।

अभया जाने संभल कर क्या कहने आई थी, पर वह कह नहीं पाई। वह कुछ क्षण तक द्वंद्वात्मक अवस्था में पड़ी रही; पर पड़ी न रह सकी, वह उठकर दूसरे कमरे की ओर चल पड़ी।

डा० स्वरूप ने लैंप की बत्ती धीमी की और सारा शरीर ढीला कर लेट गए। आज डा० स्वरूप के ओठों पर अतीव प्रसन्नता थी और हृदय में अनिर्वचनीय उल्लास !

किन्तु अभया को न उल्लास है न प्रसन्नता ! वह अपने पलंग पर आ लेटी है, सारा शरीर मखमली इटालियन लेप से ढँका है; पर उसकी आँखों के सामने उस रोगिणी वृद्धा की विभीपिकामयी दरिद्रता के बीच उसका अवश शरीर स्नेह-हीन दीप-शिखा की तरह निस्तेज, बिलकुल बुझने-बुझने की

अवस्था में पड़ा है—और केवल यही नहीं, वह चंपी जिसकी आँखों के आँसू सूख-सूख कर उसकी आकृति को ही न केवल विकृत बना रहे हैं, वरन उसका भविष्य स्वयं एक समस्या बन कर भीमाकार हो उठा है—कितनी करुण है, कितनी भोली, कैसी अनजान !

अभया लेटी है सही, पर वह चौंक उठती है, उसका ध्यान बाहर की ओर लगा है, लगता जैसे किसी के आने की आहट तो नहीं आ रही है; पर वहाँ किसी तरह की आहट नहीं है। हाँ बाहर से, बहुत दूर पर से कुत्ते के भूँकने की आवाज, बहुत ही वीभत्स रूप में उसके कानों से अवश्य टकरा उठती है। वह निश्चिंतता की साँस लेती है, फिर उसका ध्यान अपनी जगह आ टिकता है, वह पाती है कि, नहीं, अभी वह रोगिणी लेटी ही पड़ी है, गहरी नींद में है। हाँ, उसका उपचार काम कर गया है, चंपी ध्यानस्थ हो रोगिणी की ओर देख रही है, उसके घर की वह मिट्टी के दीप की आखिरी बत्ती अपने आप में जलकर धुआँ उगल कर अपनी अंतिम साँस छोड़ रही है, उससे निकली हुई धुंधली रोशनी चंपी के मुँह की एक ओर, केवल गाल के निचले हिस्से में पड़ रही है। चंपी सोच रही है अपनी स्वस्थ्यवती तरुणी डाक्टर को जो उसके समीप अयाचित अतिथि की तरह आकर उसे दिलासा देते हुए कह रही है—तेरी माँ मरेगी नहीं —हर्गिज नहीं, तू चिंता मत कर.....

अभया इसी तरह जाने क्या-क्या सोच जाती है, आज उसकी चिन्ता का कोई कूल-किनारा जैसे मिलता ही नहीं। मगर, अब वह अपने चिन्ता-भार से थक गई है, अलसा गई है।

उसने एक बार अँगड़ाइयाँ ली, वह जरा तनी, शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ दिया और लेप को और जरा ऊपर खींच कर अच्छी तरह उससे अपने मुँह को भी ढँक लिया। लैंप अपनी जगह उसी तरह जल रही है, पर मुँह ढक जाने के कारण उसे प्रकाश नहीं—अंधकार-अंधकार ही दीख रहा है। उसने अपनी आँखें भी अब बंदकर लीं।

अभया सोई, और गहरी नींद में सोई, फिर न जाना कि कब रात शेष हुई, कब सुबह हुई और जाना तब, जब कि बाहर से प्रातः वायु सेवन कर, और कई घरों का चक्कर लगाते हुए, कई आदमियों के साथ डा० स्वरूप लौट कर दरवाजे पर आ गए हैं। वह इत्ते दिनचढ़े तक सोई रहने पर अपने आप पर खिझी, वह हड़बड़ा कर उठी और नित्य-नैमेत्तिक कामों के लिए चल पड़ी।

मगर अभया जिस स्वप्न को लेकर सोई थी, वह स्वप्न उसकी निद्रा के साथ ही शेष हो चुका था। अब उसके सामने जो कुछ था—वह प्रकाश था—स्वच्छ, निर्मल प्रकाश······और वह अपने निर्मल प्रकाश में रात्रि के सारे अवसाद खो चुकी है। अभी-अभी सद्यःस्नाता के रूप में स्वच्छ वस्त्रों से आवृत, केश-लटों को हाथ से संभाले धूप में एक कोच पर आ बैठी है। मस्तिष्क शांत है, मन प्रसन्न है और हृदय आवेगमय। वह मन-ही-मन जैसे कुछ गुनगुना रही है। तभी वह सुनती है, जमींदार की डयौढ़ी की ओर से आती हुई रसन-चौकी शहनाई की आवाज—ओह, वह कितनी मधुर—कितनी मधुर!...अभया अपने आपको छोड़ बैठती है उस आवाज की ओर! जाने यह आवाज उसे इतनी मधुर, इतनी उद्वेगमय क्यों जान पड़ती है। वह भूल जाती है अपने

आप को। ओह, वह शहनाई कितनी श्रुति-मधुर हो उठी है उसके लिए!

मगर वह पूर्णतः भूल नहीं पाती जब कि उसका ध्यान खिंच आता है दूसरी ओर, वह पाती है कि गाँव के कुछ संभ्रांत व्यक्ति, प्रसन्न मुद्रा में आकर डा० स्वरूप के प्रति अपना अभिवादन-ज्ञापन कर रहे हैं।

और डा० स्वरूप स्वयँ खड़े हो प्रति अभिवादन ज्ञापन करते हुए कहते हैं—आज हम बड़े सनाथ हुए। आइए, विराजिए···

और वे आगंतुक पास की पड़ी कुर्सियों पर बैठ जाते हैं, डा० स्वरूप भी अपने आसन पर बैठते हुए, अभया की ओर देख कर बोल उठते हैं—अरी आरी बेटी, यहाँ, देखो, तुम्हारे राजाबाबू आज सशरीर तुम्हारे यहाँ विराजमान हैं।

अभया लजाती नहीं, प्रसन्न-वदन अपने पिता की ओर दौड़ पड़ती है और समीप आकर राजाबाबू को प्रणाम कर खड़ी रह जाती है।

राजाबाबू का नाम अभया के लिए अपरिचित नहीं है, पर उसे आज ही उनसे परिचित होने का अच्छा अवसर मिला है। अभया खड़ी-खड़ी देखती है कि यही हैं क्या राजाबाबू, जो गाँव के जमींदार हैं; बड़े शक्ति-संपन्न व्यक्ति!

और वह राजा बाबू अभया को एकबार सिर से पाँव तक देखते हैं, फिर वह अपने चश्मे को आँखों पर अच्छी तरह जमा कर कहते हैं—अभया बेटी अब तो बड़ी सयानी हो गई, डा० भाई! यह जब बच्ची थी, तब इसे लेकर आप एक बार गांव आये थे। क्यों, याद है न! सुना—इसने भी डाक्टरी पास की

है। बड़ा अच्छा, बाप और बेटी—दोनो डाक्टर!... यह तो बड़े भाग्य की बात है डाक्टर भाई।

—मैं तो नहीं चाहता था राजा बाबू—डा०स्वरूप बोले—मगर इसने स्वयँ जिद की, मैंने भी देखा—क्या हर्ज है। अगर यह पढ़ना चाहती है तो क्यों न इसे इस तरह का मौका दिय जाय! और इसे इस तरह का मौका दिया गया।

—वेजा क्या है डा० भाई!—राजा बाबू ने अपनी प्रसन्नत ही प्रदर्शित करते हुए कहा—आज कल पढ़ने की ओर तो लोगं का ध्यान योंही नहीं जाता, फिर डाक्टरों की भी कुछ जरूरत कम नहीं! और लेडी डाक्टर तो और भी वहुत कम है! से इस कमी को हमारी बेटी अभया यदि पूरी करती है तो यह हमलोगों का कुछ कम सौभाग्य नहीं। मुझे वड़ी खुशी हुई इसे देख कर!

राजा बाबू बोल कर कुछ क्षण तक चुप रहे, फिर अभया की ओर मुखातिब होकर बोल उठे—क्योंरी अभया बेटी, तुम कई दिनों से यहाँ आई, पर तुम अपनी चाची और बहन के साथ अब तक मिलने को क्यों न आई? क्या वह घर तुम्हारा नहीं है?

—क्यों नहीं हैं—अभया हँसती हुई बोली—मगर आप लोग बड़े आदमी हैं, और बड़े आदमियों के यहाँ बे-बुलाये जाना अभया जानती नहीं...

राजा बाबू जरा अप्रतिभ हो उठे, उन्हें अभया की निर्भय मुद्रा और साभिमान वचनों से भीतर-भीतर कुछ वितृष्णा भी हुई, कुछ चोट भी लगी, फिर वह अपने मनोभावों को भीतर पचाकर मुस्कान लिए बोल उठे—सो कहना नहीं होगा अभया, मैं भी

जानता हूँ कि डाक्टर वे-बुलाए हुए बड़े आदमियों के यहाँ नहीं जाया करते! मगर बड़ा आदमी जब स्वयं बुलाने आए, तब भी जाने में कोई उज्र होगा......

—उज्र!—अभया फिर उसी तरह बोल उठी—उज्र हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है!

—मानी?

—मानी साफ है—अभया हँस पड़ी—बुलाना सब तरह का होसकता है, जरूरत का भी, वेजरूरत का भी! क्योंकि मैं लेडी डाक्टर हूँ न!

अभया इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ी, डा० स्वरूप भी हँसे, राजा वाबू और दूसरे लोग भी हँस पड़े। मगर इस बार डा० स्वरूप ने परिस्थिति को सम्भालते हुए कहा—राजा वावू तो कुछ दूसरे नहीं हैं, अभय,तुम्हें तो इनका आदर करना ही चाहिए! ये वड़े जरूर हैं, मगर इनमें वड़प्पन का अभिमान छू भी नहीं गया है। जभी तो ये तुम्हारे यहाँ आए हैं......

— यह इनकी अतिशय कृपा है, सो क्या मैं नहीं जानती!

—नहीं, कृपा नहीं—राजा वावू संशोधन करते हुए बोल उठे—कृपा कहना ठीक नहीं—अभया बेटी, मैं कृपा करने को तुम्हारे यहाँ नहीं आया हूं! यह तो भाईचारे का नाता है! डा० भाई रोज मेरे यहाँ आवें और मैं डा० भाई के यहाँ न आऊँ—यह कैसे हो सकता है! और आज तो मैं आवश्यक काम से—और सच पूछो तो, खास कर तुम्हारे लिए ही आया हूँ—और वह आवश्यक काम यह है कि, तुमने शायद सुना होगा, माघ पंचमी को मृणाल का शुभ-विवाह है, जिस के लिए

निमन्त्रण तो यों समय पर आयगा ही—आज मैं स्वयँ तुम पिता-पुत्री को निमन्त्रित करने के लिए ही आया हूं। डा० भाई केवल वय के वृद्ध नहीं, ज्ञान-वृद्ध भी हैं, दुनियां का अनुभव रखते हैं, इनके सत्परामर्शकी ऐसे अवसर पर मुझे कितनी आवश्यकता है, यह मैं अनुभव करता हूं—और तुम······तुम तो बेटी अभया, मेरे गाँव की गर्व हो—और इस समय जब कि तुम गाँव में आ पहुँची हो—तुम्हारे जाने से हमारी हवेली कितनी खिल उठेगी—इसका अनुमान तो तुम खुद लगा सकती हो! मृणाल और उसकी माँ तुम्हें देखने को उल्लसित हो रही हैं! क्या तुम अपनी चाची और मृणाल को, ऐसे शुभ अवसर पर चल कर प्रसन्न न करोगी, अभया, बेटी! क्यों डा० भाई, तुम क्या कहते हो?

—कहना क्या है?—डा० स्वरूप आश्वस्त के स्वर में बोल उठे—मैं तुम्हारे काम में न लगूँ और तुम मेरे काम में न लगो—यह कैसे होसकता है! और बेटी मृणाल तो कोई दूसरी नहीं! उसका विवाह सर्वांग सुन्दर रूप में संपन्न हो—इससे बढ़कर आनन्द की और क्या बात हो सकती है!

—ऐसी ही तुम से आशा है, डा० भाई!—राजा बाबू प्रसन्न हो बोल उठे, फिर अभया की ओर देख कर बोले—और अभया बेटी, तुम कुछ बोली नहीं।

—मैं नहीं जाऊँगी।

यह उत्तर पाने के लिए राजा बाबू प्रस्तुत न थे। वह अभया के मुँह की ओर देखने लगे। उन्हें कुछ समझ में न आया कि ऐसा क्यों वह बोल सकी। फिरभी उन्होंने जरा हँसकर ही

पूछा—क्यों न जाओगी, बेटी ! मृणाल की शादी हो और तुम न जाओ—यह कैसे होसकता है.....

—मगर मैं आप के बुलाने पर कैसे जासकती हूं ? पिताजी जासकते हैं, क्योंकि आप उन्हें बुलाने आए हैं !

—फिर कैसे जासकती हो ?—राजा बाबू ने पूछा।

—जा क्यों नहीं सकती, राजा बाबू, जाऊँगी और जरूर जाऊँगी, मगर जब मृणाल खुद मुझे ले जाय ! क्यों, मृणाल मेरे यहाँ नहीं आ सकती ?

इस बार राजा बाबू ने समझा—अभया क्या है और वह क्या चाहती है। दूसरा वक्त होता तो राजा बाबू की त्यौरियाँ चढ़ चुकी होतीं, पर यह अवसर ही भिन्न था। वह कुछ क्षण तक अप्रतिभ ही रहे, फिर भीतर-ही-भीतर अपने को संयत कर बोल उठे—मृणाल को तुम्हारे यहाँ आने में प्रसन्नता ही होगी, अभया बेटी ! खैर, अभी वही रहे, मृणाल को मैं भेज दूंगा !

—हाँ, भेज दीजिएगा मृणाल को, मैं उस के साथ चली आऊंगी।

अभया बोलकर खड़ी न रह सकी, वह अपने कमरे की ओर चल पड़ी।

राजा बाबू कुछ क्षण तक डा० स्वरूप से बातें करते रहे, फिर वे अपने और व्यक्तियों के साथ उठ पड़े। डा० स्वरूप ने भी दरवाजे तक उनका साथ दिया, बिदा होते समय राजा बाबू बोल उठे—तो शाम को जरूर आप आएंगे, डा० भाई; रात का भोजन भी वहीं होगा।

—भोजन की कौन-सी बात है—डा० स्वरूप मुस्कराते हुए बोल उठे—मैं शाम को जरूर आऊंगा।

डा० स्वरूप उनसे विदा लेकर जब लौटे तब बरामदे पर अभया खड़ी दीखी ! वे उसके पास पहुँचते ही बोल उठे—तुम्हें उस तरह की बातें न करनी चाहिए थीं, अभय !

—मैंने ऐसी कौन-सी बात कही, बाबूजी !—अभया निश्छल होकर बोल उठी—मैं जानती हूँ, उनके घर की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं। जब वे एक दूसरे के घर नहीं जायंगी तब दूसरे को ही क्या पड़ी है कि वह उनके घर दौड़ी जाय। यह कैसी बात, दिखाने को तो वह भाई-चारे दिखाएँ; पर दूसरों को छोटा समझ कर—यह कैसे हो सकता है ! यदि समानता का भाव न रहा तो फिर भाईचारा कैसा ? तभी तो मैंने कहा—जब उसकी मृणाल मेरे घर आयगी तब यह अभया भी उसके घर जायगी। इसमें बुरा क्या है ? इसमें मेरी गलती कहाँ है ?

डा० स्वरूप अभया को जानते हैं, यह भी जानते हैं कि अभया कच्चे धातु की बनी नहीं है। जो अभया चंपी के घर बे-बुलाए जा सकती है, उसकी रुग्णा माता की तीमारदारी और दवा-दारू कर सकती है, जहाँ घृणा को भी घृणा लगती है, वहाँ वह घंटों बैठकर भी घृणा नहीं—स्नेह से आप्यायित हो सकती है, वही अभया अभिमान से लदे, अभिजात्य वंश के प्रमुख व्यक्ति-द्वारा बुलाए जाने पर स्पष्ट कह दे सकती है कि वह तभी जा सकती है, जब उस घर की लड़की स्वयं उसे बुलाने को आए। डा० स्वरूप मन-ही-मन जाने कुछ क्षणों तक क्या-सोचते रहे, फिर आप ही बोल उठे—मैं गलती की बात नहीं कह रहा, अभय; ऐसी बातें नहीं होनी चाहिएँ जिनसे दूसरों का जी दुखे। तोड़ने में मजा नहीं है, अभय, मजा तो तब है, जब टूटे हुए को जोड़ा जाय।

अभया इस बार हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली—जोड़ना तो तुम जानो, बाबूजी, मुझे तो तोड़ना ही आता है और तोड़ना ही सीखा है अबतक ! फिर भी कोशिश करूँगी, किसी दिन जोड़ सकी तो अच्छा ही।

हाँ, यही आशा रखता हूँ तुमसे अभय—डा० स्वरूप ने कुछ गंभीरता के साथ कहा।

और अभया ने शायद पिता के वचनों को पूरा-पूरा सुना या नहीं, नहीं कहा सकता। क्योंकि वह बाहर की ओर देख रही थी, और जिसे वह देख रही थी, वह तो रातवाली चंपी है, जो उसके बंगले के हाते के पास पहुँच कर उसके भीतर घुसने को कुंठितसी हो रही खड़ी है। वह उसकी ओर लपकी और लपकते हुए बोल उठी—क्यों री चंपी, खड़ी क्यों है ? भीतर आ...

तबतक अभया भी कुछ आगे बढ़ गई थी, वह भी इसकी ओर बढ़ी। उसके हाथ में वही रातवाली कंबल थी। वह बोली—माँ अच्छी है, उसने मुझे भेजा है, कहा—दे आ कंबल उनको, सो यह कंबल, कहाँ रख दूँ ?

अभया को रुग्णा के अच्छी होने का समाचार पाकर सुख ही हुआ; पर यह कंबल ? कंबल—वह बोली—लिए जा चंपी, मैं जानती हूँ, अभी इसकी वहीं जरूरत है ! क्या और कुछ नहीं कहा ? मेरी जरूरत वहाँ नहीं है क्या ?

—जरूरत—चंपी सुधाई से बोली—सो तो माँने नहीं कहा ! मगर तुम चलोगी वहाँ ? शायद जरूरत हो, न भी तो सकता है...मगर माँ ने ऐसा कुछ कहाँ कहा ! मगर मैं तुम्हें जाने को नहीं कह सकती। माँ खूब भोर-भोर सोती रही...जब नींद

खुली, तब वह बोली—बोली मुझ से कि, वह कौन थी चंपी ? कोई देवी-देवता तो नहीं ! कोई तो मेरे घर नहीं आता, फिर देवी-देवता ही तो वह हो सकती है ! माँ दुरगा को पूजती जो है ! उसका विश्वास है कि, आदमी जब देवी-देवता को पुकारता है तब वह चुपके-चुपके आ जाता है और चुपके-चुपके चल भी देता है। क्या तुम……

अभया चंपी की सूधी-सूधी बातों पर खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—हाँ री चंपी, क्या बोल रही थी ? बोल-बोल, रुक रही क्यों ?

चंपी सिर झुकाए थी और सिर झुकाए ही बोली—तुम कोई देवी-देवता हो ? नहीं, क्यों ?

और अभया ने इस बार पाया कि चंपी की आँखें आँसुओं से गीली हो उठी हैं। दिहात की ग्यारह साल की चंपी प्रत्यक्ष अपने सामने देवी-देवता को जो देख रही है !

अभया हँस पड़ी और हँसती-हँसती हो बोली—देवी-देवता क्या इतना प्रत्यक्ष होकर आते हैं चंपी ! तू खुद देख रही है, मैं आदमी हूँ, मेरा यह घर है, यहाँ मेरे बाबूजी रहते हैं, वे डाक्टर भी हैं। फिर ऐसा न कहना !

—तो फिर तुम्हें क्या कहूँ ?

—क्या कहोगी ?—मेरा नाम है—अभया, तू अभया बहन कह, और क्या कहेगी।……मगर, अभी चल मेरे साथ, खड़ी रह, मैं भीतर से आती हूँ।

और अभया कुछ क्षण के बाद भीतर से आकर चल पड़ी, चंपी कम्बल को फिर उसी तरह संभाले उसका साथ देती चली

चतुर्थ परिच्छेद

अभया जब चंपी के घर से लौटी तब दिन ढल चुका था। खुले प्रकाश में गाँव से निकलने का यह पहला ही अवसर था। इसलिए यह स्वाभाविक था कि उसके आने-जाने के समय रास्ते में जो भी मिले, मिलनेवालों ने उसकी ओर इस तरह देखा जिस तरह कोई अजनबी चीजों को लोग देखा करते और देखते ही रह जाते हैं। उन्मुक्तकुंतला अभया का दर्पमय मुख-मंडल, उसकी चलन, उसकी भाव-भंगिमा, उसके वेश-विन्यास—सभी बातों में वह अनूठी है! फिर अनूठी वस्तु की ओर लोगों का एक स्वाभाविक आकर्षण है, उसने बरबस देखने वालों और वालियों को अपनी जगह जकड़ रखा है! अभया को इस बात का पता है, वह भी एक बार देखने वालों की ओर देख लेती है, मगर वह देखने के लिए रुकी नहीं रहती—वह बढ़ती ही चलती है। इस तरह रास्ते को तय कर आजाती है—और जब वह लौट कर अपने दरवाजे के पास आ पहुँचती है, तब देखती है कि दरवाजे पर कई पालकियाँ बंद पड़ी रखी हैं और एक ओर ढोने वालों का एक गिरोह खड़ा और बैठा दीख रहा है।

मगर अभया उस ओर आँखें उठाकर देखती नहीं, वह सीधे बरामदे पर आकर ही रुकती है और उलट कर देखती है, चंपी अभी हाते को ही पार कर रही है। वह रुकी हुई रहती है, इतने

में ही चंपी भी आजाती है और भीतर की ओर से कुछ स्त्रियाँ और कुछ किशोरिकायें वहाँ आपहुंचती हैं, तभी उसका बूढ़ा नौकर किसुन उसके सामने आकर कहता है—ये सब राजा बाबू के यहाँ से आई हैं, रानी बेटी ! अभी-अभी तुरत आई हैं।

—ओह आप?—उन इकट्ठी नारियों की ओर अभिवादन करती हुई अभया बोली – मेरी गैरहाजिरी में आप लोगों को बड़ी तकलीफ हुई ! मुझे तो मालूम था कि मृणाल आयगी मेरे यहाँ ! मगर मैं काम से बाहर चली गई थी ! आइए-आइए, बाहर इस तरह खड़ी क्यों हैं, भीतर ही आइए……

और वह स्वयं आगे-आगे भीतर गई और सबको यथा स्थान बिठलाते हुए बोली—मगर मैं जान न सकी—इनमें मृणाल कौन है ?

उनमें से एक चतुर युवती हँसती हुई बोल उठी—मृणाल कौन हैं, उससे परिचय कराने की जरूरत नहीं पड़ेगी ! जो स्वयं स्वप्न में रंग रही हैं, जिनकी आकृति पर स्वयं आगत पति का सौन्दर्य प्रतिभासित हो उठा है, वह आकृति स्वयं बतलायगी कि मृणाल कौन हैं ? क्या अब भी आप उन्हें न पहचान सकेंगी ?

और इतना बोल कर वह युवती अपने-आप हँस पड़ी, उसकी हँसी में औरों ने भी साथ दिया, पर उनमें एकही ऐसी थी जो सिर झुकाए पड़ी थी।

अभया ने भी सबकी हँसी में योग दिया, फिर वह हँसती हुई, ही बोल उठी—देखती हूँ, आपने साहित्य का गंभीर अध्ययन किया है; मगर आप जानती हैं, मैं साहित्य-शास्त्रिणी नहीं, मैं विज्ञान की उपासिका हूँ; फिर भी मैं इतना अवश्य

कहूँगी कि मेरी मृणाल बहन को इस तरह काम-कला की शिक्षा देनी वाली जो युवती हैं, वह मेरी नमस्य हैं, उन्हें आदर से यदि मैं भाभी कहूँ तो वह अवश्य स्वीकृत होगी, क्यों नहीं ?

—यह मेरा सौभाग्य है !—उस युवती ने समर्थन में कहा।

—मगर यह सौभाग्य मुझे जिसके चलते उपलब्ध हुआ है, वह मृणाल चुप क्यों है ? आओ, मृणाल, अब तुम अकेली नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ हूँ—कह कर मृणाल के गाल पर मीठी चपत लगाते हुए अभया बोली—तुम भाभी को क्यों नहीं कहती कि इन्हों ने भी कुछ कम तपस्य न की थी एक दिन, जब ये स्वयँ···

मगर अभया बात पूरी न कर पायी कि उसे स्मरण हो आया—अभी तो उसे चंपी को दवा देना है, वह जो ठिठकी सी, ठगी-सी खड़ी है······

और तभी अभया बोल उठी—जरा मुझे छुट्टी चाहिए भाभी जी, बाहर वह चंपी खड़ी है, उसे दवा जो देना है, मैं अभी तुरत आई दवा देकर।

और वह पुकार उठी—चंपी,ओ चंपी, आ जा, यहाँ आ, दवा दिए देती हूँ।

और वह दरवाजे की ओर बढ़ी, फिर उसे लेकर दूसरे कमरे की ओर गई, वहाँ उसने दवा तैयार की, फिर उसे विदा कर स्नान-घर की ओर गई और जितनी जल्दी हो सका, नहा-धोकर कपड़े बदल दालान में आई जहाँ सब-की-सब उसकी प्रतीक्षा में थीं। इस बार अभया और भी खिली दीखी। वह आते ही बोल उठी—माफ कीजिएगा ! मैं थोड़ा ही वक्त लेकर गई थी, मगर देखा कि जब देर हो ही रही है तब नहा ही लूँ क्यों न ?

—मगर देर न करें तो अच्छा! —वही युवती फिर से बोली—आप जानती हैं, विवाह का घर है, काम ढेरों पड़े हैं। हम लोग घर की सब-की-सब आगयी हैं, माँजी हैं, उनसे अकेली कुछ करते नहीं बनता!

—जब यह बात थी तो आप आईं क्यों?—अभया हँसती हुई बोल उठी—और जब आई हैं तब देर-सवेर का भार मुझ पर छोड़ दीजिए, मैं खुद जाकर चाचीजी को समझा लूँगी। यों बहाना बना कर आप छोड़ी नहीं जा सकतीं!

अभया बोल कर चुप रही, फिर मृणाल की ओर देख कर बोली—क्यों,मृणाल, तुम्हें भी देर हो रही है? भाभी का दिल तो जाने कहाँ अटका है—सोतो वे ही जानें! मगर तुम आओ मेरे साथ! मैं यहाँ अकेली हूं, मगर अभी मैं अकेली नहीं, तुम मेरे साथ हो—आओ।

और बल पूर्वक मृणाल का हाथ पकड़ कर अभया उसे दूसरे कमरे की ओर लेगई। मृणाल स्वयं लज्जाशीला है, फिर वह एक अनजान और विदुषी अभया जैसी युवती से बोलने का क्या साहस करे! मगर मृणाल ने अब तक अभया की उड़ती-फिरती खबरों में जो रूप देखा था, प्रत्यक्ष में उसने पाया कि, वह तो अधिक-अधिक स्नेहमयी है, अत्यन्त ही कोमल है, अत्यंत ही सहृदया है। मृणाल को भीतर लेजाकर अभया ने कहा—मैं आँटा गूँधती हूँ। मृणाल, तुम स्टोव जलाओ। थोड़ा जलपान तो कर ही लिया जाय। फिर तो जाना है ही। जब भाभी खुद आई हैं तब उन्हें इसतरह कैसे जाने दूँ। तुम तो मेरी बहन ठहरी, तुमसे काम लेने का मेरा हक है! नहीं क्यों मृणाल?

मृणाल मुस्कराई और मुस्कराते हुए ही बोली—मैंही आँटा गूँध लूँ, तुम ...... नहीं-नहीं। वह स्पिरिट है। कुछ मिहनत न पड़ेगी। देखो, होचला......

और जब कुछ क्षण के बाद छन-छन की आवाज दालान में आ पहुँची तब भाभी ने समझा कि क्यों मृणाल को लेकर वह भीतर गई और वहाँ क्या हो रहा है। भाभी गुमशुम बैठने वालियों में न थी। वह भी भीतर की ओर लपकती हुई बोलती आई—देखना मृणाल, तुम दोनों बहनें ही चुपचाप न खा लेना...

—खातिर-जमा रखें भाभी— अभया वहीं से हंसती हुई बोल उठी—आपका हिस्सा भी रहेगा। और इतने में भाभी सशरीर वहां पहुंच कर बोली—इतना सा परबत उठाए लिए बैठी हैं आप लोग! ओह!

—मगर भय की बात नहीं, भाभी, आप इस पर्वत से दबेंगी नहीं—इतना मैं अभीसे विश्वास दिलाए देती हूँ।—कह कर अभया हंस पड़ी, भाभी भी हंसी और मृणाल भी!

और सभी की इकट्ठी हंसी जब दालान में पहुँची तब सब-की-सब भीतर ही आ पहुँची। फिर तो रंग ही जमा, सभी को कुछ-न-कुछ काम में हाथ बटाना पड़ा। यों घर पर सब-की-सब काम कुछ-न-कुछ करती ही हैं, मगर इस तरह का काम, जो स्वयं एक मनोरंजन के लिए हो, सभी के लिए एक विशेष आनंद का कारण हुआ।

अभया इतनी अतिथि-परायणा हो सकती है, इस का ज्ञान उसे तब हुआ जब भाभी ने अपने घर में चल कर माँके सामने बड़े विशद रूप में कह सुनाया।

और अभयाने उस चहारदीवारी अट्टालिका के प्रांगण में एक छोटी सी चौकी पर बैठी हुई प्रशंसात्मक शब्दों में अपनी चाची जी से कहते सुना—विद्या-विनय से जो संपन्न है, वह आतिथ्य करना तो जानेगी ही बहूरानी। और हमारी अभया बेटी तो हजारों में एक है। किसके पास इतनी विद्या है, तुम्हीं सच बताओ बहूरानी! यह तो हमारा सौभाग्य है कि मृणाल की शदी में अभया बेटी को मैं पा सकी। अगर आज यह अपने गाँव में न होती तो क्या इतनी आसानी के साथ यहाँ आ पाती?

मातृ-हीना अभया ने चाची को पाकर जाना कि कोई ऐसी चीज है जो उसके जीवन से बहुत दूर रही है और वह क्या है—अभया खुद नहीं जानती; मगर वह इतना जान पायी है कि मृणाल बड़ी भाग्यवती है—और शायद भाग्यवती इसलिए कि यह चाची जी ही इसकी माँ है!

अभया आनंद लेकर ही अपने घर से चली है और उस आनंदोदधि में आ पहुँची है जहाँ वह पाती है कि चारोंओर से लोल लहरें उसके हृत्ताल को आंदोलित-उच्छ्वसित कर रही है। एक ओर उसकी चाचीजी का स्नेहोज्ज्वल हृदय का वात्सल्य रस उसे सिंचित कर रहा है, दूसरी ओर से उसकी भाभियों की मुग्धमयी चटुल उपालंभ पूर्ण लाक्षणिक विदग्धकारिणी वाक्यावली उसके मन को संभ्रम में डालकर उसके रोम-रोम में सिहरण पैदा कर रही है। अभया समझ नहीं पाती कि जो-कुछ उसे वहाँ मिल रहा है, वह क्या है? उसे वह अब तक क्यों नहीं मिल सकी! क्यों उसका अन्तर वह कुछ पाने के लिए जैसे रिक्त-सा पड़ा था! वह रिक्तता आज जिस रूप में परिपूर्ण हो रही है,

वह रूप उसकी दृष्टि में कितना मनोहर, कितना मूर्त्त और कितना सुष्ठु है? काश, उस रूप का पता उसे पहले लगा होता!

अभया को आज अपने आप तक का भी पता नहीं है! उस जन-समागम में, जहाँ अपनापन चारो ओर से संपुट और सुपुष्ट हो चला है, अभया को यह भी पता नहीं कि किस तरह से दिन वीता, संध्या आई और गई—अब रात हो आई है, अट्टालिका के कमरे लैंपों के प्रकाश से विहँस रहे हैं—और उस प्रकाश में वह अपनी सद्यः सहेलियों से घिरी जाने कितनी प्रसन्न है। सिंह-द्वार पर बने ऊँचे मंच से शहनायियों का मधुर-करुण स्वर उसे आत्म-विभोर बना रहा है। ओह, आज वह क्या है, कहाँ है वह?

व्यष्टि में जो अभया रूक्ष थी, समष्टि में आकर वही तरल हो उठी। उसके अंग-प्रत्यंगों से वह तरलता छलक-छलक कर उसे रस-सिक्त करने लगी। उसकी भाभियों ने उसे गुदगुदाया, उसे उद्बुद्ध किया, उसे जड़से चेतन बनाया और उस विवाहोत्सव कालीन वातावरण ने उसकी आँखों-पलकों के वीच इंद्रजाल की रंगीनियाँ भरीं। उसके ओठों को कौन रह-रह कर स्पंदित कर जाता है, उसे उसका पता नहीं! क्यों रह-रह कर वह मुस्करा उठती है, क्यों उसका वक्षःस्थल रह-रह कर तरंगायित हो उठता है? वह पूछना चाहती है, अपनी भाभी से; वह जानना चाहती है इसका कारण; पर उसके मुख से वाणी नहीं निकलती और जो वह बोलना चाहती है, वह बोल नहीं पाती और जो वह कहा नहीं चाहती, वही उसके मुँह से वरवस निकल पड़ता है। इस पर उसकी भाभियाँ अट्टहास कर उठती है, पर अभया उतने ही

क्षण में अपने को सचेत कर लेती है, वाचाल तो वह है ही, प्रखरता में भी कुछ कम नहीं—और उस अट्टहास का प्रत्युत्तर इतने तीक्ष्ण व्यंगों से देती है कि वे भाभियाँ अचंचल से चंचल और मुकुलित से प्रस्फुटित हो उठती हैं और तभी वे हँसकर बोल उठती हैं, हम तुम से नहीं सकेंगे, अभया बहन, तुम्हारी हार नहीं—जीत रही, हम जीते मगर यह हमारी हार है।

मगर अभया मन-ही-मन समझती है कि कौन हारी और किसकी जीत रही !

और इस तरह हार-जीत के भीतर से ये पाँच-छः दिन किस तरह बीत गए, पता न चला, अब तो वह क्षण उपस्थित है, जब लोगों का जमघट लगा है, उस सुविस्तृत प्रांगण में, जिसके बीच मंडप की रचना हुई है, सुहागिन स्त्रियाँ, कुमारिकाएँ और बाल-वृंद मधुर कलरव से दिशा-विदिशाओं को मुखरित कर रहे हैं ! सभी अस्त-व्यस्त हैं, सभी उथल-पुथल में है ; किन्तु अभया एक निर्दिष्ट स्थान पर बैठी मृणाल के वेश-विन्यास और अंग-प्रत्यंगों को अलंकार एवं मांगलिक प्रसाधनों से तूलिकाओं-द्वारा चित्रित कर रही है। वह इस कार्य में जैसे डूबी-सी है। कोलाहल उसके ध्यान को भंग नहीं कर रहा, वह संयम की सीमापर पहुँच कर अपने कार्य में तल्लीन है, इस कार्य में तिलमात्र का अन्तर उसे सह्य् नहीं—और इसतरह जब वह मृणाल को सज-सजा कर तैयार कर चुकी है, तब वह स्वयँ पाती है कि जिस मृणाल को वह देख रही है, वह तो स्वयं अपर्णा है—कुछ मानवी नहीं। और ऐसी मृणाल को एक बार अपने सुकमार अंकोंसे भरकर—धीरे से उसके ओठ चूम लेती है।

और उसी समय मृणाल मंडप पर ले जायी जाती है। वहाँ जितनी भी स्त्रियाँ हैं, सभी विविध और विभिन्न वेश-भूषाओं और अलंकारों से अलंकृत हैं; पर अभया ही एक ऐसी है जिसे अपने आपको सजाने का या तो चाव नहीं या उसे वह अवसर ही न मिल पाया। फिर भी अभया का स्वाभाविक वर वेश अपने आप में ही पूर्ण है। वह इतना ही चाहती है, इससे अधिक नहीं। वह इसी रूप में और स्त्रियों के साथ, जिनमें अग्रिणी वे भाभियाँ हैं, आ खड़ी हैं! वह देखती है, मंडप के मध्य में होमाग्नि प्रज्वलित हो रही है, पुरोहित मंत्रोच्चारण कर रहे हैं, वर की तलहथी पर मृणाल की तलहथी पड़ी है······फिर दोनो होमाग्नि की प्रदक्षिणा करते हैं······फिर यथा स्थान दोनो बिठलाये जाते हैं······

और स्त्रियों के बीचसे शंखध्वनि गूंज उठती है, मांगलिक गीत मुखर से करुण हो उठते हैं, सभी आनन्द-महार्णव में उद्बुद्ध होने लगती हैं; किंतु अभया वहाँ ठहर नहीं पाती, चुप-चाप वहाँ से निकल पड़ती है!

वह निकल पड़ती है अपने घर की ओर, भोर होने-होने को है, सिंह-द्वार के मंच से शहनायियों का भैरो राग अत्यंत ही हृदय-स्पर्शी एवं चेतनोन्मुख है। वह रास्ते पर चढ़कर भी लौट आना चाहती है, पर वह लौटती नहीं—जाने कौन-सा आकर्षण उसे आगे की ओर खिंचे लिये जा रहा है—आगे और आगे और अबतो पाती है कि वह अपने हाते में पहुँच गई है। उसका नौकर किसुन बैठे-बैठे सुर्ती लगा रहा है, वह अपनी जगह से ही बोल उठता है—कौन?

—मैं हूँ, किसुन।

—ओह, तुम—रानी बेटी!—वह खड़ा होकर उसकी ओर बढ़ते हुए कहता है—अभी कैसे आई? क्या शादी हो चुकी?

—होचुकी—कहती हुई वह आगे बढ़ी, देखा, दरवाजे पर ताला जड़ा है, किसुन आगे बढ़ा और उसे खोलते हुए बोला—बाबूजी तो राजा बाबू के यहाँ हैं……

वह भीतर गई और अपने पलंग पर जिस रूप में आई थी, उसी रूप में पड़ गई।

मगर वह पड़ न सकी। ज्यों नींद लगने को ही थी कि उसे लगा—जैसे बाहर कुछ हो-हल्ला मच रहा है। कोई चिल्ला-चिल्ला कर पुकारना चाहता है और किसुन उसे वैसा करने नहीं देता, रोकता है—डांटता है। अभया की नींद उचट जाती है, वह उठ बैठती है और दरवाजे की ओर बढ़ते हुए कहती है—किसे डांट रहे हो, किसुन? कौन है वह?

किसुन सकपका जाता है, वह चभलाए-चभलाए बोलता है—यह—यह तो वह चंपी है।

—चंपी?—अभया बरामदे पर आकर कहती है—तुम इसे डाँट क्यों रहे थे? क्या तुम्हें सीधे मुँह बात नहीं किया जाता! बूढ़े हुए और तमीज नहीं आई! लोग आयगा ही रात-बेरात—जब उसे जरूरत होगी—और उसे डाँट-डाँट कर तुम परेशान करोगे? इसीलिए तुम रखे गए हो? याद रहे—यह मुझे अच्छा नहीं लगता।

किसुन सकपका कर खड़ा हो गया एक ओर। वह अभया को

जानता है; पर आज की अभया उसकी आँखों में बड़ी प्रखर हो उठी। कभी उसने इस तरह की डांट न खाई थी उससे !

अभया रुकी न रही, वह आगे बढ़ी, उसने देखा—चंपी ही है और वह सिसक रही है। वह पूछ बैठी—क्यों री; क्या हाल है ?

—बचाओ माँ को अभया बहन, वह तो दम तोड़ रही है···

—दम तोड़ रही है ! अरी क्या कहती है ? वह तो अच्छी हो चली थी न···क्या कुछ खिलाया-पिलाया तो नहीं······

चंपी कुछ न बोली, वह तो उसी तरह सिसकती ही रही···

अभया एक बार भीतर गई, फिर तुरत वहाँ से निकल कर बोल उठी—चल चंपी, देखूँ तो, हो क्या गया !

और वह द्रुत गति में चंपी के साथ उसके घर की ओर चल पड़ी। उसने एक बार राजा बाबूकी हवेली की ओर देखा देखा—डे-लाइटोंकी रोशनी अब उतनी उज्ज्वल नहीं, धूमिल पड़ रही है, कोलाहल निस्तब्धता में परिणत हो गया है, और शहनायियों का सुहावना स्वर जाने क्यों विषाद का रोदन-जैसा प्रतीत हो रहा है; फिर भी अभया द्वंद्व-अंतर्द्वंद्व के बीच यथा संभव निर्द्वंद्व होकर ही बढ़ती जा रही है······और इस तरह जब वह चंपी के घर के पास पहुँच पाती है, तभी कुत्तों का एक झुंड वीभत्स रूप से काँय-काँय कर उठता है। अभया चंचल हो उठती है, फिर भी हिम्मत नहीं हारती; पर उत्साह भीतर-ही-भीतर शिथिल-सा जान पड़ता है। चंपी आगे बढ़ती है और जैसे ही दरवाजे की टट्टी हटाती हुई भीतर घुसना चाहती है, तभी एक जोर की चीख आती है और रुग्णा का सारा शरीर अकड़ कर रह जाता है। अभया दौड़

कर भीतर जाती है, रुग्णा का हाथ अपने हाथ पर लेकर उसको नाड़ी टटोलती है, फिर नाक के पास हाथ लेजाकर देखती है। उसके मुँह से एक सर्द आह निकल पड़ती है और तभी चंपी ढाह मार कर चित्त गिर पड़ती है।

कितना करुण वह दृश्य है! अपने अध्ययन काल में अभया जानें कितनी मृत्यु को खुली आँखों देख चुकी है; पर कभी उसने आह न भरी, आज उसके सामने शव पड़ा हुआ है और वह अपने में बल नहीं पाती जिससे वह ग्यारह साल की मातृ-हीना चंपी को आश्वासन बंधा पाय। एक टिमटिमाता चिराग था, बुझ चुका, आग की बची-खुची राख में छिपी एक चिनगारी थी, वह स्वयं राखमें निभ चुकी है।

और उस समय भी राजा बाबू के सिंह-द्वार के ऊँचे मंच से शहनायियाँ भैरवी के स्वर में आलाप ले रही थीं।

पंचम परिच्छेद

मृणाल के विवाहोत्सव के कारण गाँव में जो आनंद की सरिता फूट निकली थी, वह उसकी विदा के साथ रुक गई। एक ज्वार उठा, फिर अपनी जगह जा रुका, एक उत्तेजना आई, फिर वह सो गई। अब चारो ओर वही कर्म-कोलाहल है। वही पुराना राग, वही धंधा, जो सदियों से होता आया है और शायद आगे भी जो इसी तरह चलेगा। डा० स्वरूप राजा बाबू के घर जाते हैं, राजा बाबू भी डा० स्वरूप के घर आते हैं। डा० स्वरूप ने मृणाल के विवाह में रात-की-रात और दिन-के-दिन राजा बाबू के घर बिताए। उन्होंने अपने विवेक, अनुभव, सहनशीलता और धैर्य का जो परिचय दिया, इससे राजा बाबू के भीतर जो-भी उनके प्रति छिपी दुर्भावना थी, वह शांत हो गई। डा० स्वरूप ने समझा कि वह उत्सव राजा बाबू का नहीं, स्वयँ उनका था और मृणाल राजा बाबू की नहीं, उनकी अपनी कन्या है। मृणाल ने अपने स्नेह-तंतु से दो को निकट ला बिठलाया। अब वह गाँव की नहीं, किन्तु गाँव की एक सजल स्मृति है। और उसी सजल स्मृति को लेकर वे दोनो वृद्ध जैसे जी रहे हैं।

मगर अभया इन दिनों अधिक-अधिक चंचल हो उठी है। क्यों वह चंचल है—इसका कारण वह नहीं जानती। उसके स्मृति-पथ पर बहुत-से चित्र आते-जाते हैं, पर कोई अचल हो

टिक नहीं पाता। अभया नहीं चाहती कि कोई उसे झकझोरे—कोई उसे चंचल-विभोर करे। वह अब तक जिस तरह अपने को दमन करती आ रही है, उसी तरह वह अपने को दमन कर लेगी। वह संयम करना जानती है और वह अपने को संयम की सीमा से बाहर ले जाना पसंद नहीं करती। उसका जीवन कर्म-कठोर है। वह रुग्ण स्थान पर जिस सफलता पूर्वक अब तक अस्त्र चलाती रही है, उसे वह पूर्ण रूप से स्मरण है। वर्षों की साधना क्षण-भर की सजल-तरल स्मृति-लहरी में किस तरह डूब जाय! नहीं, अभया उसे डूबने न देगी। वह अपनी जगह सजग है, वह अपनी जगह अचल है।

अभया को गाँव की पहाड़ी अतिशय प्रिय है। उसका मन जब कभी उलझता है तब वह सीधे पश्चिम ओर की राह पकड़ लेती है। वह कभी पर्वाह नहीं करती—कौन क्या उसके बारे में कह रहा है। वह चल पड़ती है पहाड़ी पर—उस पर धीरे-धीरे चढ़ती है और टेढ़ी-मेढ़ी उबड़-खाबड़ पगडंडियों पर बढ़ती, गिरती, संभलती ऊपर की चोटी पर जा पहुँचती है, जहाँ की समतल सतह पर एक शिवालय है, और छोटे-बड़े एक-दो चौपाल और दो-एक झाड़ियाँ भी! स्थान अवश्य रमणीय है, वहाँ भादों चतुर्थी और फाल्गुन शिवरात्रि को मेला-सा लग जाता है! यों जो शिव-भक्त हैं, नित्य प्रति प्रातः काल आकर शिवजी को पत्र-पुष्प और धूप-दीप से प्रसन्न करना नहीं भूलते। मगर अभया का उद्देश्य उनसे भिन्न है, वह प्रातः काल नहीं, अपराह्न में आती है और संध्या कालीन सूर्य को देखती है और देखती है कि उस पहाड़ी के सटे वक्र होकर दक्षिण-

पश्चिम जो नदी वह निकली है, वह कितनी सुन्दर है, कितनी सजीव !

मगर आज जब वह उस पहाड़ी पर चढ़कर पश्चिमांचल की ओर देख रही है, तब वह पाती है कि, कुछ दूर पर एक कार गाँव की ओर दौड़ी आ रही है। वह चोटी पर से देखती है, कि वह कार ऊपर से कितनी छोटी दीख रही है, जैसे वह एक खिलौना है, जो चाबी से स्प्रिंग भर कर चलाई जाती है। वह उस कार को इतना लघु रूप में पाकर स्वयं हंस उठती है और उसकी हंसी उस समय और भी द्विगुणित हो जाती है, जब उस पर के चढ़े हुए व्यक्ति उसके रुक-रुक जाने पर, उतर-उतर कर उसे पीछे से धक्का दे-देकर आगे बढ़ाते हैं ! इस तरह कार चल तो पड़ती है कुछ दूर तक, फिर रुक जाती है और अब जो रुकी तो रुकी हुई है ! उस पर के चढ़े हुए व्यक्ति खुले खेत के टीलों पर खड़े हो इधर-उधर ताकते हैं—और कार अपनी जगह पर ज्यों-की-त्यों पड़ी है।

अभया यह-कुछ ऊपर से ही देख रही है, पर इस पर वह जमी नहीं रहती। वह सूर्य की ओर मुंह किए बैठी है जिससे उसका सारा वदन आरक्तिम हो उठा है। उसे कुछ याद आता है, वह अपने-ही-आप कुछ गुनगुनाने लगती है। और जब संध्या कुछ धूमिल हो आती है, तब वह दौड़ती हुई उतर पड़ती है और उतर कर सड़क पर आते-आते संध्या घनी हो उठती है। वह गाँव की ओर चल पड़ती है। चल पड़ती है, द्रुत गति में, जैसे उसे अधीर-अस्थिर किए कोई आगे की ओर खिंचे लिए जा रहा है; पर उसकी गति स्वयं मंद पड़ जाती है जब वह चंपी के

घर के पास आकर सुनती है, जैसे कोई किसी को डाँटकर कह रहा हो—क्यों री कलमुंही, तू माँ के साथ मर गई क्यों न ?

कलमुंह —अभया मन-ही-मन सोचती है—कलमुंही किसके प्रति कही जा रही है। अभया जानती है उस घर में सिवा चंपी के दूसरी और है कौन ? फिर कलमुंही कौन है ? अभया रुकी नहीं रह पाती, वह उस ओर मुड़ पड़ती है और चंपी-ओ चंपी पुकारती हुई आंगन में पहुंच कर देखती है—चंपी घर के ओसारे की टूटी चटाई पर अस्तव्यस्त दशा में पड़ी है और रह-रह कर वह कराह उठती है।

अभया वहाँ पहुँच कर कुछ समझ नहीं पाती और वस्तुस्थिति को जानने के लिए वह उसके सामने खड़े पुरुष से नहीं—खुद चंपी से ही पूछती है—क्यों,क्या हाल है री चंपी ? — कहती हुई वह उसके बदन पर हाथ फेरने लगती है।

मगर चंपी कुछ बोलती नहीं, बोलता है उन खड़े आदमियों में से एक—मोटर से टकरा कर गिर पड़ती थी। चली थी मोटर देखने, भोंपा बजा और दौड़ पड़ी। खैर हुई कि दबी नहीं, मगर टक्कर बचा न पाई।

—ओह आई-सी !—अभया बोल उठी और चंपी के बदन पर हाथ फेरते हुए कहा—कहाँ चोट है रीचंपी ?

चंपी दर्द से व्याकुल थी, वह उसी व्याकुलता को लेकर अपने हाथ को दर्द की जगह पर फेरती हुई बोली—ओह ! बड़ा दर्द है यहाँ ।

अभया ने दर्द की जगह पर हाथ फेरा, उसे दबाया—दबाते ही चंपी कराह उठी। कराह से अभया व्यथित नहीं हुई, उसका

रोष ही उबला और उबलते रोष को लेकर उन खड़े आदमियों की ओर देखते हुए बोली—तुमलोग इस तरह क्या मुँह ताकते हो? बिगड़ना तो जानते हो, मगर यह नहीं जानते कि बिगड़ने से इसका दर्द हल्का नहीं होगा! पानी गरम करो, अभी अच्छा हो जाता है·····

सामयिक उपचार उस समय जो-कुछ होना चाहिए—कर-करा कर चंपी से अभया ने कहा—अभी मैं घर जाती हूँ और एक आदमी को साथ लिए जाती हूँ। इसके हाथ मालिश के लिए तेल भेजूँगी! उसकी दर्द की जगह पर लेप कर देना। हलकी ठोकर लगी, हड्डी टूटने से रही, खैरियत रही, अब जो दर्द है, वह भी जाता रहेगा। अब इसतरह मोटर की ओर दौड़ मत पड़ना। क्यों?

चंपी कुछ बोली नहीं, अभया अपने घर की ओर चल पड़ी।

मगर अभया जब अपने हाते में आ पहुँचती है, तब वह वहीं से देखती है कि सामने वाले दालान में उसके पिता बैठे हैं और एक कोट-पैंटधारी सज्जन से हंस-हंस कर बातें कर रहे हैं। अभया अपनी मुद्रा में जिस गति से आई थी, उसी गति से वह उसी दालान होकर अपने कमरे की ओर बढ़ गई। डा० स्वरूप ने अभया को जाते समय अवश्य देखा और देख कर कुछ सोत्सुक होकर कुछ कहा भी चाहते थे; पर वेजो कुछ कहा चाहते थे, कह नहीं सके। अभया अपने कमरे में आकर स्नान-घर की ओर चल पड़ी।

कुछ ही क्षण के बाद जब अभया अपने कपड़े बदल कर स्नान-घर से बाहर निकली तब उसने सुना कि उसके पिता उसे पुकार

रहे हैं। अभया रुकी नहीं, वह सीधे दालान की ओर जाकर अपने पिता के पास पहुँच कर बोल उठी—क्या है बाबूजी ?

आओ— इधर आओ, अभया बेटी—कह कर डा० स्वरूप ने अभया की ओर देखते हुए कहा—तुम्हें जान कर प्रसन्नता होगी कि जिन सज्जन को तुम सामने बैठे पा रही हो-आप हैं मि० आनंद कौशल। आप इंजियरिंग की ऊ ची डिग्री लेकर अभी-अभी लिड्स युनिवरसिटी से आए हैं। आप की इच्छा है कि यहीं कुछ एकड़ जमीन लेकर एग्रीकल्चर का फार्म खोलें। राजा बाबू की जमीन आपको पसंद आई है···और मि० कौशल—डा० स्वरुप इस बार मि० कौशल की ओर मुखातिब होकर बोले—अभी-अभी मैं जिसके बारे में आपसे कह रहा था—वही मेरी पुत्री—अभया···

—ओ, गुडलक— कह कर मि० कौशल कुशन से जरा उठे और हैंड-सेक करने के लिए अभया की ओर अपना दायाँ हाथ बढ़ाया। मगर अभया ने अपना हाथ नहीं बढ़ाया बल्कि अपने दोनों हाथों को जोड़ कर उनके प्रति अपना नमस्कार जनाया और एक खाली पड़ी कुशन की ओर बैठने को बढ़ती हुई बोल उठी—यह तो अच्छा रहा बाबूजी। पहले एक पागल था, अब दो पागल हुए। मगर मैं समझ नहीं पाती कि जो लिड्स युनिवरसिटी की ऊँची डिग्री लेकर अभी-अभी विदेश से आए हैं वह ऐसे दिहात में आजायँ जहाँ कोई चार्म नहीं········

मि० कौशल समझ गए, अभया क्या कहा चाहती है, इसलिए वह बीच ही में बोल उठे—आपका अन्दाज कुछ गलत नहीं मिस स्वरूप ? पागल भी जो आपने कहा है,वह भी बिलकुल

सही है; मगर डा० स्वरूप और मुझमें कुछ अन्तर है—वह अन्तर मौलिक है! डा० स्वरूप अपने जीवन की लंबी अवधि नगरों में काट कर शांति की खोज में यहाँ आ बसे हैं और मैं······आप कह सकती हैं, मैं अभी से शांति की खोज में हूं। अगर आप यह कहा चाहती हैं तो शायद गलत होगा—मैं शांति-वांति कुछ नहीं चाहता, आप जानती हैं, मैं हथौड़ा चलाने वाला आदमी हूं, मुझे तो वह कठोर कर्म ही चाहिए—धूप-गर्मी-बरसात···जो सामने आए, खुले बदन उसे झेलूं...और वह झेलना...उसे झेलने के लिए ही तो मैं जंगलों को आबाद करने आया हूं······

मि० कौशल ने इस बार अभया की ओर देखा, अभया का मुंह टेबिल पर पड़ी लैंप के प्रकाश की ओर था जिससे मि० कौशल को स्पष्ट जान पड़ा कि उनकी बातों से अभया की आकृति प्रसन्न नहीं है, उसने पाया कि अभया की भवें जरा सिकुड़ आई हैं······मि० कौशल ने उधर से अपनी दृष्टि हटा ली और कुछ कहा ही चाहते थे कि स्वयं अभया बोल उठी—जंगलों को आबाद करना कहने में जितना सहज है, काम में उतना सहज नहीं! शायद हो भी सकता हो—मैं ठीक नहीं कह सकती। मगर मैं जानना चाहती हूँ कि आप नेशनलिस्ट हैं क्या?

अभया बोलकर मि० कौशल की ओर देखने लगी, और उसने पाया कि मि० कौशल के कोट-पेंट और कमीज का खुला भाग—सब-के-सब खादी के ही हैं।

मि० कौशल अभया की बातों पर हंस पड़े और हँसते ही बोले—ऐसा कुछ मैं नहीं हूँ जो आप समझ रही हैं······

—तो क्या मैं गलत समझ रही हूं?—अभया ने इस बार

उनकी ओर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

—शायद यह गलत नहीं!

—फिर शायद क्यों?—अभया ने गंभीर होकर ही कहा—खुलकर आपको कहने में इतनी परेशानी क्यों हो रही है? मैं सी० आई० डी० नहीं, आपको इतमीनान होना चाहिए और नेशनलिस्ट होना कुछ बुरा नहीं! क्यों?

मि० कौशल मुस्कराये और उत्तर में कुछ कहा ही चाहते थे कि अभया को स्मरण हो आया कि उसके साथ जो अभी-अभी आदमी आया है, वह बाहर में बैठा है, उसके हाथ चंपी के लिए तेल और दवा भिजवानी है, वह बोली—कुछ क्षण के लिए मुझे इजाजत दीजिए··· मैं अभी आती हूँ······

और अभया भीतर की ओर गई और कुछ ही क्षणके बाद दो शीशियाँ लेकर बाहर जाकर उस आदमी को दे आई, वह अभी बैठने भी न पायी थी कि मि० कौशल बोल उठे—आप इतनी रात को भी दवा देना नहीं भूलतीं?

—आपने ठीक ही समझा—अभया कुछ गंभीरता लिए हुए बोली—भूलूँ कैसे? भूल वह कर सकता है जो अपने आप में ही भूला हुआ है! जो गाँव में आते-आते ही ऐक्सीडेंट कर सकता है······

—ऐक्सीडेंट—इसबार डा० स्वरूप बोल उठे—कैसा ऐक्सीडेंट, बेटी!

—सो तो आपसे ही पूछ क्यों नहीं लेते बाबूजी?

—क्या बात है मि० कौशल? रास्ते में······

—रास्ते में बड़ी परेशानी रही, डा० स्वरूप—मि० कौशल

बोल उठे—मेरे दोस्तों ने बतलाया कि रास्ता ठीक है, कार चली जायगी, मगर रास्ता इतना खराब निकला कि मत कुछ पूछिए, किसी तरह जब गाँव में कार आई तो अमूमन लड़के दौड़ पड़े और उसी समय शायद कोई लड़की थी—वह इस कदर दौड़ी आई जब कार रोकना कठिन हो गया, बहुत बचाते-बचाते जरा ठोकर लग ही गई। वह ऐसा ऐक्सीडेंट न था जिसकी ओर मिस स्वरूप ध्यान दिला रही हैं···

—आखिर दिहात जो ठहरा—डा० स्वरूप कुछ आश्वस्त हो कर बोले—शहर की बात कुछ और है; मगर क्या बात है, अभया? ऐसी कुछ चोट ज्यादा तो नहीं······

—ज्यादा और कम की बात मैं नहीं कह रही, बाबूजी!—अभया बोली—मैं तो कह रही थी कि जो लिडस् युनिवरसिटी के डिग्री होल्डर हैं, इंजिनियर साहब, उनकी थोड़ी भी गलती······

—आखिर गलती हो जाती है, अभय—डा० साहब बोल उठे—मशीन जो ठहरी, बे काबू-हो जाना कुछ असंभव नहीं...

—फिर भी मैंने उसे काबू किया, डा० स्वरूप!—मि० कौशल अपने आप प्रसन्न होकर ही बोले—चोट कुछ सिरियस टाइप की तो नहीं मिस स्वरूप? मेरा खयाल है, ऐसा कुछ न होगा, अगर हो भी तो अब डर नहीं, जब मैं पाता हूँ कि आप खुद डाक्टर हैं······

—हाँ, मैं डाक्टर हूँ!—अभया जरा अपनी भवों पर बल डालते हुए बोली—आप ऐक्सीडेंट करते चलें औरमैं मरहमपट्टी लगाती चलूं। यही आपके कहने का मतलब है न? क्यों, नहीं?

—नहीं-नहीं, मिस स्वरूप !—मि० कौशल जरा अपने आप में ही सकुचाते हुए बोले—यह मेरा मतलब नहीं—कतई नहीं ! मगर मुझ से भूल तो हो चुकी है, यह तो मान ही लेता हूँ।

—मगर मुझे भय है कि जब आपका कल-कारखाना खुल जायगा, तब आपसे जाने इस तरह की कितनी भूलें न होंगी और शायद गाँव वाले इस तरह जाने कितने परेशान न होंगे।

अभया ने इस बार कस कर अपना रिमार्क पेश किया। मि० कौशल अपने आप में अस्त-व्यस्त जैसे दीखे, मगर अभया अब भी उनकी आकृति की ओर ही देख रही थी ; मि० कौशल ने उतने ही कुछ क्षणों में अपने आपको संभाला और संभलते हुए ही कहा—परेशान करना मेरा उद्देश्य नहीं, मिस स्वरूप ! मैं जानता हूँ कि दिहात के आदमी सूधे-सादे हैं, अपने तरीके से चलते हैं, मगर जिस तरह चलते आए हैं, वह समय के अनुकूल नहीं कहा जा सकता ! इन्हें पथ-प्रदर्शन चाहिए। आज विदेशों में जो इतनी उन्नति हुई है, वह मशीन के द्वारा ही हुई है। वे लोग वैज्ञानिक तरीके से काम करना जानते हैं। वहाँ जमीन की बहुत कमी है ; पर उपज अच्छी कर लेते हैं। यहाँ जमीन की कोई कमी नहीं ; मगर जिनके पास भी इफरात है, वे भी उतना गल्ला नहीं पैदा कर सकते जिनसे वे सुखी-संपन्न कहला सकें। मुझे वही आदर्श यहाँ सामने रखना है। मैं यह दिखलाना चाहता हूँ कि किस तरह हमारी जमीन अधिक-से-अधिक गल्ले दे सकें, किस तरह हमारे किसान भाई कम मिहनत और थोड़ी-सी जमीन में अपने सुख के साधन जुटा सकें ! यही हमारा उद्देश्य है—यही हम चाहते हैं, इसीसे मैं गाँव की ओर मुड़ा हूँ। मैं समझता हूँ,

आप भी इस विचार को पसन्द करेंगी ! आपके पास, जैसा कि डा० साहब ने मुझे बतलाया है, काफी जमीन है। इतनी जमीन से बहुत-कुछ किया जा सकता है; मगर इस तरह नहीं—जिस तरह अभी आपलोग चल रहे हैं ! सुधार तो चाहिए ही, क्या आप सुधार को पसन्द नहीं करतीं, मिस स्वरूप ?

इस बार अभया अपने आप हँसी, मगर उस हँसी का अर्थ मि० कौशल समझ नहीं सके, वे अभया की ओर देखते रहे······

और अभया हँसते-हँसते ही बोल उठी—आपकी स्पीच कुछ बुरी नहीं ! जान पड़ता है, आपने अपनी युनिवरसिटी में इंजनियरिंग ही नहीं—ओरेटरी भी सीखी है। क्यों, नहीं ?

इस बार मि० कौशल भी हँसी को रोक न सके ! पर, वह खुलकर हँस न सके, वह कुछ गम्भीर होकर ही बोले—आप मेरी बातों को इतनी लाइट में न समझें, मिस स्वरूप ! मैंने जो कुछ कहा है—कुछ ओरेटरी दिखाने के खयाल से नहीं—और ओरेटरी से मेरा कुछ वास्ता नहीं ! हमलोग मजदूर हैं और मसत करना जक्कानते हैं—इतना ही भर कह सकता हूँ, इससे ज्यादा नहीं।

—ओह, धन्यवाद, मजदूर साहब को !—अभया हँसती हुई बोली—अब मैं समझ पायी कि आप मजदूर हैं !

और अभया खिलखिला कर हँस पड़ी। वातावरण जिस रूप में धूमिल हो चला था, वह अभया की हँसी से स्पष्ट हो उठा, और उस समय और भी स्पष्ट हो उठा, जब मि० कौशल अपनी हँसी के वेग को संभाल न सके।

बातें जाने और कब तक चलतीं; मगर इसी समय राजा

बाबू की हवेली से एक नौकर ने आकर इत्तिला दी कि इंजिनियर साहब को अब वहाँ चलना ही चाहिए।

और मि० कौशल उठ खड़े हुए और अभया से बोले—जो भी हो, मिस स्वरूप, आप से मिलकर मुझे अतीव प्रसन्ता हुई! मैं जानता था कि यह निरा दिहात है—गलत साबित हुआ, जब कि आप-सी···हाँ सच है, जहाँ डा० साहब जैसे वयोवृद्ध अनुभवी व्यक्ति मौजूद हैं! कौन कहता है—यहाँ चार्म नहीं है······

—ओह, चार्म!—अभया उठ खड़ी हुई और मुस्कराती हुई बोली—खूब चार्म है—इतना कि, आपकी तबीयत अघा गई होगी······

—बेशक, मिस स्वरूप!

मिस्टर कौशल ने इस बार विदा लेते वक्त डा० साहब से नमस्कार करते हुए कहा—अगर रायबहादुर को मेरे विषय में आपके परामर्श की जरूरत पड़े तो······

—आप निश्चिन्त रहिए मि० कौशल!—डा० स्वरूप ने आश्वासन के स्वर में कहा—मेरी ओर से कोई बात अधूरी न रहेगी। जब आप सब तरह तैयार हैं तो यह सेटलमेंट होकर रहेगा, मैं अवश्य-अवश्य आपका साथ दूँगा!

—आप साथ देंगे, यह तो आशा है ही—मि० कौशल बोले, फिर अभया की ओर देख कर हँसते हुए कहा—मगर मैं कह नहीं सकता, मिस स्वरूप······

—मिस स्वरूप से आप भय ही खाते रहिए—अभया हँसी में ही बोली—मैं यह हर्गिज नहीं चाहती कि आप एक्सीडेंट करते चलें और मैं मरहम-पट्टी करती चलूँ······

—खैर, मरहम-पट्टी करने वाला ही अधिक धन्यवाद के पात्र हैं और उनके प्रति मेरा नमस्कार रहा।—कहते हुए मि० कौशल बंगले से बाहर चल पड़े।

षष्ट परिच्छेद

आनंदकौशल उन युवकों में से नहीं है जिनमें कार्य करने की उमंगें तो हैं पर उन उमंगों में स्थायित्व नहीं, जो केवल रंगीन स्वप्नों के जाल ही नहीं बिना करते वल्कि उन स्वप्नों का साकार रूप भी देना चाहते हैं—देना जानते हैं। समृद्ध परिवार का युवक आनंदकौशल विदेशों में वर्षों अपनी साधना में तप चुका है, वहाँ की अच्छाइयों और बुराइयों के भीतर रह कर भी उसने अपने जीवन के लिए अच्छाइयों को ही चुना है। स्वाधीन देशों में परिभ्रमण करने से न केवल उसकी देह ही सुपुष्ट हुई है, वरन उसका मन और बुद्धि भी स्थिर और वलवती है। वह चाहता तो अपने देश के बड़े ओहदे पर सरकारी नौकरी को ग्रहण कर सकता था, पर उसके स्वतन्त्र विचार इस कार्य में उसे सम्मति न दे सके और उसने अपने अध्यवसाय और उद्यम को जिस दिशा में लगाना चाहा, वह है उसका ग्राम्य भूमि को ऐग्रिकल्चर फार्म के रूप में देखना; मगर यह कार्य इतना सुगम नहीं, अनेक अन्तराय है, अनेक वाधाएँ; फिर भी वह वाधाओं की ओर देखना नहीं चाहता, वह देखता सुदूर भविष्य को, और वह वहाँ पाता है कि उसके खेत लहलहा रहे हैं, बिजली की मशीनों से पानी पटाया जा रहा है, बंजर जमीनों में खाद डाले जा रहे हैं, उनकी जाँच की जा रही है, उसकी वहाँ एक प्रयोगशाला

है जिसकी चारो ओर की कुछ जमीन प्रयोग के लिए सुरक्षित रख छोड़ी गई है, जिसमें आए दिन एक-न-एक प्रयोग चलते रहता है, जब वह प्रयोग सफल हो जाता है तब उस प्रयोग को विशेष रूप में कार्य के रूप में परिणत किया जाता है। इस तरह उसका एग्रिकल्चर फार्म एक आदर्श, एक उन्नत एवं समृद्ध संस्था के रूप में समझा जाता है और इस संस्था के द्वारा वह देहातियों को भी अपने संपर्क मे लाना नहीं भूलता। किसान उसके पास आते हैं, उन्हें प्रयोगशाला दिखाई जाती है, उन्हें अपने सफल प्रयोग समझाए जाते हैं। इसतरह उन किसानों को उससे बल मिलता है, इस तरह उन्हें अपने जन्मगत संस्कारों को पुष्टि मिलती है। तब वे समझ पाते हैं कि जो कृषि-कर्म उनके लिए आनंद का नहीं—केवल वितृष्णाओं से भरा एक नीरस- अस्वादु कार्य था, वही कार्य कितना आनंदप्रद, कितना सुखमय और कितना प्रतिष्ठित है......

मगर आनंदकौशल का यह रंगीन स्वप्न ही नहीं है, वह केवल अपने स्वप्नों में उलझा-उलझा सा नहीं रह पाता, वरन उसका उद्यम, इस दिश में, आगे बढ़ रहा है, प्रारंभिक कठिनाइयाँ हल हो चुकी हैं। आज पाँच सौ एकड़ जमीन राजा बाबू से बंदोबस्त हो चुकी है—इसमें उसे एक बड़ी रकम लगानी पड़ी है और यह रकम उसकी खास संपत्ति नहीं, वह लिमिटेड कनसर्न से उसे प्राप्त हुई है जिसका वह मैनेजिंग डाइरेक्टर है। अवश्य रायबहादुर और डा० स्वरूप-दो ग्रामीण ही अभी इस कनसर्न में आ पाए हैं, शेष जो हैं, वे नागरिक और प्रतिष्ठा-संपन्न व्यक्ति हैं; पर सबसे अधिक शेयर उसका निजी ही है......

आनन्दकौशल धुन का पक्का युवक है! उसका उद्योग अपनी दिशा में सतत सचेष्ट है। फिर भी उसके सामने हंसने वाले की कमी नहीं! वे हँसने वाले कौशल को निरा पागल ही नहीं समझते, सनकी, मूर्ख,अहंकारी और जाने क्या-क्या समझते हैं! किन्तु वह अपनी जगह अटल है, अपने विश्वास के निकट सच्चा और अडिग है। वह उपेक्षा-भरी हँसी पर स्वयं हँस पड़ता है, जान पड़ता है, जैसे अपनी हंसी की मंदाकिनी में उपेक्षकों की हँसी और व्यंग को सुदूर वहा ले जाना चाहता है वह!

और ऐसा सतत सचेष्ट आनन्दकौशल उस रात को अभया से विदा लेकर रायवहादुर का अतिथ्य-स्वीकार कर अपने विछावन पर आ लेटा, तव उसके मानस-पटल पर अभया की निर्भय मूर्ति कई बार आई-गई, पर उसने पाया कि जो अभया इतनी प्रखर है, जिसके व्यंग-वाण इतने विषाक्त हैं, वह चाहे अपने-आप में जो हो, वह उसके कार्य में विद्वे-षिणी नहीं हो सकती। अवश्य वह उदार है और सदय भी; फिर एक सदय हृदय से उसके कार्य में वाधा नहीं आ सकती, वह उसकी वाधिका नहीं हो सकती .....

मगर वह उस अभया की ओर उन्मुख क्यों हो? वह जिस कार्य के लिए आया है, वही उसके लिए उपयुक्त है, वही कर-णीय है! वह अभया की ओर क्यों झुके? वह अभया की मूर्त्ति को क्यों अपनी पलकों के बीच झूलने दे! नहीं यह अभया उसके विचार को अस्तव्यस्त कर डालेगी, यह अभया उसे स्थिर न रहने देगी···नहीं, नहीं, उसे अभया की ओर

झुकना उचित नहीं, वह कर्मठ है, कठिन-कर्मा है... वह... वह...

और वह आनन्दकौशल अपने मानस से अभया को अनिच्छित वस्तु की तरह दूर फेंक कर एक स्वस्ति की साँस लेता है और इस तरह वह अपनी निद्रा को बुला पा सकता है...... अभया झंझा की तरह उसके सामने आई थी और उसीकी तरह वह चलती बनी, किन्तु जो झंझा उसके हृदय को एक बार झंकृत कर गई है, उस हृदय में अस्पष्ट रूप में, छाया-सी एक मूर्ति का आभास मात्र अब भी विद्यमान है, वह कर्मठ आनंदकौशल अत्यन्त प्रयत्नशील होने पर भी उस आभास को अपनी जगह से तिलमात्र हटाने में असफल है ! ओह, वह आभास......वह आभास ...

आनंदकौशल अब उस गाँव के लिए अपरिचित नहीं। पहाड़ी और पद्मा नदी से घिरी जो जमीन सदियों से अपनी छाती पर विभिन्न तरह के जंगली गाछ-वृक्षों, झाड़ियों और लताओं को लादे पड़ी थी जिनके भीतर वन्य-जन्तुओं और विषधरों का अविचल निवास था, आज उसी पद्मा के किनारे, उसी जमीन की एक ओर को, जो पहाड़ी की तलहटी में पड़ती है, झोपड़े तैयार हो रहे हैं। उन देहातों से बाढ़ की तरह मजदूर आ रहे हैं, जो दिन भर का काम करके चले जाते हैं ; मगर वे मजदूर जो दूर के हैं, उन झोपड़ों में रहते और दिन-भर काम कर चुकने के बाद रात को रसोई बना कर खाते-पीते और ढोलक और मृदंग पर बाबा तुलसी की रामायण, सूर के पद और कबीर की साखियाँ गाते-बजाते और निद्रा की शरण लेते हैं। कौशल भी

उन मजदूरों के गीतों में रस लेता, वह भी एक मजदूरा ही तो है······

मगर आनंदकौशल केवल मजदूर ही नहीं है, वह वैज्ञानिक भी है। नयी-नयी मशीनें मँगाई जाती हैं, पद्मा नदी का वह स्थान, जहाँ सतह अधिक गहरी है, साफ किया जा रहा है, उसके सामने पानी के मोटे-मोटे बंधे रखे जा रहे हैं, कुछ दूरी पर, जहाँ की मिट्टी ईंटे बनाने के काम में आ सकती है, ईंटे बनाई जा रही हैं, उनके पकाने के लिए दूसरी जगह चिमनियाँ बैठाई जा रही हैं और बाकी जगह अपार जन-समूह जंगलों को साफ करने में लगे हैं! जंगली जानवर जान लेकर अपनी जगह ढूँढ़ते-फिरते हैं, उनमें से जो सामने आ पड़ते हैं, गोली का शिकार बनते हैं, उनके चमड़े उधेड़ लिए जाते हैं और मांस और हड्डियाँ गड़हों में सड़ कर खाद बनने को डाल दी जाती हैं। विषधर सर्पों का भी यही हाल है! उनके रंग-बिरंगे चमड़े मसाले डाल कर धूप में सुखाए जा रहे हैं! उखाड़ी और काटी गई लकड़ियों में से कुछ तो चारो ओर के घेरों में काम लिया जाता है और जो तख्ते बनाने के काम में आ सकती हैं, उन्हें चीरा जा रहा है और अधिकांश एक जगह इकत्रित कर रखी जाती हैं। चारो ओर से उद्यम का प्रवाह जैसे चल रहा है! काम—केवल काम, जैसे लगता है, उन काम-गारों में जाने कहाँ की चेतना सजग हो आई है! औरत-मर्द, बच्चे-बूढ़े—जो भी वहाँ पहुँचते हैं, शक्ति भर काम करते हैं। किसी को काम करने के लिए दबाव नहीं डाला जाता! वे एक दूसरों को काम में पिल पड़े देख कर अपने में अजीब जोश और बल का अनुभव करते हैं। आनंदकौशल की अविराम गति में

देख-रेख चल रही है। उसका ध्यान एक रस सर्वत्र छाया है। कोई उनकी आँख से बच नहीं पाता! जो गाँव सदियों से निष्प्राण थे, उनमें चेतना की लहर दौड़ पड़ी है, जो अपने कर्म पर खिन्न थे, उनकी खिन्नता आनंद में परिवर्तित हो गई है। लगता है, जैसे आनंदकौशल कर्म-प्रवाह के साथ आनंद का एक बड़ खजाना लाकर उढेल रहा है वहाँ!

मगर आनंद अकेला नहीं है, उसके साथ और भी एक्स-पर्ट्स हैं जो अपने-अपने विषय के अच्छे जानकार हैं। उनमें अधिकांश वेतनभोगी हैं और लाभांश पर कुछ हिस्सेदार भी! सब के साथ आनंदकौशल का एक-सा व्यवहार है, वह बड़े-छोटे का भेद नहीं मानता, पाँच रुपए से पाँच सौ रुपए वाले व्यक्तियों में रुपए का जो प्रभेद हो, पर व्यवहार में सब एक-से समान हैं! मजदूर नहीं जानते कि वे मजदूर हैं, वेतन-भोगी नहीं जानते कि उन्हें वेतन से ही सिर्फ मतलब है। बड़े-छोटे सब सम हैं, इस तरह वह एग्रिकल्चर फार्म एक ऐसों की आज कालिनी है जो बुद्धि-जीवी हैं, श्रमिक हैं, जो बे-घरबार के हैं, जो निराश्रित और निरवलंब हैं ... पर वहां न कोई निरवलंब है, न निराश्रित। सभी को एक दूसरे का भाई-चारा प्राप्त है, सभी एक वृहत् परिवार के कुटुम्ब हैं, कोई बेगाना नहीं, कोई बेघरवार नहीं, रहने को स्वच्छ-सुन्दर हवादार कमरे, टहलने को सुर्खीसे पटी पीली-पीली सीधी सड़कें, खेल-कूद के लिए खुला मैदान, आमोद-प्रमोद के लिए अलग मकान......

उबड़-खाबड़ जमीन चौरस की जारही है, एक ओर से मशीन की हलें मोटरों से चलाई जाती हैं, बिजली के डायनमो

से नलों-द्वारा ऊँचे मंच-स्थित भीमाकार टंकों में पानी इकट्ठा किया जा रहा है—और इसी डायनमो से प्राप्त वह कालिनी रात को रोशनी से दिवाली की याद करा देती है⋯ ⋯

अभया अबभी पहाड़ी के शिखर पर आती है और पाती है कि वन-जंगलों की जो हरीतिमा संध्याकालीन लालिमा के बीच अधिक उज्ज्वल हो, उस की आँखों में एक स्वप्न की सृष्टि कर छोड़ती थी, वहाँ आज वह सुन पाती है, डायनमों और दानव जैसे मशीन-हलों का भीम गर्जन ! उसकी आँखों में रात की दिवाली स्वप्निल तंद्रा नहीं भरती। वहाँ वह पाती है, कि, स्वच्छन्द विचरण करने वाले जंन्तुओं की हूतात्माएँ अपनी लाल-लाल आँखों से वहाँ के रहने वालों की ओर घूर रही हैं। अभया समझ नहीं पाती—यह कर्म-उद्यम क्या है ? क्यों इतनी हाय-हाय है ? क्यों अनादि काल से सोई श्यामल पृथ्वी के वक्षस्थल को इतनी बेरहमी के साथ, क्यों इतनी बुरी तरह—विदीर्ण किया जा रहा है ! वह पृथ्वी जो वसुंधरा है⋯⋯ वसुंधरा ही तो, वीर भोग्या वसुंधरा⋯⋯तो क्या आनंद कौशल उन्हीं वीरों में है⋯⋯

और इस प्रश्न के निकट पहुँच कर अभया की वितृष्णा कराह कर नीचे दब जाती है, उस स्थान पर एक स्नेह का हल्का-सा झोंका बह जाता है, अभया के अंग-प्रत्यंगों में सिहरण होता है, वह नहीं जानती कि यह सिहरण क्या है और क्यों है ! क्यों वह अभय-निर्भय रहने वाली प्रखर अभया उस स्पर्श—सिहरण के वेग को सँभाल-सभाल नहीं पाती ! क्यों वह कमजोर हो पड़ती है ! क्यों वह इतनी कमजोर हो⋯⋯

और वह अपने आप में कमजोर पड़ी जब उस रात्रि में, उस शिखर पर से आनंदकौशल की प्रयोगशाला—जो खास आनंदकौशल को एक मात्र आश्रय-स्थल है—की ओर आँखें उठा कर देखती है, तब वह पाती है कि प्रयोगशाला का द्वार बंद है किन्तु उसकी एक खिड़की खुली है जिससे छनकर प्रकाश आरहाहै और उस प्रकाश में वह देख पाती है कि हाफ सर्ट पहने, जिस का कालर बे-तरतीब उठा हुआ है, एक कर्मठ युवक, उस तिक्ष्ण प्रकाश में, टेबिल के सहारे खड़ा हो, किसी चीज को गौर से देख रहा है······कितना मनस्वी है युवक !······ जिसका ध्यान, बस, एक चीज पर जमा है, वह इधर-उधर कुछ नहीं देखता···क्या इधर-उधर देखने लायक कोई चीज रही नहीं गई है ?······

और अभया अपने आप में कुढ़ जाती है, वह उस ओर से अपनी आंखें हटा कर जितना शीघ्र बनता है, शिखर से नीचे उतरती और जैसे दौड़ती हुई अपने घर की ओर चल पड़ती है···

अभया जाने क्यों अपने आप में एक अस्वस्ति का अनुभव करती है, वह अस्वस्ति किस ओर से आ रही है, उसका पता वह नहीं पाती, वह केवल इतना ही पाती है कि उसके जीवन में जो धूमकेतु बन कर उदित हुआ है, वह और को नहीं, आनंद कौशल है—वह इंजिनियर है, वह नेशनलिस्ट है ···वह दुस्सा-हसिक वैज्ञानिक और कर्मठ मजदूर है······जो स्वयं अल्प-अल्प बोलता है, पर जो कुछ बोलता है, उसमें सुन्दरता रहती है, दृढ़ता रहती है, गंभीरता और उसके मनकी संलग्नता रहती है ! वाणी, हृदय, मन और चेतना का पूंज ही तो वह आनंद है,

जो उसे अपनी ओर खिंचे लिए ले जाना चाहता है···वह कर्मठ युवक, जिसके सामने काम—केवल काम का एक अम्बार बना जैसा रहता है सतत, जो अपनी नजरों को दुनिया की ओर नहीं डालता—शायद अपने आप की ओर भी जो देखना पसंद नहीं करता, जभी तो वह अपने को वह इतना अस्तव्यस्त रखता आ रहा है, अपनी ओर से बिलकुल ला-परवा—इतना कि लगता है, उसे संभालने के लिए कुछ चाहिए—कोई चाहिए—वह जो अपने प्रयोगशाला में बैठा जाने कौन-सी गवेषणा में इतना डूबा हुआ है कि उसे, बाहर क्या हो रहा है—पता नहीं! नहीं, अभया उसे अस्तव्यस्त रूप में रहने न देगी···वह नहीं चाहती कि एक मनस्वी युवक अपने आप को इतना नगण्य समझे·····

अभया आनंदकौशल के लिए इतनी सदय नहीं है जितनी वह सोच रही है उसके प्रति! कौशल जब-जब अभया से मिला है तब-तब उसने उससे एक-न-एक व्यंग, एक-न-एक उपालंभ, एक-न-एक कटूक्ति और एक-न-एक वितृष्णात्मक शब्द ही सुना है; फिर भी उसे इतना पता है कि उन वितृष्णात्मक व्यंगों-कटूक्तियों में उसकी ईर्ष्या नहीं है, द्वेष वा हिंसा की भावना नहीं है! जो-कुछ है, वह अभया के अतलस्पर्शी हृत्तल की एक संवेदनशील सुकुमार शिशु-सी भावना है, जो अपनी जगह से झाँक कर वहीं सोयी पड़ी रहना चाहती है—किन्तु जिसे अभया स्वयं नहीं पहचानती और न पहचानते हुए, बाहर-बाहर, नारियल के खोपड़े की तरह सख्त-सख्त बातें कर जाती है! आनंद इन बातों से बुरा नहीं मानता, बुरा मानना

उसका स्वभाव भी नहीं है और तभी वह हँसते हुए कह देता है—शायद आप ठीक समझ रही हैं मि० स्वरूप……

अभया समझती है—इतना जल्द अपनी भूल को स्वीकार कर लेने वाले व्यक्ति आनंद ही हो सकते हैं—दूसरा नहीं हो सकता! कौन अपने अहं को इस तरह इतनी आसानी के साथ अपनी ओर मोड़ ले सकता है? अभया उसके उत्तर से मन-ही-मन खिन्न होकर अपने आप में छोटी हो उठती है! जो अभया के लिए जीत है वही तो उसकी सब-से-बड़ी हार है—इसे वह खूब समझती है और यह भी समझने में उसे कुछ द्विविधा नहीं रह जाती कि आखिर आनंद ने उसकी बात का खंडन न कर स्वीकार क्यों कर लिया इतना शीघ्र, जहाँ कोई भी व्यक्ति बड़ी बेरहमी के साथ खंडन करने से नहीं चूकता! तो क्या आनंद इतने ढुनमुन विचार का है?

नहीं; आनंद ऐसा नहीं हो सकता, जो अपनी विद्या-बुद्धि, ज्ञान और संपन्नता में इतना समृद्ध हो, वह ढुनमुन विचार का कदापि नहीं हो सकता; तो फिर आनंद वैसा क्यों है?

अभया आनंद को जानने का प्रयास करती है, पर उसके सामने वह एक प्रश्न बनकर ही रह जाता है जिसका उत्तर वह अपने आप में नहीं पाती। इस तरह वह अपने को शांत करने की अपेक्षा अधिक अशांत ही कर छोड़ती है, अशांति में ही उसे अच्छा मालूम पड़ता है, जब कि उसके मानस के वे चित्र, जो उसे विह्वल-बेचैन किए छोड़ते हैं—आप-से-आप छितर-बितर जाते हैं। वह स्वस्ति की एक साँस छोड़ती है, वह प्रसन्न हो उठती है।

और एक दिन जब अभया इस तरह अपने को प्रसन्न रख

पा रही थी, तभी अचानक, एक अयाचित अतिथि की तरह, अपनी कार पर आनन्द आ पहुँचा, कार से सीधे उतर कर दालान में आया जहाँ अभया उसके स्वागत के लिए बाहर की ओर ही आते दीखी और पहुँचते ही अपना नमस्कार जनाते हुए बोला—क्षमा करेंगी डाक्टर! सुना, उस दिन आप मेरे बंगले तक गई थीं, मगर······

—मगर की गुंजाइश आपके पास है कहाँ मि० आनंद—अभया जरा खिंची हुई ही बोली—आपतो जाने अपनी प्रयोग-शाला में बैठ कर······

—जभीतो-जभीतो?—आनंद प्रसन्न-वदन उसकी बात को बीच में ही रोक कर बोला —आप ठीक समझ रही हैं। प्रयोग-शाला में बैठ कर सचमुच मुझे दूसरों का ध्यान ही नहीं रह जता। यह मेरा दोष है।

—दोष?— अभया हंस पड़ी— आप भी अच्छे जीव हैं मि० आनंद, जो दूसरे के लिए गुण हो सकता है, वही तो आपका दोष है। मगर मैं यह जानना चाहती हूँ कि······ ओह, शायद कहना ठीक न होगा और ऐसों से कह कर लाभ ही क्या?

—मगर क्या कहा चाहती हैं! कह तो डालिए पहले।

—हाँ, मैं जानना यह चाहूँगी कि क्या रात-दिन वही काम—वही काम, क्या काम को छोड़ कर और दुनिया में है भी कुछ मि० आनंद? कह भी सकेंगे, है भी कुछ?

—मुझे इस तरह आप पागल न करें डा० अभया।

—आप खातिर जमा रखें, जो स्वयं पागल है, उसे पागल और बनाना मेरा काम नहीं। आप मेरी ओर से इतमीनान रखें।

—ऐसा न कहें डाक्टर!—आनंद निश्चिंतता से कुशन पर बैठते हुए बोला—आप पर इतमीनान कब नहीं है, इसके लिए आप को कुछ कहना नहीं पड़ेगा; मगर मैं···आपसे कहने में मुझे कोई हिचक नहीं····· मैं अभी वहाँ नहीं पहुँचा हूँ जहाँ मुझे पहुँचना चाहिए। आप शायद मेरे विचारों से सहमत होंगी कि थ्योरी और प्राइक्टिस एक चीज नहीं! कुछ ऐसी थ्योरियाँ हैं जिन्हें मैं कई वार पढ़ चुका हूँ, जानता भी हूँ अच्छी तरह; मगर वे प्राइक्टिस में पूरी-पूरी उतरती नहीं दीखतीं। कहां कौन सी भूल रह जाती है, मेरी समझ में नहीं आता। मैं प्राइक्टिस में उन्हें लाना चाहता हूँ···मैं इस कार्य में काफी फेल हो चुका हूँ, पर फेल शब्द मेरे लिए कोई मानी नहीं रखता—जब तक मैं अपने प्रयत्न में कामयाब नहीं होता!···आप खुद जानती हैं, जब कोई गवेषक अपनी गवेषणा में उलझा जाता है, तब उसको परेशानी कितनी बढ़ जाती है?···शायद उससे मेरी परेशानी कुछ कम नहीं है···जब तक मैं कामयाब नहीं हो लेता अपने प्रयत्न में तब तक····· डा० अभया, आप क्षमा करेंगी···मेरा उद्देश्य आपका दिल दुखाना न था! मैं जानता हूँ, जब मैं अपने प्रयत्न में सफल हूँगा तो सब से ज्यादा आप को ही खुशी होगी—शायद मुझ से भी ज्यादा·····

—आप से भी ज्यादा?

—हाँ मुझ से भी ज्यादा!

अभया का मुँह लाल हो उठा, उसके कानों की जड़ें झनझना उठीं, भवें आपस में सिकुड़ उठीं और अपने ओठ को दाँतों से कुरेदते हुए बोली—मैं आपकी होती कौन हूँ जिसे आप से भी ज्यादा···

—यही तो बात है अभया देवी !—आनंद खिलखिला कर हंस पड़ा—मैं आप से गलत नहीं कह रहा। फिर आनंद की हंसी अपने आप रुकी और शांत स्वर में बोला—मैं जानता हूँ, आप मेरी कोई नहीं—यह प्रकाश की तरह सत्य है ! पर, प्रकाश ही सत्य नहीं है, अभया देवी, अन्धकार भी एक सत्य है, उसका भी अस्तित्व है, इसे आप अस्वीकार नहीं कर सकतीं ! फिर मैं कह नहीं सकता—शायद कहने की मुझ में वह भाषा भी नहीं, जिससे मैं व्यक्त कर पा सकूं कि आप क्या हैं ? आप मेरे लिए अधिक अंधकार हैं या प्रकाश, इसे न मैं जानता हूँ और न शायद आप जानती हों ! पर अंधकार और प्रकाश में, जब कि प्रकाश से अंधकार दूर हट कर भी सर्वतोभावेण दूर नहीं हट जाता, वहीं मैं पाता हूँ कि आप खड़ी मेरी ओर, अपनी भवों पर बल डाल कर दाँतों के बीच ओठ दाबे, आँखों की कोर पर लालिमा की एक क्षीण रेखा खींचती हुई देख रही हैं···और·····और···

—बहुत हुआ, बहुत हुआ—बीचही में अभया अपने रोष में उबल पड़ी—हथौड़ा चलाने वाले मजदूर के मुंह से काव्य नहीं सोहता·····

—काव्य का स्थान हृदय है, अभया देवी ! हथौड़ा चलाने वाला मजदूर भी हृदय रख सकता है और अस्त्रोपचार करने वाला डाक्टर भी·····मगर उस हृदय का पता कौन लगा सकता है ?

—ओह, आज मैंने समझा कि श्रीमान् आनंदकौशल, जो इंजिनियर हैं, हृदय भी रखते हैं !

अभया ने कह कर मुंह दूसरी ओर घुमा लिया ! आनंद नहीं समझ सका कि अभया जो कुछ बोली, वह हंस कर या

व्यंगात्मक या रोष में! फिर भी आनंद ने अपनी हँसी लिए हुए ही कहा—मस्तिष्क जहाँ काम नहीं कर सकता वहाँ हृदय की ही बारी आती है! शायद मैं इसे ठीक-ठीक नहीं कह पा सका! आप तो डाक्टर हैं मिस स्वरूप, इस विषय में आप की श्रेष्ठता ही मुझे माननी चाहिए! क्यों, आपका क्या खयाल है?

अभया इस बार हँस पड़ी, बोली—देखती हूँ आप इंजिनियर से डाक्टर भी बनना चाहते हैं!

—डाक्टर बनना क्या इतना आसान है, अभया देवी? मगर आप के बीच रह कर और आपका सहारा पाकर यदि ऐसा बन सका तो वह मेरा सौभाग्य ही होगा!......मगर मैं जो कहने आया था, वह तो अभी कह भी नहीं पा सका! हाँ, मैं कहने आया था कि, आप क्या मेरी प्रयोगशाला चल कर न देखेंगी? शायद मैं जहाँ उलझ-उलझ रहा हूँ, आप के सामने देखूँ—जब आप वहाँ बैठी हुई हों—शायद मैं अपने उलझन को कुछ सुलझा सकूँ! क्या आप मेरी मदद करेंगी इस प्रयोग में?

—क्या आप मुझे माडल बनाना चाहते हैं?—अभया किंचित् रोष में ही बोली—देखती हूं, आप आर्ट से भी शौक रखते हैं? आप क्या-क्या बनना चाहते हैं—कुछ पता नहीं चलता—आप इंजिनियर तो हैं ही, आर्टिस्ट भी......

—नहीं, मैं इंजिनियर ही बन कर रहना चाहता हूँ अभया देवी, इससे अधिक और कुछ नहीं। मगर आप चलिए एक बार मेरे साथ, आप चल कर स्वयं पायंगी कि मैं क्या हूँ .....

अभया इस बार कुछ न बोली, वह उठ कर खड़ी हुई। आनंद भी उठ खड़ा हुआ और बोला—तो क्या आप मुझे क्षमा

न करेंगी ? जब तक मैं आपको यहाँ से लेकर नहीं चलता ···· मैं सच कहता हूँ, मैं समझूँगा कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया !

—अभया क्षमा करना नहीं जानती।

—नहीं, गलत है ! अभया क्षमा भी करती हैं, रोष भी करती हैं·····

—हाँ, रोष भी करती है—द्वेष भी करती है, ईर्ष्या भी शायद; मगर अभया क्षमा करना नहीं जानती—इतना तो आप जान ही लें।

—सच, अभया देवी, क्या यह सच है ?

—हाँ, बिलकुल सच !—कहती हुई अभया भीतर की ओर चल पड़ी। आनंद अपनी जगह पर ठिठका रहा, वह समझ नहीं सका, वह क्या सुन गया। वह ठहरा हुआ नहीं रहा। हाँ, वह वहाँ से ही नमस्कार जतलाते हुए कमरे से बाहर आकर कार पर आ बैठा, कार के सेल्फ स्टार्टर को दबाया, वह घर्र से बोली, तभी उसने सुना कि अभया कह रही है—इतनी जल्दी करेंगे तो मेरा जाना कैसे हो सकेगा ? क्या आप चाहते हैं कि मैं अपने अस्त-व्यस्त कपड़े में ही आपके साथ चल चलूँ ?

—ओह, समझा !—आनंद वहीं से अपने संकोच में सन कर बोल उठा—खैर, भूल हुई ! क्षमा कीजिए ! मैं यहीं हूँ, आप आइए—खूब इतमीनान के साथ !

—मगर इतमीनान के साथ आप मुझे ले जाना ही कहाँ चाह रहे हैं ?—अभया अपने कमरे से ही बोल उठी।

और कुछ ही क्षण में अभया हँसती हुई आकर बोली—चलिए, आज तो आप मुझ से बदला चुका करके ही दम लेंगे !

—नहीं-नहीं, ऐसी आशा मत कीजिए ! मैं बदला बिलकुल पसंद नहीं करता, वह तो पुरुषों का काम है भी नहीं—वह तो···

और कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

सप्तम परिच्छेद

नारी-पुरुष के रूप में एक दूसरे से विलग रहने वाले दो व्यक्ति आज परिस्थिति की जिस अनुकूलता में एकत्र होकर वातावरण में एक सजीवता का अनुभव कर रहे हैं, वह कुछ नया नहीं है। यह नयापन अपने आप में बहु पुरातन है—चिरंतन है। कर्म-प्रवाह में सतत प्रवहमान आनंद आज समझ पा रहा है कि जीवन में कर्म केवल एक बोझ है—वह बोझ जो जीवन को शुष्क, नीरस और खोखला बना कर छोड़ता है और अभय पाती है कि रेगिस्तान में बढ़ने वाले के लिए ओयासिस जितना अपेक्षित और आनंदप्रद है, उतना ही नहीं, वरन उससे कहीं अधिक नारी के लिए पुरुष है। उसका जीवन तो अब तक उसी रेगिस्तान-जैसा रहा है, जहाँ सर्वत्र वालूकाराशि है, हरीतिमा ढूँढे भी नहीं मिल रही—जिस वालूकामय में चल कर उसके अंग प्रत्यंगों की सुषमा नष्ट हो गई है, केवल माँस-पेशियाँ उभर आई हैं, रक्त में उष्णता और मन में तीक्ष्णता ने घर कर लिया है यह तो स्वस्थ्यता का लक्षण नहीं, मृत्यु का आह्वान है··· और उसी क्षण जब वह आनंद की ओर खुली आँखों से देखती है और देखती है कि पुरुष के रूप में जो उसे दीख पड़ रहा है, वह तो उससे भी अधिक कठोर कर्म से कुंभलाया-सा है, बिलकुल जड़-जैसा ठूँठ, तब उसके प्रति सहजात एक स्नेह—एक आत्मीयता

सजग हो उठती है और वह उसी आत्मीयता और स्नेह-सने वचनों से कह उठती है—सचमुच आप मुझे मॉडल के रूप में रख कर काम करना चाहते हैं अपनी गवेषणाशाला में आनंद ? सचमुच........

आनंद कार की स्टेयरिंग पकड़े अपने आप चौंक उठता है अभया की बातें सुनकर। अप्रत्याशित भाव से सुनी गई बातों की ओर जैसे उसका ध्यान हो ही नहीं, फिर भी वह अपने पास ही बैठी अभया की ओर देखकर बोल उठता है—ठीक मॉडल तो नहीं कह सकता, अभया देवी ! मैं किस रूप में रखा चाहता हूँ, वह मॉडल नहीं; कह नहीं सकता, किस रूप में रखना चाहता हूँ......

आनंद अब भी अपने आपमें उलझा ही है, उसे कुछ समझ में नहीं आता कि किस तरह वह अपने भाव को व्यक्त कर पाए.....

पर अभया सचेष्ट है, कुछ सचेतन भी, वह समझ जाती है, जिसे वह आनंद अपने आप व्यक्त नहीं कर पा सका। वह सहज सरल गति में बोल उठी—देखती हूँ, रात-दिन मशीन चलाते-चलाते आप भी पूरे मशीन हो गए हैं ! मैं पूछती हूँ, मनुष्य का इस तरह मशीन हो जाना क्या वांछणीय है, अपेक्षणीय है ?

—अपेक्षणीय ! वांछणीय !—आनंद ने स्थिर दृष्टि से एक बार अभया की ओर देखा और देखते हुए ही बोला—वांछणीय नहीं है—यह मैं जानता हूँ और यह भी जानता हूँ कि जब तक मनुष्य अपनी अभीप्सित वस्तु को पा नहीं लेता, तब तक

उसे जो भी अवस्था से गुजरना पड़े, गुजरने के सिवा उसके लिए दूसरा चारा ही क्या है !

आनंद ने कहकर स्टेरयिंग दबायी, कार तीव्र वेग में दौड़ पड़ी और आनंद उसी तीव्र वेग में बोल उठा—मगर, मैं पा नहीं रहा हूँ कि आपके पहले मुझे किसीने भी इस दिशा में याद दिलाई हो ! ओह, यह तो मेरे प्रति आपकी ममता नहीं तो और······

—ममता नहीं, पत्थर !—रोष में अभया बोली और अपने मुँह को दूसरी ओर फेर लिया।

—पत्थर !—आनंद इसबार हँस पड़ा—आप चाहे जो कह लें—पत्थर ही कह लीजिए, मैं रोकूंगा नहीं। मगर जो एक के लिए पत्थर हो सकता है, कौन जानता है कि वह दूसरे के लिए देवता की प्रतिमा न हो ! क्यों, कुछ गलत मैं कह रहा ?

आनंद ने अपनी बातें शेपकर उत्तर की प्रत्याशा में अभया की ओर ताका; पर अभया अपनी जगह अचल जैसी पड़ी किसी दूसरी ओर निहार रही है। आनंद जो-कुछ पाना चाहता था, वह पा नहीं सका। तब तक उसकी कार प्रयोगशाला के पास आ चुकी थी, कार रुक गई, आनंद उतर पड़ा और अभया की ओर वाले दरवाजे को खोलते हुए कहा—स्वागत है अभया देवी, पधारिए······

—ओह, स्वागत !—अभया जरा खिंची-सी बोली—मैंने अब जाना, कि आप स्वागत करना भी जानते हैं।

—शायद न भी जानता था, आप कुछ गलत नहीं कह रही हैं अभया देवी—हँसते हुए आनंद ने कहा—यह तो आपने ही सिखाया है न ! क्या आप इतनी जल्दी भूल गईं ? देखता

हूँ—अपनी प्रयोगशाला में मैं ही नहीं भूलता, जो भी बाहर से आता है, वह भी भूले बिना नहीं रहता ! क्यों ?

मगर क्यों का उत्तर पाने के लिए आनंद रुका न रहा। अभया आगे-आगे चल पड़ी है, वह प्रयोगशाला के हाते में पहुँचकर पाती है कि तरह-तरह के पौदे लग रहे हैं। सबके निकट एक-एक लकड़ी से लगी तख्ती पर उनके जन्म-दिवस और बढ़ने के क्रम की तिथियाँ लिखी हुई हैं। वह सरसरी निगाह से इन पौदों की ओर देखती है—देखकर वह पाती है कि जिस तरह हॉस्पिटल में रोगियों के निकट उनके रोगों के बढ़ने-घटने की सूचना दिलाने वाले जो चार्ट लगे रहते हैं, आखिर ये तख्तियाँ वे ही तो हैं ! वह आप-ही-आप हँस पड़ती है। तब तक आनंद आगे बढ़कर प्रयोगशाला के दरवाजे को खोलता है, अभया उसके भीतर प्रवेश करती है—जहाँ वह पाती है कि, विभिन्न प्रकार के गमलों में विभिन्न प्रकार के छोटे-बड़े पौदों से वह कमरा भरा है। सोने के लिए एक काठ की चौकी पड़ी है जिस पर बिछावन मूर्च्छित जैसी अवस्था में बिछी है; तकिए की भी वही दशा है; कुछ कुर्सियाँ हैं, वे भी कुछ करीने से नहीं, टेबिल है, पर उस पर कुछ पौदे, कुछ गमले और कुछ विभिन्न रँगों के खाद ढेरों पड़े हैं—सभी अस्त-व्यस्त जैसे —यही आनंद की प्रयोगशाला है, यही आनंद का आवास है ! और उसी आवास में आकर अभया पाती है कि रेकाबियों में खाना ज्यों-का-त्यों पड़ा है, उनमें कुछ शाक-पत्ते हैं—कुछ उबले हुए—कुछ थोड़ी-सी रोटियाँ हैं जो ठिठुर कर सूखी-सी पड़ी हैं ·····

अभया नारी है, भोज्य वस्तु की ओर सहजात उसका ध्यान है और जब वह पाती है कि यह तो आनंद का रात्रि-कालीन भोजन है जिसे वह स्पर्श भी नहीं कर सका है, तब वह रोष-सने वचनों में बोल उठती है—देखली आपकी प्रयोगशाला, आनंद बाबू ! इसमें आपका रहना संभव हो सकता है ; पर अभया यहाँ पल भर भी नहीं टिक सकती !

आनंद अपने में जरा छोटा उतर आता है। वह समझ नहीं पाता कि अभया क्यों आते-आते ही वितृष्णा में भर उठीं। वह संकोच में आकर बोल उठा—यह मेरा दुर्भाग्य है, अभया देवी ! मैं जानता हूँ, यहाँ आपके मनके लायक न तो बैठने की जगह है, न कुशन है, न कोई आराम की वस्तु···आखिर हम जो मजदूर हैं···

—मजदूर इस तरह की दुनकी नहीं हाँकते ? लंबी-लंबी बातें नहीं बनाते ? अपने सामने मॉडल का स्वप्न नहीं देखा करते ?

—मजदूर इतने से भी मन न बहलाए तो आप ही कहिए, वह आखिर जी कैसे सकता है, अभया देवी ?

—जी सकता क्यों नहीं ? आखिर ये पौदे जो जी रहे हैं, जिन्हें आपने चारो ओर से पसार रखा है, आखिर ये भी तो जी ही रहे हैं !

—मगर पौदे मनुष्य नहीं !

—ओह जाना, पौदे मनुष्य नहीं !—अभया ने इसबार आनंद की ओर ताका और उसी तरह ताकते हुए बोली—और मनुष्य पौदे बनें, क्या आप यही चाहते हैं न ? मनुष्य और पौदे में भेद ही क्या रह गया, जब मैं पाती हूँ कि एक सूखे-सड़े खादों पर जीता

है और दूसरा सुन्दर और सरस चीजों को सुखाकर खा नहीं पाता—केवल उन्हें आघ्राण कर ही जीता है! ये रेकाबियाँ स्वयं बोल रही हैं! काश, आपके कान होते और उनमें सुन पाने की ताकत होती।

आनंद को अब याद आया कि अभया का इशारा किस ओर है। वह हंस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला—आपका कहना कुछ गलत नहीं है, अभया देवी! सच पूछिए तो मैं रातभर अपने अनुसंधान में इसतरह गर्क रहा कि कब नौकर यहाँ खाना रख गया, उस ओर खयाल गया ही नहीं। खयाल जाता भी कैसे, भूख भी महसूस नहीं की······ओह, अनुसंधान······

—ओह, अनुसंधान में जान पड़ता है कि आज आपने जल-पान तक नहीं किया, क्यों ठीक है न!—अभया जरा तीव्र स्वर में ही बोली।

—नहीं, आप गलत समझ रही हैं!—आनंद हँसते हुए बोला—मैं पाता हूँ कि आप भी कुछ कम नहीं भूलतीं! क्या आपने फल और चाय नहीं पिलायीं?

—और उनसे आपका पेट भर गया?

—क्या कहती हैं अभया देवी? भर गया तो आपकी मीठी बातों से. वह तो घाले में मिला—कहते हुए आनंद हँस पड़ा. मगर अभया न हँस पा सकी।

आनंद अपनी प्रयोगशाला में बैठ कर अभया को अपने प्रयोग की कुछ बातें सुनाता है, वह सुनाने में जैसे कितना निमग्न है। वह चाहता है कि, जिन्हें वह अब तक अपने प्रयोग में लाकर सफल-प्रयत्न हो सका है, उनकी ओर वह अभया का ध्यान खींचे

और वह इस ओर प्रयत्न करता भी है; पर जितने भी प्रयत्न उसके होते हैं, वे अभया की दृष्टि में जैसे कोई मूल्य ही नहीं रखते ; न रखते हों—सो कोई बात नहीं, अभया भीतर-भीतर उसके प्रयासों की, प्रयोगों की जितनी सराहना करती है उतना ही बाहर-बाहर वह उखड़ी-उखड़ी जैसी बातें करती है और ऐसी करती है जो आनंद के लिए निरानंदात्मक, वितृष्णा-मूलक और कष्टकर हों; पर आनंद स्थितप्रज्ञ-जैसा अभया के सभी वारों को, व्यंग और उपेक्षाओं को अपने हृत्तल की खुली हँसी में उड़ा देता है, वह अपने विपक्षियों के लिए इतना ही भर जानता है। इससे अभया अपने आप में क्षुण्ण हो उठती है, उसका अहं उसे उत्तेजित कर छोड़ता है और कुछ चिढ़ कर, कुछ बिगड़ कर बोल उठती है—फूँक से पहाड़ को जो उड़ाना चाहता है, वह मूर्ख नहीं तो और क्या है ?

मगर आनंद का ध्यान इस ओर नहीं है और न वह यही समझ पाता है कि अभया क्या बोल गई ! फिर भी उत्तर के रूप में वह हंसते हुए कह उठता है—मूर्ख ही तो पहाड़ को फूँक से उड़ाना जानता है अभया देवी ! आपका कहा सोलहो आने सच है— इसे मैं बहुत अदब के साथ मान लेता हूँ; मगर इस मूर्ख की बातों को कुछ समझने का आप जरा प्रयत्न भी तो करें। मैं कहते जाता हूँ और आप सुनतीं नहीं। जान पड़ता है, यह आप के लिए रुचिकर नहीं, क्यों ?

—ओह, समझ में आया—मूर्खों को भी ज्ञान जगता है।

अभया इस बार खिल-खिलाकर हंस पड़ी। अभया इस तरह हंसेगी—आनंद के लिए यह अप्रत्याशित था। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो अभया की ओर देखने लगा। वह समझ पा नहीं रहा

था कि इस तरह अभया के हंसने का कारण क्या हो सकता है। आनंद ने अपनी स्थिर दृष्टि अभया की ओर डाल दी—वह दृष्टि जो वाह्य् नहीं, अतल स्पर्शी है; जो सूक्ष्म को स्पर्श कर वहीं अपने आप को विलीन कर देती है—संज्ञा-हीन और अचेतन हो उठती है। अभया नीचे की ओर सिर किए पड़ी है; उसे शायद इस ओर ध्यान नहीं कि उसकी ओर आनंद की दृष्टि लगी हुई है—और आनंद अपने आप में खोया हुआ है; मगर आनंद अचानक चमक उठता है, हंस पड़ता है, हंसते-हंसते उछल पड़ता है और खूब उछल पड़ता है, लगता है, जैसे कोई अनहोनी बात हो गई हो, तभी वह अत्यंत प्रसन्नता में बोल उठता है—मैं सफल हुआ, अभया देवी, ओह, मैं सफल हुआ। सफलता मिली जिसके लिए आज कई दिनों से रात को रात और दिन को दिन नहीं समझा......आज वह मेरी साधना सच कहता हूँ अभया, वह साधना सफल हुई। मेरा फारमूला पूरा बैठा ; मेरा प्रयोग सफल हुआ...ओह, कह नहीं पा सकता अभया-अभया—तुम बोलतीं नहीं......काश, तुम समझ पातीं—समझ पातीं......कि मैं क्या हूँ और कितना बड़ा मैंने काम किया।

आनंद अपने आवेग को रोक न सका, वह सचमुच आनंद में आत्म-विभोर हो उठा और उसी आनंद की मदिर अवस्था में उठ कर उसने अभया को कस कर अपने बाहु-पाश में आबद्ध-कर लिया।

यह कुछ इतने अप्रत्याशित भाव में हुए कि अभया कुछ समझ नहीं सकी—कुछ सोच नहीं सकी; पर ज्योंही उसने पाया कि आनंद के बाहु-पाश में वह जाने कब से आबद्ध पड़ी है ; तब वह

पूछती हूँ कि अनाप-शनाप बकने में इस तरह आपको मजा क्यों आता है ? अगर अनाप-शनाप आप न बकें तो इससे क्या कुछ आप की हानि हो ? मै जानती हूं, आप के मस्तिष्क तो है, पर हृदय नाम की वस्तु आप से छू तक नहीं गई है। यदि आप के हृदय होता तो आप स्वयं जान पाते कि वस्तुस्थिति क्या है ?

अभया कुछ क्षण चुप रही, उसकी दृष्टि दूसरी ओर फिरी, जहाँ उसने पाया कि वे रेकाबियाँ अब भी अपनी जगह कराह रही हैं। जहां का वातावरण आनंद में स्वयं मुखरित है, वहां वह कराह बड़ी प्राणघातिनी-सी लगी। अभया चुप न रह सकी और हंसती हुई बोल उठी—क्या आप दंड स्वीकार करने को प्रस्तुत हैं इंजिनियर साहब ?

—ओह, दंड !—आनंद प्रसन्न होकर बोल उठा—वह तो मेरा सौभाग्य होगा, अभया देवी। जो भी दंड देना चाहेंगी, उसे मैं नत मस्तक स्वीकार करने में गौरव का ही अनुभव करूँगा। अब मुझे अवकाश-ही-अवकाश है। कहिए, क्या आज्ञा ?

और अभया अनुज्ञा के स्वर में बोल उठती है—आज मैं अपने हाथों आप को भोजन कराऊँगी।

—मगर……

—अगर-मगर मैं कुछ नहीं सुना चाहती, मैं अपना उत्तर 'हाँ' में सुना चाहती हूँ।

—इतना बड़ा दंड न दें आप—आनंद अनुताप के स्वर में बोल उठा—जिस काम में आप अनभ्यस्त हैं, उस काम के लिए आपको प्रस्तुत करना आप को कष्ट पहुँचाना नहीं तो और क्या है ? और मैं नहीं चाहता कि आप को कष्ट दूँ !

—कष्ट !—अभया की भवें सीधी होने पर भी तन गईं—आप मुझे गुड़िया न समझें, आनंद बाबू, अभया गुड़िया नहीं है। वह जानती है कि वह स्वयं क्या है ? आप कष्ट की बात कह कर मुझे न जलाइए, इससे आप का कुछ लाभ न होगा। मैं स्वयं भूखी हूँ, आप न खाइए, मैं आप को नहीं मनाती, पर एक अतिथि का आप कितना आदर करना जानते हैं, यह मैं जानती हूँ ! रहिए आप सुख से, मगर अभया अब ठहर नहीं सकती। अपनी सफलता पर अभी आपको महीने भर भूख नहीं लगेगी—यह मैं जानती हूँ; पर मैं एक क्षण की भूख बर्दाश्त नहीं कर सकती—यह आपको जानना चाहिए······

आनंद को अब ज्ञान हुआ कि उसने वास्तव में भूल की है, उसे अपनी आदरणीया अतिथि की अभ्यर्थना करनी ही चाहिए थी ! वह अपने आप में जरा खिन्न हुआ, फिर भी अपने को सँभालते हुए बोल उठा—जो काम एक पाचक कर सकता है, उसके लिए कष्ट उठाना क्या ठीक होगा, अभया देवी ? क्या मेरे पाचक का बना भोजन आप नहीं कर सकतीं ?

—नहीं कर सकती।

—तो··· आनंद जरा सोचने लगा।

—तो यही अच्छा होगा कि मुझे जाने की इजाजत दीजिए—अभया इस बार उठने-उठने को हुई।

आनंद अस्तव्यस्त हो उठा—उसे समझ न पड़ा कि अब उसे क्या करना चाहिए। भूख उसे भी कुछ कम नहीं लगी है; पर खुल कर वह कैसे कहे कि········

आनंद क्षण भर चुप रहा, फिर आप-ही-आप प्रसन्न हो बोल

उठा—इजाजत मांग कर आप मुझे दोबारा लज्जित न करें, अभया देवी ! जब आप स्वयं कष्ट स्वीकार करना चाहती हैं, तो मुझे आप का यह दंड सहज़ स्वीकार है; पर मैं उसमें ज़रा संशोधन पेश करना चाहता हूँ ! आशा है यह संशोधन······

—संशोधन !—अभया अपने ओठों को दाँतों तले दबाती हुई बोली— सुनूँ, वह संशोधन क्या है ?

—संशोधन कुछ ज्यादा नहीं, सामान्य है, वह यह कि, क्यों न हम दोनों मिलकर इस अनुष्ठान में सम्मिलित हों ? यह कुछ बुरा न होगा ! इस अनुष्ठान की यज्ञशाला आज मेरी यही प्रयोगशाला ही होगी, जहाँ मुझे सफलता मिली है···

अभया इस बार खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसकी प्रसन्न-निर्मल हँसी में आनंद खिल उठा, उसी समय वह बाहर की ओर दौड़ पड़ा·········

अभया कुर्सी से उठी, उसने एक बार उस प्रयोगशाला की अस्तव्यस्त चीजों की ओर दृष्टि डाली, उसे वे रुचिकर न जँचीं। वह मौन साधे बैठी न रह सकी, वह लग गई अस्तव्यस्तता में चारुता-संपादन करने ! उसने प्रत्येक वस्तु को उपयुक्त स्थान पर ला बिठाया, कुर्सियों को तरतीब में ला रखा, कपड़े-लत्ते सहेजे, बिछावन झाड़ कर बिछाई, पर्दों की धूल झाड़ी, रेकाबियों को कमरे से बाहर रख छोड़ने के समय जब वह पर्दा हटा कर दरवाजे से निकलने को ही थी कि उसी समय आनंद प्रसन्न वदन आगे बढ़ता हुआ आया और अभया के हाथ में रेकाबियों को देख कर हँसते हुए बोल उठा—ओह, आप तो अच्छी दीख रही हैं अभया देवी !

—मैं बुरी कब थी ?

आनंद खिलखिला कर हँस पड़ा, अभया समझ नहीं सकी कि आनंद के हँसने का कारण क्या है। वह रेकाबियों को रख कर जैसे ही भीतर आई, आनंद भी साथ ही आया और उसने पाया कि उसकी प्रयोगशाला अपनी सफलता पर स्वयं जैसे विहँस उठी है; मगर उसी समय अभया ने दीवाल के सहारे लगे आईने में पाया कि धूल-धक्कड़ों से उसकी आकृति कितनी कदर्य हो उठी है और तभी उसने समझ पाया कि अभी-अभी आनंद जो खिलखिला उठा था, वह क्या था ? वह अपने आप में सकुचाई नहीं, बोल उठी—सफलता की खुशी में, देखती हूँ, दृष्टि का स्वाद भी मिट गया है आपका—जभी मुझे अच्छी कह रहे थे ! मगर मैं बिना नहाए-धोए रसोई नहीं बना सकती, मैं बगल के बाथ-रूम को देख चुकी हूँ; पर कठिनाई तो यह है कि...

—क्यों, कपड़े की बात कह रही हैं न ?

—देखती हूँ, अब आप समझने लग गए हैं।

—मगर समझने से भी क्या होगा, अभया देवी ! साड़ी तो इतनी जल्दी आ भी नहीं सकती, देर भी काफी हो चुकी है, इधर कई दिनों के भूखे को भूख ने काफी परेशान कर रखा है ! मेरे ट्रंक खुले पड़े हैं, देखिए उनमें, कोई आपके काम के कपड़े निकल आए ! नयी धोतियों के जोड़े हैं, शायद उनसे काम चल जाय। जो मौजूद हैं, उन्हीं से क्यों न काम चलाया जाय ?

—जो भी मिलेगा, मैं उसीसे काम चला लूंगी; इसके लिए आप परेशान न हों।

अभया ने ट्रंक खोला, देखा, धुले हुए कपड़ों के बीच गर्द

की नयी धोती जोड़ा है, उनमें से एक निकाल ली और धुला हुआ तौलिया लेकर बगल के बाथ-रूम में चली गई।

इतने में ही प्रयोगशाला में कुछ लोग आ गए और सब-के-सब काम में पिल पड़े। टेबिल पर फूलों-फूलों का ढेर लगा दिया गया, एक ओर शाक-सब्जियाँ सजा कर रख दी गईं, दूसरी ओर आँटा, चावल, दूध और घी के भांड करीने से रख दिए गए और बीच में स्टोव जलाने के लिए आनंद स्वयं उद्यत हो पड़ा।···

इसी समय बाथ-रूम से अभया निकली, उसके सद्यः स्नात वदन पर गर्द की धोती और खुले हुए केश स्वयं एक तपस्विनी की याद दिला रहे हैं। आनंद ने अभया का इतना उज्ज्वल रूप कभी न देखा था, उसने जैसे ही अभया की ओर देखा, वैसे ही अभया बोल उठी—अरे-अरे, देख रहे हो इस तरह क्यों मेरी ओर? उधर देखो जरा, स्टोव की आँच में उँगलियाँ जो पड़ी हैं······

उंगलियाँ!—आनंद ने अपना हाथ खींच लिया, तब तक अभया उसके पास पहुँच कर बोली—उंगलियाँ पकीं तो नहीं?

—उगलियाँ—आनद हँस पड़ा, बोला—जानती हो, मैं इंजि-नियर हूँ, आग की भट्ठी के साथ खिलवाड़ करने वाला!

—अच्छे खिलवाड़ करने वाले!— अभया किंचित रोष में बोली—उंगलियाँ जलाकर आतिथ्य करने जा रहे हैं! उठिए, बहुत हो चुका। करना ही है तो काम सारे पड़े हैं, कोई-सा काम कीजिए, मैं स्टोव के पास बैठती हूँ। मगर कह तो दीजिए एक बार, क्या पकाऊँ? मैं आप की रुचि तो जानती नहीं।

—जब अन्नपूर्णा स्वयं आ बैठी हैं तब उनके हाथों अरुचि

की चीजें बन ही नहीं सकतीं, इतना तो मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ।—आनंद ने हंस कर कहा।

—अब तो मैं मानवी से अन्नपूर्णा हो बैठी। मैं नहीं जानती कि इस प्रयोगशाला में केवल खाद और पौदों को लेकर ही प्रयोग नहीं चलते, यहाँ तो मानव पर भी प्रयोग चल रहा है। जो एक वक्त किसी की मॉडल थी वही दूसरे वक्त देवता बन बैठी।

—देवता नहीं, देवी कहिए—यह मेरा संशोधन है।

—मगर देवता और देवी का पचड़ा पीछे भी सुलझाया जा सकता है, पहले यह तो सुलझा दीजिए कि आप के भोजन में क्या-क्या चाहिए। ऐसे मैं नहीं बनाती ......

—जो भी इच्छा हो बन डालिए, मुझे भूख भी ज्यादा लग रही, मेरा नहाना भी अब तक नहीं हो सका है, मैं अब साथ दे भी नहीं सकूँगा, अगर इजाजत हो तो मैं नहा आऊँ।

और इजाजत की आज्ञा की प्रतीक्षा किए बिना ही आनंद बाथ-रूम की ओर चल पड़ा।

अन्नपूर्णा बनी बैठी हुई अभया ने एक बार इकत्रित की हुई चीजों की ओर दृष्टि डाली और वस्तुतः वह अभया से अन्नपूर्णा बन बैठी।

और जब आनंद घंटे-डेढ़ घंटे के भीतर बाथ-रूम से क्लीन सेव्ड और नहा-धो कर धुले हुए पायजामा और कमीज पहन कर बाहर निकला, तब तक स्टोव निभ चुका था और रसोई की चीजें रेकाबियों में चुनी जा रही थीं। आज सहभोज में उन दो आर्टिस्टों को जो आनंद आया, वह एक स्मरणीय घटना थी।

अष्टम परिच्छेद

अभया और आनंद विभिन्न दिशाओं से मुड़कर ऐसे केंद्र-स्थल पर आ टिके हैं जहाँ संयोग के सभी उपकरण अनायास सुलभ हैं, कोई व्यतिरेक नहीं, कोई व्यवधान नहीं, दोनों सम-तल गति में बहे जा रहे हैं, जहाँ कोई वक्रता नहीं दीखती, जहाँ कोई घुमाव नहीं दीख पड़ता। चारो ओर से प्रफुल्लता सिमट कर जैसे एक वृत्त के अंदर समा गई है। आनंद अपनी मूकता खो चुका है, अभया अपनी प्रखरता खो चुकी है। अब आनंद के अंदर वह कर्मठता नहीं है, अवसाद ने उसे आ घेरा है, फिर भी वह अवसाद से ग्रस्त नहीं है। फार्म का काम अवाधगति में चल रहा है, उसके सफल प्रयोग नित्य नूतन रूप में काम में लाए जा रहे हैं; पर वह पहले जैसा खोया-खोया नहीं रहता, उसका निवास अस्त-व्यस्त जैसा नहीं दीखता। उसमें चारुता आ गई है, प्रांजलता से वह समुज्ज्वल हो उठा है। अभया उस ओर देखती है, वह विहँस उठती है, आनंद अभया की ओर देखता है, खिल पड़ता है…आनंद प्रसन्न है, अभया प्रसन्न है, इन दोनों के नियंता प्रसन्न हैं किंतु एक ओर अचल अदृश्य है, जिसका विधान भी इन दोनों से अदृश्य है।

अभया का अधिकांश समय आज कल बाहर-बाहर ही बीतता है! आनंद उसे कार में बिठाकर जाने कहाँ-कहाँ घूमता-

डा० शांतिस्वरूप अभया को जानते हैं और आनंद को भी। राजा बाबू भी इन दिनों को जानने लगे हैं! वे दो वृद्ध जब कभी एक-साथ आ बैठते हैं, तब इन दोनों की चर्चा ही उनदोनों के बीच अधिक क्षण तक चलती है। इस चर्चा में उन दोनों की मलिनता नहीं, हृदय की उदारता का ही अधिक भाग है और वे सहृदय बंधु उस अदृश्य नियंता के प्रति अपनी आंतरिक कृतज्ञता के अर्घ्य ही निवेदित करते हैं! उन दोनों का मिलन चिर स्थायित्व प्राप्त करे—उन वृद्धों की यही कामना है—यही सदिच्छा है!

मगर धूमकेतु की तरह वह कौन आ पहुँचा है अभया के यहाँ, जब अभया अपनी वेश-भूषाओं में आवृत्त प्रस्तुत होकर अपने बँगले से निकलना ही चाह रही है? वह आंगतुक की ओर संपूर्ण दृष्टि डालकर पूछती है—किसे आप चाहते हैं?—क्या बाबूजी ······

—नहीं, धन्यवाद!—आगंतुक विनम्र नमस्कार-ज्ञापन कर कहता है—मैं आप के लिए ही आया था, आपसे ही मिलना चाहता था। मैं कल भी आया था जब आप बाहर चली गई थीं। मैं रुककर कल ही मिल लेना चाहता था, पर रुक न सका, समझा, फिर किसी समय आ जाऊँगा। ······

—कहिए, क्या काम है?—अभया जरा अप्रसन्न होकर ही बोली।

—हाँ, सो तो बतलाऊँगा ही—वह युवक स्थिर चित्त से बोला—मगर खड़े-खड़े तो बातें न हो सकेंगी। कुछ क्षण आप बैठने का कष्ट करें तो सुनाऊँ।

और अनिच्छा पूर्वक अभया कमरे की ओर मुड़ी और जरा लज्जित कंठ से बोली—आइए, विराजिए।

आगंतुक भीतर आकर एक सोफे पर बैठ गया, अभया भी दूसरे पर आ बैठी। उसने इसबार उस युवक को फिर से देखा, और पाया कि वह आगंतुक देखने में बुरा नहीं, सफेद खादी की धोती पहने है, बदन पर एक सफेद दूध-सा धुला कुर्त्ता है, जिसके गले का बटन टूटा हुआ - इसलिए गले से नीचे का भाग स्पष्ट मालूम हो रहा है, केश बढ़े हुए और अस्तव्यस्त, भावें घनी जिनसे उसके मन की दृढ़ता प्रकट हो रही है, आँखें कुछ खिंची हुई किंतु सतेज, जिनसे किसी चीज को, उसके स्तर के निम्न भाग तक वह आसानी से देख पा सकता है। अभया ने उसकी ओर देखा और देखा कि वह युवक अपने हाथ के पोर्ट फोलियो से कुछ निकाल रहा है, तभी वह पूछ बैठी - क्या आप आप इंस्योरेंश कंपनी के एजेंट हैं ?

—एजेंट !—युवक मुस्कराया और मुस्कराहट लिए हुए ही बोला—नहीं ; मैं साधरण एक कार्य-कर्त्ता हूँ कांग्रेस का—एक ग्राम-सेवक !

—ग्राम-सेवक ?

—हाँ, ग्राम-सेवक ही !—युवक ने कहा और अपने पोर्टफोलियो से एक छपाहुआ पर्चा निकाल कर अभया की ओर बढ़ाते हुए बोला—इसमें ग्रामोत्थान-संघ की स्कीमें हैं, जिन्हें मैं कार्य-रूप में लाना चाहता हूँ ! आप जानती हैं—गाँवों का उत्थान जब तक नहीं हो लेता, हम स्वाधीनता प्राप्त नहीं कर सकते !

—ओह, समझा—आप स्वाधीनता प्राप्त करना चाहते हैं ?

—मैं ही नहीं—यह कहना शायद ठीक न होगा—हमतो सारे देश को आजाद देखना चाहते हैं ! क्या आप आजादी पसंद नहीं करतीं ?

—पसंद करने से ही तो आजादी मुझे मिल नहीं जाती !—अभया ने खिंचे स्वर में कहा ।

—मगर इससे पता तो नहीं लग पाया कि आप आजादी पसंद करती हैं !

—पसंद करना अलग बात है और उसका पाना अलग ! क्या जो बातें हमें पसंद हैं वे हमें मिल भी जाती हैं ?

—मिल जा सकती हैं—युवक इस बार सचेत हो बैठा और दृढ़ता के स्वर में बोला—आपने जो बातें छेड़ी हैं, वे महज तर्क के लिए ही तो ! आप स्वयं विदुषी हैं, हर बात को जानती हैं । आपके सामने तर्क करना मुझे स्वयं पसंद नहीं; मगर इतना तो कहा ही जा सकता है कि जब तक किसी चीज के लिए प्रबल आकांक्षा न हो, वह चीज नहीं मिल सकती । फिर जहां उत्कंठा है, पाने की तीव्र आकांक्षा है, वहां वह पायगा कि उसके सामने का पथ परिष्कृत है—और न भी वह परिष्कृत हो, वह उस ओर दौड़ेगा ही एक बार और प्राणपण से उसका प्रयास अपनी गति में चल निकलेगा । यदि उसे सफलता मिल गई तो फिर क्या कहना ! और यदि वह नहीं भी मिले तो फिर भी वह उस ओर से परांग-मुख नहीं होता, उसका उद्यम दूने उत्साह में चल निकलता है और जब तक वह अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंच पाता, तब तक चलता ही रहता है ! आजादी के बारे में यही कही जा सकती है, तभी मैंने पूछा—क्या आप आजादी पसंद नहीं करतीं ?

अभया ने पाया कि वह युवक साधारण नहीं; अपने विषय-वस्तु को समझाना जानता है। वह यह भी जानता है कि अपने पक्ष में किस तरह किसी को लाया जा सकता है। मगर अभया इन सब बातों के लिए प्रस्तुत नहीं है, इसलिए वह उखड़ी-उखड़ी-सी कहती है—मैं आजादी चाहती हूँ या नहीं चाहती—इससे आप का मतलब तो नहीं सधता! आप मुझसे चाहते क्या हैं—यही सुना दीजिए तो आप की बड़ी कृपा हो।

—कृपा!—युवक हँसकर बोला—ऐसा न कहिए अभया देवी! कृपा तो आपकी चाहिए, मैं तो एक साधारण सेवक मात्र हूँ! हमारी स्कीमें आपके हाथ में हैं, शायद आपने अभी उस पर्चे को पढ़ा नहीं, पढ़ लीजिएगा। मैं जानता हूँ—आप शायद अभी बाहर जाना चाहती थीं, मैंने आप के जाने में व्याघात ही उत्पन्न किया; मगर मैं करूँ भी तो क्या? आप जैसी विदुषी इन दिहातों में ढूँढ़े भी मैं नहीं पा सकता। दिहातों में दो तरह के दल हैं—एक मजदूर और दूसरा संपन्न, मध्यवित्त को मैं दूसरे दल के भीतर रख लेता हूँ! मजदूर की बहू-बेटियाँ बाहर काम पर निकलती हैं और सारा दिन कामों में लगी रह कर अपनी मजदूरी हासिल करती हैं; मगर संपन्न घरों की स्त्रियाँ बाहर नहीं निकलतीं, उनके सामने कोई काम नहीं, सिर्फ खाना, गप्पें करना, शृंगार और व्यसनों में उलझी रहना, न उनकी प्रवृत्ति शिक्षा की ओर है, न कला की ओर, न अपने और अपनी संतान के स्वास्थ्य की ओर। एक अंग यदि सबल है और दूसरा अस्वस्थ तो वह जीवन का चिह्न नहीं—मृत्यु का प्रतीक है। और —— पर्दे के भीतर रह कर किस तरह घुल रही हैं—इन

ओर शायद आप का ध्यान न गया हो—नहीं, गया भी होगा; आप स्वयं डाक्टर हैं, अवश्य आप को वह अवसर मिला होगा जब कि आपने देखा होगा कि पर्दे की बहनों की कितनी दयनीय दशा है। क्या इस ओर अपको ले जाना मेरा अन्याय होगा? मैं जाग्रत महिला-संघ की सभानेत्री बनाने का निमंत्रण लेकर आप के पास आया हूँ। कुछ महिलाओं ने सभा में आने की सम्मति दे दी है, यद्यपि उनकी संख्या अभी अल्प है! मैं इस कार्य में आपकी सहायता चाहता हूँ। सारा प्रबंध मैं स्वयं कर लूंगा, आपको अधिक कष्ट नहीं करना होगा, ज्यादा समय मैं आपका लूंगा भी नहीं। आप से निवेदन है कि मेरा आमंत्रण स्वीकार किया जाय। आप के नेत्रित्व में हमारी सभा को जीवन मिल जायगा, संघ कृतार्थ और सबल होगा······

युवक बोलकर चुप हुआ। अभया ने उसकी सारी बातें सुनीं, उसे लग रहा था जैसे उसके अंतिम शब्द अब भी उसके कानों में गूंज रहे हैं—सभा को जीवन मिल जायगा, संघ कृतार्थ और सबल होगा···

अभया सिर झुकाए पड़ी थी, उसके सामने द्वंद्व था, वह समझ नहीं पा रही थी कि अपने सामने बैठे युवकको. जो निमंत्रण लेकर आया है, वह क्या कहे! अभया अभी तक सभा-समितियों में गई नहीं है और न इस ओर उसकी प्रवृत्ति है भी। उद्दाम कर्म-कोलाहल में अब तक गुजरती रही अभया से कुछ कहते न बना। युवक ने समझा—अभया अपने निश्चय पर पहुँच नहीं पारही है. इसलिए वह फिर से बोल उठा—जिस मातृभूमि ने आपकी सृष्टि की है, उसके प्रति आपका कर्त्तव्य कुछ कम नहीं,

अभया देवी ! आप जानतीं हैं, मानव जीवन केवल कमाने-खाने और सुख-भोग के लिए ही नहीं है वरन् उसके सिर जो ऋण है, उससे मुक्त होना ही उसका प्रधान कर्त्तव्य-कर्म है। अपनी जननी जन्म-भूमि के प्रति अपने उस कर्त्तव्य की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ और उस जननी की सेवा मातृ-स्वरूपा नारी-जाति की कल्याण-कामना से ही सार्थक-सफल हो सकती है—इस पर आपको विचार करने के लिए निवेदन करता हूँ।

युवक अपने-आप बोल कर चुप हुआ और उत्सुक दृष्टि से वह अभया की ओर देखने लगा। उसे लगा कि अभया के मन की उत्सुकता जैसे विलीन हो गई है, उसकी आकृति पर दीप्ति नहीं—शुष्कता-सी आ गई है। जैसे वह द्वंद्वों में फँसी-फँसी अपने आप के लिए उचित दिशा नहीं पा रही हो। युवक कुछ क्षण तक स्तब्ध रहा, उसने सामने की ओर की घड़ी देखी, वह अपने आप में कुछ चंचल होकर ही बोला—तो मैं समझूँ कि मेरा निमंत्रण स्वीकृत हुआ ?

—सोचलेने दीजिए, मैं आपका जवाब फिर कभी दूँगी—अभया ने दृढ़ता-भरे स्वर में युवक की ओर देखते हुए कहा।

युवक क्षणभर रुका, फिर आप-ही-आप बोल उठा—यह मेरा सौभाग्य है ; पर मैं जान सकता हूँ कि कब मेरा आना उचित होगा ?

उत्तर अभया सोच ही रही है कि इतने में कार दरवाजे पर आ लगी और आनंद कमरे की ओर आने को सन्नध है। अभया अतीव चंचल हो उठी और उसी चंचलता को लेकर खड़ी होते हुए बोल उठी—मैं ठीक-ठीक उत्तर दे नहीं पा रही हूँ।

मैं कब घर पर रहूँगी, यह निश्चय पूर्वक अभी कह नहीं सकती।

—अच्छा, तो मैं कल नहीं, परसों स्वयं आऊँगा इसी वक्त, शायद इससे कुछ पहले भी आ सकता हूँ। मुझे विश्वास है, आप मुझे निरुत्साह न करेंगी।

और वह मुस्कराते हुए नमस्कार-ज्ञापन कर कमरे से वेदा हुआ।

आनंद ने उसे दरवाजे से बाहर निकलते हुए देखा और उसे घूरते हुए देखकर कमरे में प्रविष्ट होते-होते ही जरा गंभीर स्वर में बोल उठा—देखता हूँ, अभया देवी, आपकी प्रवृति अब देश-सेवा की ओर मुड़ी है! क्या मेरा अंदाज गलत तो नहीं, अभया देवी?

अभया ने उसके प्रश्नों का उत्तर गंभीरता-भरे स्वर में दिया, वह बोली—क्या देश-सेवा की ओर प्रवृत्ति जाना कुछ अन्याय है मि०आनंद?

—क्या अन्याय और क्या न्याय है—इस पर आपने कभी विचार भी किया है?

—क्या मैं निरी बच्ची हूँ कि इतना भी नहीं समझती कि न्याय अन्याय क्या है! आनन्द अभया से ऐसा-कुछ सुनने को प्रस्तुत न था. उसने पाया कि अवश्य अभया उसकी ओर से खिंची और युवक की ओर दौड़ पड़ी है। वह कुछ क्षण तक उस गंभीर परिस्थिति पर सोचता रहा; फिर बोल उठा—बच्ची होतीं तो दुःख न होता; पर आप ऐसी नहीं हैं—इतना मैं जानता हूँ, और यह भी जानता हूँ कि देश-सेवा सुनने में जितनी प्रिय है, काम में उतना ही कठोर। देश-सेवा सस्ती भावुकता नहीं, तलवार की धार पर चलना है, आग के शोलों के साथ उलझना

है........मैं आप को मना नहीं करता—मना करने का अधिकार मुझे है भी नहीं; पर मैत्री का जहां तक सम्बन्ध है, आप को सचेत करना मेरा पुनीत कर्त्तव्य है। यों चाहें आप जो समझें; पर मैं इसे अच्छा नहीं समझता।

—आपके 'पुनीत कर्त्तव्य' के लिए आपको धन्यवाद!—अभया बोल कर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोल उठी—मैं पूछती हूँ, इतनी बातों का बतंगड़ तो लगा गए, पर किस आधार पर इतनी बातें सुना गए, कह सकते हैं आप?

—आधार की बात पूछ रही हैं?—आनंद अपनी सीट पर बैठते हुए बोला—आधार स्पष्ट है! मनुष्य भावुक है, उस पर नारीजाति स्वभावतः भावुक होती है! देश-सेवा को मैं भावुकता ही समझता हूँ। भावुकता पर ही लोग इस ओर मुड़ते हैं, फिर जो हृदय स्वयँ भावुक हो, उसका इस ओर झुकना कुछ असाधारण नहीं। और मैं पाता हूँ कि अभया देवी उसी भावुकता से आज तरल हो उठी हैं! क्यों, मैं अभया देवी से जान सकता हूँ कि यह तथ्य नहीं?

—तो आप भावुकता को हृदय की दुर्बलता कहते हैं—इतना क्यों कहने से चुप रह गए?—अभया ने उसकी ओर तीक्ष्ण दृष्टि डालते हुए कहा।

—खैर, मेरे मुँह की बातें छीन कर मेरे कथन को आपने पूरा किया—इसके लिए मेरा धन्यवाद स्वीकार कीजिए।

आनंद बोल कर हँस पड़ा; पर अभया हँस न सकी, वह जिस तरह गंभीर बनी बैठी थी, उसी तरह बैठी रही।

आनंद अपनी उसी हँसी को लेकर बोल उठा—देखता हूँ,

स युवक ने आपके दिमाग में उथल-पुथल पैदा कर दी है। ये
गॅंग्रेस वाले सीधे किसी को छोड़ते नहीं। जिसकी ओर मुड़ते हैं,
ससे जब तक हाँ नहीं कहला लेते तब तक उसका पिंड नहीं
छोड़ते! उनकी बेरहमी कभी-कभी सीमा का उलंघन कर जाती
है, किसी को बाँध कर अपनी बातें मनवाना मैं एक जुर्म समझता
हूँ। क्या यह जुर्म नहीं—आप क्या कहती हैं?

—यह आप नहीं, आपका पुरुष-द्वेषी हृदय बोल रहा है!

—द्वेष! यह क्या कह रही हैं आप?

—हाँ, द्वेष!—और मैं ठीक कह रही हूँ।

इस बार अभया अपने आप हँस पड़ी, उसकी हँसी से वातावरण की धूमिलता अपने-आप छितर-बितर हो गई। उसी समय चाय और जलपान की चीजें नौकर वहाँ रख गया।

और जिस चंद्र-ज्योत्स्ना को मेघों ने आच्छन्न कर रखा था, वह स्पष्टतः और संपूर्णतः छिटक उठी, तभी अभया बोल उठी—आपने आने में देर क्यों कर दी? आप वक्त पर आ गए होते तो मैं उस युवक से इतनी क्यों परेशान होती!

—कभी-कभी परेशानियों का आना अच्छा है अभया देवी—आनंद हँसते हुए बोल उठा—देखिए न, नमकीन कचौड़ियों के साथ मीठी चाय का स्वाद और कितना निखर उठता है! देखिए—दोनों चीजें सामने पड़ी हैं। मैं कुछ गलत नहीं कह रहा.......

आनंद ने अपनी बातें हँसी में कही थीं, पर अभया को लगा कि यही वस्तुस्थिति है—यही तथ्य है! जीवन में परेशानियाँ न आईं तो वह जीवन ही कैसा? जीवन की एकरसता में कोई

आनंद नहीं, कोई मधुरिमा नहीं, उसमें वक्रता चाहिए ही, कुछ तिक्तता भी।............तिक्त और मधुर का सम्मिश्रण ही तो जीवन है......

अभया जाने और क्या सोचे चलती, पर वह सोच न सकी जब कि आनंद को हँसते हुए कहते सुना—अरे, आप तो कचौड़ियाँ ही खाती जा रही हैं, अभया देवी, चाय जो ठंढी पड़ रही है! उसे भी दो-एक घूंट पीकर देखिए! मीठा से इतनी नफरत क्यों हो गई है? आप तो चाय की आदी ठहरीं......

अभया इस बार गंभीर न बनी बैठी रह सकी, वह भी मुस्करायी और मुस्कराती हुई ही बोली—मुझे आपके साथ चलना जो है, भूख लगने पर आपतो फिर कचौड़ियाँ खिलाएँगे नहीं, आप तो रखेंगे मेरे सामने—वह मीठे-मीठे केले, पपीते, सरीफे, अमरूद और जाने क्या-क्या? जो मुझे नहीं भाते.....

आनंद इस बार खिल-खिला कर हंस पड़ा और अपने सामने की अलग धरी कचौड़ियों को उसकी ओर बढाते हुए बोला—क्या और चाहिए, दूँ? आप तो दिन भर और कोई फल छूएँगी नहीं, तो फिर......

—तो फिर मैं इतना ज्यादा खालूँ कि आपकी चीजें ज्यों-की-त्यों बची रहें? नहीं,-नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकती, मुझे आपकी सम्मान-रक्षा का ध्यान है...ऐसा नहीं हो सकता—हरगिज नहीं।

—धन्यवाद, सुन कर हर्ष हुआ।

—और उसी हर्ष को लेकर दोनो का जलपान शेष हुआ और उसी हर्ष के साथ दोनो बाहर जाने के लिए कार पर आ बैठे।

नवम परिच्छेद

कांग्रेस-कार्य-कर्त्ताओं का दल, टिड्डी-दल की तरह गाँवों में आकर छा गया है। सर्वत्र—चारो ओर कर्म का प्रवाह जैसे वह निकलता है। गाँव की सफाई की ओर वह ग्राम-वासियों का ध्यान आकर्षित करता है, फिर भी जब उन्हें इस ओर प्रवृत्त नहीं देखता, तब दलके कुछ नौजवान झाड़ू और कुदाली लेकर आते और अपने हाथों उन कुदालियों से गंदगियों को काट गड्ढों को भरते और झाड़ुओं से रास्ते और गलियों की धूलों को दूर करते। इन कामों में उन्हें घृणा नहीं, बल्कि वे प्रसन्नता और गौरव का अनुभव करते। गाँव वाले उन युवक कार्य-कर्त्ताओं की ओर देखते और जो दिल वाले होते, वे स्वयं उनके साथ कामों में लग जाते। इस तरह जाने कब के जमे गर्द-गुबार और गंद-गियों की सफाई हो जाने से गाँव स्वस्थ्य और प्रसन्न दीखता। ये युवक स्वयं-सेवक हैं—अपने इच्छा-कृत सेवक। इन्हें किसी ने इस काम की ओर जबर्दस्ती घसीटा नहीं है, वरन ये स्वयं घसीट कर आलगे हैं। इनमें केवल सस्ती भावुकता नहीं—कर्मठता है और है काम करने का हौसला……

इनमें कुछ वे हैं जो खादी की उपयोगिता पर सुंदर सारगर्भित भाषण दे सकते हैं, उस भाषण में वे बतलाते हैं कि खादी लाखों बेरोजगारों को रोजगार देती है, वह भूखों को अन्न और नंगों

को वस्त्र-प्रदान करती है। खादी वह चीज है, जो हमारे स्वराज्य का पथ-परिष्कृत करती है और एक शब्द में कहें तो कह सकते हैं कि खादी की एक-एक तंतु पराधीन भारत की कराह को विधाता के कान तक पहुँचाती है ···जबसे हमने खादी छोड़ी, तबसे हम पराधीन हुए, कंगाल हुए, हमने अपनी सम्पदा छोड़ी—अपनी संस्कृति छोड़ी······और अपनी संस्कृति के स्थान पर जो हमें मिला, वह हमारी गुलामी है······

और वे हमें खादी की उपयोगिता के बारे में कहते हैं—ग्रामोत्थान संघ का प्रधान कार्य है—चर्खा चलाना······पर यह चर्खा हमारी माताओं और बहनों का शृंगार होना चाहिए··· हमारी माताएँ-बहनें ही हमारी संस्कृति को जीवित रख सकती हैं, हमारी धमनियों में अपनी सभ्यता का ताजा रक्त भर सकती हैं······उन्हीं माताओं-बहनों से हमारी अपील है—आप चर्खा अपनाएँ, 'खादी की महत्ता समझें और देश की गुलामी को दूर कर इसे राम-राज्य तक पहुँचाएँ······

उनकी अपील कांग्रेस की अपील है, वह कांग्रेस जो पराधीन भारत की आशा और स्वराज की मंत्र-द्रष्टा है······

इन कार्य-कर्त्ताओं का गाँव के पूर्वी अंचल पर जहाँ पद्मा की धारा वक्र हो गई है, एक आश्रम है। वहाँ कुछ तो दिन-भर लेखा-जोखा और पत्र-व्यवहार में व्यस्त रहते हैं और कुछ वे हैं जो चर्खा चलाते, रुई धुनते और इस तरह के अन्य काम करते हैं और कुछ वे हैं जो दिन भर गांव में फेरी लगाते, गांववालों को समझाते, उन्हें सदस्य बनाते और आश्रम के लिए अन्न इक[illegible] करते······

और भोर को, जब गांववाले मीठी नींद में स्वप्न के रंगीन जाल बिनने में लगे होते हैं, वे लोग प्रभात-फेरी लगाते हैं, उस समय के उनके उद्बोधक संगीत आलसियों में भी चेतना भरते हैं… यह प्रभात-फेरी उन कार्य-कर्त्ताओं का अमोघ अस्त्र है। जो बड़े-बड़े लम्बे व्याख्यान असर नहीं पैदा कर सकते, वह असर प्रभात -फेरी के संगीतों का दो-चार शब्द कर जाते हैं, लगता है जैसे ये शब्द अर्वाचीन युग की वेद-ऋचा हैं और व्याख्यान जिनका भाष्य; पर भाष्य मस्तिष्क की वस्तु हो सकता है किंतु ऋचा सर्वतोरूपेण हृदय की।

और ये ऋचाएं संगीत का रूप लेकर जब अभया को स्पर्श कर जाती हैं तब उसका अहं उसके सामने अट्टहास कर उठता है। अभया को लगता है—वह स्पर्श बड़ा ही मर्म-स्पर्शी है! नित्य नूतन बनकर जो संगीत उसे व्यथित कर छोड़ते हैं, उन्हें वह अपनी उपेक्षाओं में डुबो देना चाहती है, अपने रोष की अग्नि में उन्हें भस्मीभूत कर देना चाहती है; पर प्रयास करके भी वह सफल-प्रयत्न नहीं होती, तब वह अपने आप झुंझला उठती है और झुंझलाए स्वर में बोल उठती है—ये अभागे इस तरह नींद में खलल क्यों डाला करते……

मगर कुछ ही क्षणों के बाद अभया का अपना रिमार्क स्वयं ही अत्यंत कटु जान पड़ने लगता है, तब वह कुछ बोलती नहीं, सामने की खिड़कियाँ उठकर खोल देती है और देखती है बाहर; किंतु बाहर कुहरे के सिवा और कुछ नहीं दीख पड़ता, हाँ, दूर से भाँसता-भाँसता-सा स्वर आता है—जागो भारत-भाई……

और अभया फिर से बिछावन पर जाकर भी नींद को बुला नहीं पाती। वह करवटें बदलती है, कुछ सोचती भी है……और सोचते हुए अपने पिता के कमरे की ओर चल पड़ती है; पर वह पिता को पाती नहीं, उसे याद आता है कि उसके पिता का नित्य का कार्य-क्रम है—प्रातः वायुसेवन……और तब वह उधर से लौट कर अपने नित्यनैमेत्तिक कार्यों के लिए चल पड़ती है……

डा० स्वरूप नित्य की तरह टहल कर, कुछ रोगियों को देखते हुए, कुछ लोगों से मिलते हुए और कुछ को अपने साथ लाते हुए जब बरामदे पर की आराम कुर्सी पर आ बैठते हैं तब अभया दौड़ी हुई उसके पास आकर कहती है—आज तो बहुत जल्दी लौट आए, बाबू जी!

—जल्दी!—डा० स्वरूप प्रसन्न दृष्टि से अभया की ओर देखते हैं और मुस्कराते हुए कहते हैं—नहीं तो, बेटी, मैं अपने वक्त पर ही आया हूँ; मगर मैं आज स्वयँ पा रहा हूँ कि तुम इतनी जल्दी नहा-धोकर तैयार हो गई कैसे? चेहरा भी तो उदास-उदास जैसा दीखता है, क्या रात को नींद नहीं आई?

नींद!—अभया भीतर-भीतर चमक उठीं, पर बाहर से अपने को सँयत कर बोली—खूब सोई बाबू जी! नींद काहे को न आती! मगर मैं पूछती हूँ कि, माँ-बाप अपने बच्चों का चेहरा हमेशा उदास ही क्यों देखते हैं? क्यों नहीं उन्हें……

डा० स्वरूप उत्तर न सके; पर उन्होंने एक गहरी साँस ली और बाहर की ओर देखने लगे……कुछ क्षण के बाद फिर आप ही अभया की ओर मुखातिब हुए और उल्लास के स्वर में बोले—हाँ, एक बात कहना भूल रहा था, अभय, तुम्हें शायद

मालूम न हो, मालूम हो भी नहीं सकता, रात की तो बात है—तुम्हारी चंपी की सगाई हो गई······

डा० स्वरूप बोल कर कुछ क्षण चुप हो रहे, जाने उनका मन क्यों उदास हो गया, फिर बोल उठे—हाँ, सगाई—डा० स्वरूप अपने आप में निरुत्साह हो पड़े—वह विधवा थी न ! मगर अपने आदमी भी इतना कसाई होता है, वह यहीं देखा ! उसके मामा था, जिसने चुपके रुपए गिना कर उसे एक शराबी-जुआड़ी के गले मढ़ दिया है। वह फार्म में ही काम करता था, मगर जुआड़ी जान कर वह वहाँ से निकाल दिया गया है······

अभया अपने पिता की बातें सुन लेती है ; पर अपनी ओर से वह कुछ नहीं बोलती। डा० स्वरूप उससे कुछ सुनने की अपेक्षा रखते थे, क्योंकि वह जानते थे कि चंपी को वह दिल से चाहती है, प्यार करती है ; मगर जब वे पाते हैं कि चंपी का दुखद संवाद उसे चंचल न कर सका, तब वे स्वयँ बोल उठे—निकाल देना अन्याय हुआ, चंपी की परवरिश······

इस बार अभया बोल उठी—ऐसों को निकाल देना ही न्याय है बाबू जी !

—इसलिए कि वह जुआड़ी था ? शराबी था ?

—हाँ, इसलिए कि, वह जुआड़ी और शराबी था, जो समाज का एक बड़ा दुश्मन है······

—दुश्मन है, माना—डा० स्वरूप मुस्कराए और फिर मुस्कराते हुए ही बोले—दुश्मन भी दोस्त बनाए जा सकते हैं, अभय ! किससे गलती नहीं होती ? मगर गलती का सुधार होना चाहिए······

—और इससे अच्छा दूसरा सुधार हो नहीं सकता !—अभया ने छूटते हुए जरा तीखे स्वर में कहा।

—इसे सुधार कहते, अभय ?—डा० स्वरूप इस वार हँस पड़े—क्या काम से अलग कर दिए जाने पर वह सुधर गया होगा ? नहीं-नहीं देखता हूँ, आज तुम अपने आप में नहीं हो, नहीं तो तुम से मैं और कुछ सुन पाता ! खैर, मैं एक वार आनंद से कह देखूँगा। कहूँगा कि वह अपना पेट जब भर नहीं पाता तब उससे जो भी काम हो जाय—वह उसके लिए दोषी नहीं है। मैं नहीं कहता कि वह गलत रास्ते पर नहीं है ; मगर उसे सुधरने का मौका तो मिलना ही चाहिए !

अभया इस वार और भी झुंझलाई और झुंझलाहट को लिए हुए ही वोली—आनंद से कहने पर भी आप उसका कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकते ! आनंद जो एक वार सोच लेते हैं, उससे पीछे नहीं हटते और उन्होंने जो कुछ किया है, वहुत सोच-समझ कर किया है। शासन के प्रवंध में दया का काम नहीं, दंड का एक महत्त्व-पूर्ण स्थान है, वावू जी, इसे आप को मानना पड़ेगा। मैं भी अगर आनंद की जगह होती तो यही करती, जो वे कर चुके हैं। वुढ़ापे में आदमी दंड से घवराते और दया को ही अधिक प्रश्रय देते हैं और आपका दया दिखलाना आप का नहीं—आप के वुढ़ापे का काम है······

अभया वहाँ से उठ कर भीतर की ओर चल दी। डा० स्वरूप के सामने तव तक कुछ आदमी और इकट्ठे हो चले थे, वे अव उन लोगों की ओर मुखातिव हुए। उसी समय कार दरवाजे पर आ लगी, सोफर उतर कर वरामदे पर आया और

डा० स्वरूप को नमस्कार करते हुए कहा—साहब ने डा० अभया देवी को याद किया है !

—ठहरो, वह आ ही जाती है—डा० स्वरूप ने उसकी ओर देखते हुए कहा—क्यों, वह तो खुद आने वाले थे न ?

—मगर वे आ न सके, बोले—काम कुछ ऐसे पड़े हुए हैं जिन्हें पूरा कर लेना निहायत जरूरी है, उन्होंने मुझ से इतना ही कहा ! क्यों, उनकी कोई खास जरूरत है ?

—खास जरूरत !—डा० स्वरूप बड़े इतमीनान के साथ बोले—ऐसी कोई खास जरूरत नहीं, वे तो आते-जाते रहते हैं, फिर कभी मिल लूंगा।

अभया ने कार पहुँचने की आवाज सुन ली थी, वह तैयार होकर बाहर आई, सोफर ने सलाम किया, अभया खुद कार की ओर बढ़ गई।

और अभया जब आनंद-निवास में जा पहुँची तब उसने पाया कि आनंद अपने कामों में डूबा हुआ है। स्टेनो उसके सामने बैठा है, जिसे वह चिट्ठियों के उत्तर डिकटेट करा रहा है। पग-ध्वनि सुनते ही आनंद अभया की ओर देखकर प्रसन्न-मुद्रा में बोल उठे—ओह ! आ गईं आप ? अच्छा ही किया ! मगर तकलीफ होगी, बैठिए तबतक—ज्यादा नहीं, बस, कुल दस मिनट में काम खतम हुआ जाता है……

—हाँ-हाँ, खतम कर लीजिए शौक से, तब तक मैं बागीचे में घूम आती हूँ !

—मगर जल्दी आ जाइए……

—हाँ-हाँ, पंद्रह मिनट से ज्यादा न लूँगी—कहती हुई वह

बाहर निकली। फार्म के लोग काम पर आ लगे थे, अभया बागीचे की ओर बढ़ी जा रही थी, वह रास्ते की बगल वाली क्यारियों को देखती चल रही है जिनमें तरह-तरह के फूल-फल लगे हुए हैं और उन क्यारियों में काम करने वाले, बड़ी सावधानी के साथ, सूखे पत्ते और मरे हुए डंठलों को पेड़ों से अलग कर रहे हैं। वह वहाँ पहुँच कर एक से बोल उठती है—गत रात को जिसकी सगाई हुई है, उसे जानते हो रामू? सुना, वह जुआड़ी था······

—जुआड़ी!—रामू ने अभया की ओर ताका और सकपकाते हुए विनीत स्वर में बोला—शायद आप मंगल के बारे में कह रही हैं?

—क्या वही काम से निकाला गया है?

—हाँ, वही काम से निकाला गया है और इसलिए कि उसे जुए का व्यसन लग गया था, शराबी भी कुछ कम न था वह, जभी तो वह काम से भी निकाला गया ···यों वह भला आदमी था, काम भी खूब करता था; मगर अपनी मिहनत की कमाई पर टिकता न था, टिकना तो अलग, जूए के लोभ में उसे भी गँवा आता था······

अभया उसकी बातें सुनकर कुछ क्षण चुप रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—वह अब रहता कहाँ है? क्या करता है आज कल?

—यह जो रामपुर गाँव है, यहाँ से ज्यादा दूर नहीं—यही कोस-डेढ़ कोस पर, वहीं उसका घर है, और करेगा क्या?—रामू हँस पड़ता है और हँसते-हँसते ही बोल उठता है—कोई ऐसा

रोजगार तो हाथ में है नहीं, ठग और जुआड़ी जो करते हैं, चकमा देना तो उसका साधारण-सा काम है······

अभया को इन सब बातों से वितृष्णा ही बढ़ी, कुछ संतोष न मिला। वह कुछ बोली नहीं, वह दो-एक गुलाब के फूलों को हाथ में लिए आगे न बढ़ सकी, वह वहाँ से लौटी और आकर पाया कि आनंद अपने काम से छुट्टी पाकर निश्चिंत हो जैसे अभया की प्रतीक्षा ही कर रहा हो। अभया ने आकर निर्द्वंद्व भाव से आनंद के पहने कोट के कालर में गुलाब का एक फूल जड़ दिया। फूल जड़ना यद्यपि एक साधारण व्यापार था; पर आनंद के लिए यह अप्रत्याशित था, इससे वह भीतर-ही-भीतर पुलकित हो उठा, उसे लगा कि जैसे गुलाब के द्वारा अभया का स्पर्श उसके मन-प्राण को उज्जीवित बना रहा है—उस स्पर्श में एक नशा है, एक स्पंदन है शायद आत्मा का स्पंदन। वह विहँस पड़ा और हँसते-हँसते हो बोला—इतने बड़े सौभाग्य को मैं कैसे संभाल सकूँगा, अभया, ओह, कैसे सँभाल सकूँगा ?

—क्यों, भय खा रहे हो मझसे ?

—भय !—आनंद समझ न सका कि, वह उत्तर में क्या कहे। वह कुछ क्षण स्तब्ध रह कर उसकी ओर देखता रहा, फिर बोला—तुमसे मुझे भय नहीं; और कुछ है, जिसे मैं समझ नहीं पा रहा कि वह क्या है ? क्या है वह, तुम कह सकती हो, अभया ? मैं जानना चाहता हूँ कि वह क्या है।

अभया की भवें सिकुड़ उठीं, गालों का रंग कुछ और गाढ़ा हो उठा, वह किंचित् रोष-सने वचनों में बोल उठी—तुम आदमी नहीं, पत्थर हो !

आनंद हँस पड़ा, पर अभया न हँस पायी।

आनंद के सामने वहाँ का वातावरण क्षुब्ध-सा दीखा, उसने पाया कि शायद उससे कुछ भूल हो गई है; पर कहाँ वह भूला है, वह समझ नहीं रहा है। वह आप-ही-आप अस्तव्यस्त-जैसा हो उठा और उसी अस्तव्यस्तता में बोल उठा—अलभ्य वस्तु के पाने पर मनमें कौतूहल के साथ जो एक प्रच्छन्न आनंद होता है, उस आनंद में मनुष्य का पत्थर हो उठना कुछ अस्वाभाविक नहीं, अभया देवी! मैं जानता हूँ—पत्थर मूक क्यों है? और पत्थर मूक न हो तो और क्या हो? जहाँ भाषा स्वयं मूक हो जाती है, वहाँ मनुष्य को पत्थर भी कहा जासकता है। और आपका पत्थर कहना कुछ गलत नहीं, अभया देवी!

अभया ने रोष में पत्थर जिस अर्थ में कहा था, वह अर्थ आनंद के विवेचन से सर्वथा भिन्न था; पर जब अभया ने पाया कि पत्थर को आनंद जिस रूप में ले सका है, वह तो उसके अपने अर्थ से और भी स्पष्ट, और भी मुखर, और भी प्रखर है, तब वह अपने आपको रोक न सकी, हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—मैं पूछती हूँ, क्यों तुम किसी चीज को सीधे अर्थ में ग्रहण नहीं करते? क्यों तुम सामान्य वस्तु को भी असामान्य रूप में देखते हो?

—सामान्य-असामान्य का विभेद स्वयं कुछ सामान्य नहीं, अभया!—आनंद उत्फुल्ल होकर ही बोल उठा—संभव है, यह मेरा दृष्टि-दोष हो; मगर मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकता कि यह दृष्टि-दोष ही है...और, सच पूछो तो, मैं जब तुम्हें अपने आप पाता हूँ तब लगता है, जैसे मेरा अस्तित्व ही नहीं रह

गया हो ! क्यों मैं अस्तित्व-हीन हो उठता हूँ—स्वयं नहीं जानता। संभव है, तुम इससे बुरा भी मानो; मगर तुम इतना जरूर मानोगी कि मैंने जो-कुछ कहा है, निष्कपट भाव से कहा है ! और वह बिलकुल सच है।

आनंद वास्तव में निष्कपट है, वह भीतर-बाहर एक-सा है, जो सोचता है, समझता है, साफ समझता है और जैसा समझता है, उसे वैसा कह ही देता है; मगर अभया ऐसी नहीं है. वह बिलकुल भिन्न है; मगर भिन्न होकर भी आनंद से अभिन्न हो उठी है ! वह आनंद की बातों को समझती है, रस-ग्रहण करती है और जहाँ आनंद स्वयं अपने भावों में उलझ कर उन्हें व्यक्त नहीं कर पाता, वहाँ उन अव्यक्त भावों की सतह पर पहुँच कर अभया सचेतन से जड़ हो उठती है, उस समय उसके दृष्टि-पथ पर जो आता है, वह दिव्य होकर आता है, महान होकर आता है, वंदनीय होकर आता है। अभया तब चाहती है कि उसका वंदनीय, उसका महान, उसका दिव्य उसकी आत्मा को स्पर्शित, मन को स्पंदित और उसके प्राणों में अमृत का घड़ा उढेले, उसका रिक्त पूर्ण हो, उसके अंतर का कोना-कोना उस अमृत रस से भर उठे—संपूर्ण भर जाय, वह स्वयं संपूर्ण हो उठे और जिधर उसकी दृष्टि जाय, वह संपूर्ण-संपूर्ण को ही देखे; मगर वह इच्छा करके भी, चाह करके भी, और जब वैसा अवसर आ भी जाता है, वैसा कर न पारही, जाने कहाँ उसकी दुर्बलता है, वह नहीं जानती······ वह दौड़ तो पड़ती है, पर संभल जाती है और संभल कर देखती है कि कहीं वह इस दौड़ में गिर तो न पड़ेगी······ वह ललक उठती है उस

अलभ्य वस्तु के लिए, जो उसके लिए अलभ्य होकर भी सुलभ है, महान होकर भी भिक्षुक है, वंदनीय होकर भी उसका अनुगत है और दिव्य होकर भी अनुग्रह-प्रार्थी !

और ऐसी अभया किंचित् रोष-सने स्वर में कह उठती है—बुझौअल न बुझाओ, आनंद ! समय निकलता जारहा है और तुम्हें उसका कुछ खयाल नहीं…अगर न चल सकोगे तो कहो मैं लौट जाऊँ ।

—ओह, सचमुच बातों में बहुत वक्त निकल गया ; मगर यों ही चलोगी ? खाना-वाना…

—नहीं. उसकी कोई खास जरूरत नहीं, फल तो रहेंगे ही साथ, जब जी चाहेगा, खा लेंगे, क्यों ?

—खैर, वही रहे ।

और दोनो कार पर आ बैठते हैं, अभया स्वयं सोफर की सीट पर बैठ कर स्टेयरिंग थाम लेती है ! कार अपनी दिशा में चल पड़ती है ।

वन-बीहड़ प्रान्तों में घूमने के लिए वे दोनों बहुत दूर तक चले गए हैं, ऐसी जगह जहाँ—उन दोनों के सिवा तीसरा कोई नहीं ! दोनो स्वछंद विचरण करते हैं, स्वच्छंद रूप से बातें करते हैं, ऐसी बातें जिनका न ओर है न छोर, जैसे वे बातें कभी शेष होने को नहीं, जैसे उन बातों के सिवा कहने-सुनने-समझने देखने को कुछ है ही नहीं… दोनों चलतेहैं, घूमते हैं, बैठते हैं, लेटते हैं, गिरते-संभलते-उठते और क्लांत हो पड़ते हैं—और इस तरह क्लांत होकर कार पर आ बैठते हैं, फलों से क्षुधा-निवृति करते और फिर विश्राम के लिए वहाँ से घर की ओर लौट पड़ते हैं……

अभी संध्या नहीं हो पाई है, मगर सूर्य्य अस्ताचल को स्पर्श करने जारहा है, कार की स्टेयरिंग थामे अभया बैठी है, कार की गति तीव्र है और उससे भी अधिक तीव्र उसके मन की गति है, आनंद बगल वाली सीट पर है, वह अस्ताचलगामी सूर्य्य की ओर देख रहा है; पर अभया उस ओर नहीं देख रही है, वह देख रही है—विभिन्न ओर से आते हुए कुछ युवक को···हाँ युवक की ही ओर। जब कार उसके निकट आ पहुँचती है, तब वह युवक-दल ठिठका-सा खड़ा उसके प्रति नमस्कार-ज्ञापन कर जैसे कुछ कहा चाहता हो। कार धीमी गति में आकर स्वयं रुक जाती है। अभया पीछे की ओर मुड़ कर उस युवक-दल की प्रतीक्षा करने लगती है!

आनंद समझ नहीं पाता कि कार क्यों रोक डाली गई? वह कुछ कहा ही चाहता है कि वे युवक तब तक कार के निकट पहुँच जाते हैं और उनमें से एक बोल उठता है—सौभाग्य से ही इस समय आपके दर्शन हुए! हमलोग प्रातः काल आपके बंगले पर आए थे। डा० साहब से मालूम हुआ—आप अभी-अभी बाहर निकल चुकी हैं। क्या आप अभी अपने बंगले पर जायंगी? या जैसी भी आज्ञा हो, कहा जाय। अब तो समय भी हमलोगों के पास नहीं है······आपने तो अब तक सोच लिया होगा?

—सोचना इसमें क्या है?—अभया हँस कर बोल उठी—मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार करती हूँ।

—धन्यवाद, आपसे हमें ऐसी ही आशा थी।

कार स्टार्ट हुई और अपनी गति में चल पड़ी; पर जब तक वे दोनों कार पर बैठे रहे, न अभया ही बोली और न आनंद ही कुछ पूछ सका······

मगर अभया जब कार से अपने बंगले पर उतर पड़ी तब वह बोल उठी—उतरिए न, आनंदबाबू, चाय यहीं से पीते जाइए···

—नहीं, नहीं, अभी मेरा जाना ही ठीक होगा····अभी मुझे न रोकिए ···

अभया कुछ न बोली, आनंद कार लेकर चलता बना।

दशम परिच्छेद

अभया ने अपनी स्वीकृति दे दी है—दे दी है समानेत्रित्व करने के लिए जिसे वह नहीं चाहती; पर इतना शीघ्र इस काम की ओर कैसे झुक पड़ी वह, इसे वह खुद नहीं समझ पा रही! तो क्या उसे स्वीकृति की सूचना देना—और उस समय देना जब कि आनंद उसके साथ है. वह आनंद जो अभया को एक दिन सचेत कर चुका है यह कहकर कि देश-सेवा साधारण कर्म नहीं—तलवार की धार पर चलता है—धधकती आग के शोले को अपने से लगाना है—क्या यह इंगित नहीं करता कि अभया उस आनंद के मन को दुखाना चाहती है अथवा यह कि वह अपने अहं का प्रदर्शन करना चाहती है—वह चाहती है कि उसे दुनिया जाने कि वह सभानेत्री है, देश-सेविका है, कांग्रेस कार्य-कर्तृ है! मगर इनमें से कोई भी कारण नहीं है, न तो आनंद को दुखाना ही चाहती है वह और न वह अपने अहं का ही प्रदर्शन करना चाहती है। उसे आत्म-प्रशंसा से स्वयं चिढ़ है, वह प्रदर्शन के पथ पर कभी न चढ़ी, वह आनंद को हृदय से चाहती है, उसके हृदय को चोट पहुंचाना उसका कदापि उद्देश्य नहीं; फिर भी उसने स्वीकृति दे दी है और सोच-समझ कर दी है। यह स्वीकृति उसकी अंतरात्मा की स्वीकृति है······

अभया दिन की थकी-मारी जब अपने बिछावन पर आ लगी है, तब वह इसी उधेड़बुन में पड़ी है। वह क्यों देश-सेवा की ओर

ललक पड़ी है, वह अपने प्रश्न का आप उत्तर दे नहीं पाती। उसके स्मृतिपट पर आज दिन की घटनाएँ प्रत्यक्ष अंकित हो उठती हैं, उन घटनाओं में वह पाती है कि चंपी की सगाई हो गई है उस व्यक्ति के साथ जो स्वयँ जुआड़ी है, शराबी है, भ्रष्ट है, जिसे काम से निकाल दिया है, जिसकी पुष्टि उस बागवान ने की है जिसका नाम रामू है और उसी रामू के सामने उसने गुलाब के फूल तोड़े थे, जिनमें से एक वह आनंद के पहने कोट में जड़ चुकी है, जिस पर आनंद जाने क्या-क्या सोच चुका है—उसने पत्थर तक बनना भी कितनी सरलता के साथ स्वीकार किया है! वह आनंद कितना उसका प्रिय है, वह भी तो कम उसकी प्रिय नहीं! उन दोनों का मिलन एक-दूसरे के लिए कितना मधुर, कितना मादक और कितना आनंदमय है, उसे वह आनंद भी समझता है और वह खुद भी समझती है और समझती है कि वह आनंद के अभाव में एक क्षण भी सुखी नहीं रह सकती! वह कितना कर्मठ है, कितना सुंदर है, कितना निष्कपट और कितना सरल.........

और अभया सोचती है—आनंद सरल अवश्य है, निष्कपट भी है; पर वह उस युवक के प्रति ईर्ष्यालु क्यों है, द्वेषी क्यों है? उसने उसका क्या बिगाड़ा? वह एक जन-सेवक, स्वेच्छा-कृत-एक सेवक—त्याग-तपस्या में तपा हुआ एक साधारण युवक है जिसमें न अहमन्यता है, न अपने आपका जिसे बोध है और एक यह है, जिसने ऊँची डिग्रियाँ हासिल की हैं, जिसने अनु-संधान के प्रयोग में सफलता पाई है, जिस सफलता पर सरकार ने खिताब और वैज्ञानिक संस्थाओं ने सम्मान-प्रद प्रशंसा-पत्र के

साथ पुरस्कार प्रदान किए हैं—जो व्यवसाय में कर्मठ और व्यवहार में सरल—शिशु-सा सरल........वह अकिंचन नहीं, समृद्धवान है, वह दीन नहीं, उदार है......मगर नहीं, सब कुछ है और कुछ नहीं है, जब वह पाती है कि उसका विद्वेष एक साधारण युवक के प्रति है जो उसकी समता में नहीं है! विद्वेष समता में शोभा पाता है—जो स्वयं लघु है, उसके साथ विद्वेष कैसा? जो स्वयं महान है, वह लघु के प्रति क्यों ईर्ष्यालु हो!...

अभया का हृदय आप-ही-आप वितृष्णा से भर जाता है, वह अधिक और कुछ सोच नहीं सकती, वह निद्रित हो पड़ती है, जहाँ उसका सारा द्वंद्व स्वयं शांत हो पड़ता है! भोर होता है प्रभात-फेरी वाले आज भी फेरी लगा रहे हैं, प्रभात-कालीन संगीत अभया के अचेतन मन को सचेतन कर छोड़ता है, आज उस संगीत में उसे मालूम पड़ता है कि वह उसके आत्मा का संगीत है। कल के संगीत और आज के संगीत में इतना विभेद क्यों है? वह समझ नहीं पाती, वह तन्मय हो जाती है उस संगीत की स्वर-लहरी पर—जो उसके पास उषा-समीरण के साथ उस तक आकर उसे तरंगायित कर रही है। अभया आत्मा-विभोर हो उठती है और उसी अवस्था में आप भी गुनगुनाने लगती है—जागो भारत भाई......

आज वह निरलस है, प्रसन्न है, प्रफुल्ल है, उसके रोम-रोम में स्पंदन है, पुलक है। जिधर ही उसकी दृष्टि जाती है, उधर ही वह पाती है कि बालारुण की कोमलतम रश्मियाँ वसुंधरा के उन्मुक्त वक्षस्थल पर ज्योत्स्ना का पीताभ अंबर बिखेर रही हैं... आज पेड़-पौदे, वृक्ष-लताएँ—जड़ और चेतन—सभी मुग्ध हैं

प्रसन्न हैं······अभया उसी मुग्ध-प्रसन्नता को अपने कक्ष-कक्ष में बिखेरती है गुन-गुनाती है, चहकती है, लगता है जैसे अपनी प्रफुल्लता को खुलकर बाँटने के लिए वह अधीर और चंचल हो उठी है······

डा० स्वरूप नित्य की तरह आज भी टहल कर आ गए है, बरामदे की आराम कुर्सी पर आ लेटे हैं, अभया उसके सामने जाती है और इसके प्रसन्न-प्रफुल्ल वदन को देखकर आप भी प्रसन्न हो उठते हैं और उसी प्रसन्नता के स्वर में वे बोल उठते हैं—कल वह युवक आए थे, अभय, जब तुम चली गई थीं, शायद वह आते होंगे, मैंने आने के लिए कह दिया था···

—वह नहीं आएँगे आज—अभया प्रसन्न होकर ही बोली—कल संध्या को भेंट हुई थी, मैंने अपनी स्वीकृति दे दी है······

—स्वीकृति दे दी है?—डा० स्वरूप ने अभया की ओर देखते हुए पूछा।

—हाँ, दे दी है!—अभया बोली, फिर कुछ क्षण रुक कर पूछा—क्यों उस युवक को जानते हैं बाबूजी?

—जानता नहीं था पहले—डा० स्वरूप बोल उठे—कल से ही जानने लगा हूँ, वह अपने कुछ साथियों के साथ यहाँ आए, तुम्हारी खोज की, मैंने खोजने का कारण पूछा, उसने बतलाया कि तुम्हें सभानेत्रित्व के लिए आमंत्रण देने आया है। इस पर मैं उसकी ओर झुका, बहुत-से प्रश्न किए, जिनके उत्तर उसने बड़ी संजीदगी के साथ, बड़ी सरलता के साथ और स्पष्ट शब्दों में दिए······और तभी मैंने समझा—वह साधारण एक कार्य-कर्त्ता ही नहीं है, वह चरित्रवान और ऊँचे व्यक्तित्व का युवक है··वह एक

धनी खान्दान के युवक हैं, पर धनी युवकों की उच्छृंखलता उसमें नहीं; वह फिलासफी के प्रोफेसर थे, जिसे वह छोड़ आये हैं।

डा० स्वरूप एक साँस में सारी बातें कह कर अभया की ओर देखने लगे, उनकी दृष्टि में एक जिज्ञासा थी, जिसे वह अपनी वाणी-द्वारा प्रकट करने में अक्षम थे। अभया ने भी अपने पिता की दृष्टि पर अपनी दृष्टि डाली, पर उस दृष्टि की भाषा, वह भी न समझ कर पूछ बैठी—मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर ऐसा पागलपन ये लोग क्यों कर बैठते हैं। घरबार, आत्मीय-स्वजन, धन-संपत्ति, प्रतिष्ठा और पद को छोड़कर गाँव-गाँव का चक्कर लगाना, जहाँ न खाने-पीने का ठिकाना, न आराम की जगह······

—समझ गया, समझ गया, अभय—डा० स्वरूप बीच ही में बोले—तुम समझ रही हो कि, जिस काम को उन लोगों ने अपने सिर उठा रखा है, उसमें उन्हें कष्ट-ही-कष्ट मिलता है। कष्ट मिलते हैं—यह सही है; मगर जो अपने कष्ट को कष्ट ही नहीं समझते, जो कष्ट उनके स्वेच्छा-कृत हैं, जिन कष्टों को अपने जीवन-धन की तरह जिनने अपने अंतर में पाल रखा है, उनके सामने उनके वे कष्ट स्वयं विभूति बन जाते हैं और वह विभूति, जिसे आशुतोष शंकर ने अपने अंग-प्रत्यंगों में स्थान दे रखा है। जो वस्तु जितनी ही महान है, उसे पाने के लिए उतने ही कष्ट अपेक्षित हैं, अभय! इसी का नाम तपस्या है—साधना है और जब तक कोई तप की आग में नहीं तपता, तब तक स्वर्ग की सुषमा उससे दूर रहती है···अभय, इन्हीं तपःपूत युवकों की ओर हमारी भारतमाता निहार रही है आज! उसकी लौह-शृंखलाएँ इन्हीं युवकों के हाथों टूट सकती हैं······

अभया चुपचाप अपने पिता के मुख की ओर देखती रही, लगा जैसे वह बहुत गंभीरता-पूर्वक उनकी बातों पर सोच रही है। कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे, फिर आप-ही-आप अभया बोल उठी—जो लौह-शृंखलाएँ इतनी कठोर हैं, वे क्या इतनी आसानी से टूट सकती हैं, बाबूजी ? मेरी समझ में नहीं आता कि ये मुट्ठी भर युवक, जिनके पास न कोई अस्त्र-शस्त्र हैं, प्रबल विरोधियों के बमों-टैंकों का सामना किस तरह कर सकते हैं ? माँ को बेड़ी काँच की चूड़ी नहीं कि जरा स्पर्श हुआ और टूटी ! यह सिर्फ पागलपन नहीं तो क्या है ?

डा० स्वरूप बहुत गंभीर मुद्रा में अभया की बातें सुनते रहे और जब उसकी बातें शेष हो गईं, तब डा० स्वरूप के ओठों पर हँसी आ गई और उसी हँसी को लेकर अभया की ओर देखते हुए बोले—तुम्हारा ऐसा सोचना कुछ असंगत नहीं, अभय, सभी ऐसा ही सोचते हैं और ऐसा सोचने का कारण है कि एक ओर विशाल मशीनगनों, तोपों और टैंकों को देखते हैं और दूसरी ओर तोप और टैंक का सपना तो दूर रहा, बंदूक, तलवार, बर्छी को कौन कहे—महज लाठियाँ भी नहीं हैं; फिर ऐसे व्यक्ति प्रबल शत्रु का सामना करना चाहें तो वह पागलपन के सिवा और क्या कहा जायगा ? मगर सो बात नहीं है ! इसका दूसरा पहलू है और वह आध्यात्मिक है ! जो तम प्रकृति के व्यक्ति होते हैं, वे स्वभावतः भीरु हो उठते हैं। उस समय जब कि कोई सत् प्रकृति के व्यक्ति की वाणी उसके कानों में जाती है। सिंह हिंसक पशु है, उसका स्वभाव ही हिंसा करना है, वह देखने में भी भयंकर और कार्य में भी क्रूरकर्मा है; मगर वहीं सिंह तपःपूत

योगी के निकट शांत हो पड़ता है, उसकी हिंसा-वृत्ति जाती रहती है और वह उनकी इच्छा पर चलने को तत्पर हो उठता है। हिंसा और अहिंसा में यही मौलिक विभेद है। अहिंसा की विजय आत्मा पर होती है और हिंसा की शरीर पर। शरीर पर अधिकार करने वाला अधिकारी अपने प्रयत्न में सफल नहीं समझा जाता जब तक आत्मा उसकी अधीनता स्वीकार नहीं कर लेती। आज का भौतिक जगत रणोन्मत्त हो उठा है, उसके सामने भौतिक वस्तुओं का मोह ही प्रबल हो उठा है; और जब तक मोह है, वह सारी दुनिया पर विजय पाकर भी शांति उपलब्ध नहीं कर सकता। फिर जहाँ शांति नहीं—शाश्वत आनंद नहीं—वहाँ राज्य-विस्तार स्वयं एक विडंबना है। मगर आज की दुनिया यह बात समझ नहीं रही है, समय आयगा और लोगों की समझ फिरेगी······

डा० स्वरूप बोल कर चुप हो रहे, जाने वह और कुछ क्या-क्या सोच गए, फिर आप-ही-आप बोल उठे—शुभ कर्मों का फल शुभ ही होता है, अभय, अशुभ नहीं, इसका प्रभाव और बल भी अजेय होता है। आज का मानव दिव्य जीवन की ओर उन्मुख नहीं है! उसमें पशुता घर कर गई है, विद्वेष-भावना प्रबल हो उठी है, मोह ने ग्रस्त कर रखा है, स्वार्थ के सामने उसने घुँटने टेक दिए हैं, विषयों की वासनाएँ उसके ज्ञान-तंतुओं को नष्ट कर चुकी हैं। तमस् का प्रभाव है—उसकी माया है; पर यह स्थायी वस्तु नहीं, इसका अंत होगा हो—जब दिव्य-कर्मी इस क्षेत्र में उतरेंगे। भले ही उनकी संख्या अल्प हो, पर उनका प्रभाव अक्षुण्ण होगा—अमोघ होग.···हमारे त्रिकाल-दर्शी ऋषियों

ने इस तत्त्व को समझा था, हम उन्हीं के संतान हैं, भारत उन्हीं मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों की एक दिन जन्म-भूमि रह चुका है, यहाँ के रजकण में अब भी वह मूरि है, जिसके स्पर्शमात्र में अमरता प्रसन्न खड़ी दीखने लगती है। काश, आज हमारी आँखें होतीं ! काश, आज हम कुछ समझ पाते !

डा० स्वरूप और कुछ बोल न सके, वह बोलते-बोलते स्वयं उच्छ्वसित हो उठे थे,—अभया की दृष्टि इस ओर लगी थी, वह भी उनकी बातों पर गंभीरता पूर्वक विचार करने लगी। आज उसके सामने वह मातृ-मूर्त्ति प्रत्यक्ष हो चुकी है, जिसे वह अपने कल्पना-चक्षु से देख रही है—देख रही है वह मातृ-मूर्त्ति, उसका भयावह वेश, वह रूप जो जरा-जीर्ण है, फटे-चिटे वस्त्रों से आवृत है, जिसके हाथ और पैर जंजीरों से बंधे पड़े हैं, जो छटपटाती-सी दीखती है; पर वह कुछ कर नहीं पा रही ! जिसकी आँखों में ज्वालाएँ भर उठी हैं, जिसके ओठों पर घृणा और विक्षोभ प्रत्यक्ष हो उठे हैं, मुखसे जिसकी वाणी निकल नहीं पा रही है—ओह, यह मूर्त्ति कितनी भयावह किंतु कितनी करुण है ! अभया अपनी कल्पनाओं से आप सिहर उठती है, उसके रोम-रोम काँप उठते हैं, और वह करुण-क्षुब्ध स्वर में बोल उठती है—और सुना नहीं चाहती, बाबूजी, माफ करो, और नहीं सुना चाहती। माँ का इतना वीभत्स रूप हो सकता है, यह इन आँखों न देखा जायगा। ओह, हम कितने मोह-मदिरा से मदिर हो उठे हैं कि आँखें रहते हुए भी हम अंधे हैं, कान रखते हुए भी उसकी करुण-चित्कार हम सुन नहीं पाते, हृदय रख कर भी उसकी व्यथा का अनुभव नहीं कर पा रहे !

डा० स्वरूप अभया की ओर समुत्सुक दृष्टि से देखने लगते हैं, आज उसकी दृष्टि में अभया का रूप दिव्य हो उठता है और स्नेह-गद्‌गद हृदय से यह बोल उठते हैं—सच कहती हो, अभय, आज हम हृदय रख कर भी उसकी व्यथा का अनुभव नहीं कर पा रहे······वह कुछ क्षण तक मौन हो रहते हैं, फिर आप-ही-आप बोल उठते हैं—मगर ये 'युवक हमारे अत्यंत धन्यवाद के पात्र हैं, अभय, जिन्होंने अपनी माता की कल्याण-कामना में अपने आप की बलि देनी चाही है, जिनने अपने खून से माता का शृंगार करना सोचा है! आजादी' सस्ती चीज नहीं, वह खून से ही मिल सकती है, अभय! जो खून स्वतः उबल कर मातृ-चरणों पर बरस पड़ना चाह रहा हो······

अभया पिता के सामने और ठहर न सकी, वह धीरे-धीरे उठी और अपने कमरे की ओर चल पड़ी। डा० स्वरूप, आँखें मूँदे हुए जाने क्या सोच रहे थे, उन्हें अभया के चले जाने की कुछ आहट न मिली, वह आँख मूँदे हुए आप-ही-आप बोल उठे—और आज तुम उन्हीं युवकों-द्वारा आमंत्रित हुई हो, बेटी! यह आमंत्रण······यह आमंत्रण······मंगलमय प्रभु······तुम्हीं जानो, यह आमंत्रण क्या है? इसकी लाज······डा० स्वरूप ने अंतरिक्ष के प्रति अपने दोनों हाथों को जोड़ कर नमस्कार किया।

अभया अपने कमरे में आकर पलंग पर लेट रही, पर लेट कर भी वह अपने कल्पना-लोक की मातृ-मूर्त्ति को अपनी आँखों से ओझल न कर सकी। उसकी दृष्टि, खिड़की से बाहर क्षितिज की ओर लगी है जहाँ वह पा रही है कि बादलों के खंड उड़ते जा रहे हैं, कभी वे एक दूसरे से विलग हो उठते हैं और कभी

इकत्रित होकर घनीभूत हो उठते हैं। खंड बादल का यों कोई अस्तित्व नहीं—कोई मूल्य नहीं, जरा-सी हवा लगी और वह उड़ पड़ा; पर जब यही खंड अपने समूह में मिल जाता है, तब वह अपने आप में महान हो उठता है ''अभया सोचती है'''''समष्टि भी तो आखिर यही है'''''व्यष्टि अपने आप में कितनी लघु है, कितनी नगण्य!! ''''नहीं, वह लघु नहीं रह सकती, नगण्य होकर नहीं रहेगी वह, उसे समष्टि के भीतर आना ही होगा—उसे समष्टि में आना ही चाहिए''''वह समष्टि, जो अपने आप में महान है—अपने आप में सबल''

अभया कुछ ही क्षणों में आप-ही-आप जाने क्या सोच जाती है और सोचते-सोचते ही जाने वह मूर्त्ति कब उसकी आँखों से स्वयँ ओझल हो पड़ती है। अभया अपने आप में एक विलक्षण स्फूर्त्ति का अनुभव करती है—अपने आप में प्रसन्न हो उठती है ''तभी उसे याद आता है कि मृणाल कई दिनों से आई हुई है, उसने मिलने के लिए कहला भेजा है पर वह अब तक मिल नहीं पायी, वह सरल मृणाल अपने मन में क्या कहती होगी''' नहीं, उसे जाना चाहिए ही वहाँ—जहाँ मृणाल है, उसकी छोटी-बहन मृणाल''''''''

अभया आनंदोद्वेग में उठ पड़ती है, आईने के पास पहुँच कर अपनी वेश-भूषाओं से आवृत्त हो कमरे से बाहर निकल पड़ती है''

अभया बहुत दिनों के बाद आज राजाबाबू के आवास की ओर जा रही है। यों अभया इस बीच वहाँ कई बार गई है, पर स्वतः नहीं—बुलाहट होने पर ही गई है और जिस उद्देश्य से

गई है, उसे पूरा कर लौटी है; पर अभया आज स्वतः जा रही है उस ओर, आज उसके लिए सवारी नहीं आई है वहाँ से. सवारी आ-आकर भी जो अभया एक दिन आने में समर्थ न हो सकी थी, वही अभया आज पैदल और अकेली ही हवेली की ओर जा रही है। गाँव की स्त्रियाँ जो जहाँ काम कर रही होती हैं, वहीं से अभया की ओर देख लेती हैं, भीतर-भीतर उसके भाग्य को सराहती—जाने और-और क्या सोच जाती हैं, पर अभया उनकी ओर देखने का अवकाश जैसे पाती नहीं, वह अपने रास्ते पर बढ़ जाती है और इस तरह जब वह भी हवेली के भीतर पहुँच कर अपनी चाची को प्रणाम-निवेदन करती हुई पूछ बैठती है—मृणाल कहाँ है, चाची? उसने याद किया था मुझे, पर मैं आ न पा सकी थी इसके पहले......

—अरी, मृणाल, आ बेटी इधर!—चाची अभया को अपने निकट पाकर उतने ही कुछ क्षण में अस्त-व्यस्त हो पड़कर, पुकारने लगी—बहूरानी कहाँ हो, अरी-देखो, अभया बेटी जो आई है!

और एक ओर से हँसती हुई भाभी आकर कहती है—आज सूरज पच्छिम तो नहीं उगा था, मांजी! मैंने ठीक देखा नहीं!

—आप देखतीं कैसे भाभी?—हँसती हुई अभया कहती है—रात भर जगी होती हैं और उठने समय सोती हैं! ऐसे आदमी उगते हुए सूरज को नहीं देखते ...

—तब तो आपही बता सकती हैं अभया दीदी—भाभी प्रसन्न मुद्रा में बोलती हैं—हाँ, आप ही तो बता सकती हैं जिनकी दृष्टि में रात-दिन का कोई अलग अस्तित्व नहीं!

अभया समझ गई, उसकी भाभी इन कुछ शब्दों में क्या

कह गई ! वह हँस पड़ी और हँसती हुई प्रतिवाद के शब्दों में बोल उठी—यह सत्य नहीं—सत्य का अपलाप करना मात्र है ! रात और दिन का अलग-अलग अस्तित्व है और अलग रहेगा भी, जिस तरह सूर्य अपनी स्थिति और गति में......वह जिस तरह पूरब उगता है, उसी तरह उगता रहेगा। क्यों, चाची जी, यह गलत है ? जरा भाभी जी को समझा दो न ?

चाची हँस पड़ी और हँसती हुई ही बोली—यह तो तुम दोनों के बीच का झगड़ा है, अभया बेटी, इसमें इस बूढ़ी का क्या काम ? मगर मैं तो यही कहा चाहती हूँ कि, जब-तब आ जाया करो, बेटी ! तुम्हारे आने से हम खिल उठते हैं, तुम्हारी बातें हमें बड़ी मीठी लगती हैं ! हमलोग तो कुछ पढ़े नहीं, बेटी, देश-दुनिया का ही ज्ञान हमें कहाँ है...मगर, यह क्या बहूरानी, तुम अभया बेटी को खड़ी ही रखोगी ? लाओ कोई आसन........

इतने में दूसरी ओर से मृणाल उस ओर आती-सी दीखी, अभया की दृष्टि उस ओर जा पड़ी, वह स्वयं उस ओर लपकती हुई हँसते हुए बोल उठी—अरी, कितनी लंबी हो उठी, मृणाल ! अब तो पहचानी भी नहीं जाती........

और अभया उसके पास पहुंच कर आदर से उसके गाल थप-थपाने लगती है। भाभी उसके साथ थी, वह बोल उठी—लंबी बनाने वाली मशीन पर पहुंच कर कोई भी लंबी बन सकती है ! मृणाल बनीं तो क्या, आप भी प्रयोग कर देखिए......

भाभी फिर हँस पड़ी, मगर मृणाल न हँस सकी, वह किंचित् रोष में ही बोली—भाभी चैन से बातें न करने देंगी, अभया बहन ! चलो, मेरे कमरे में चलो........

—मगर, वहाँ भी इन्हें तुम चैन न पहुँचा सकोगी, मृणाल!—भाभी जरा रोष में ही बोली—कहो तो मैं शपथ खाकर कह सकती हूँ! जब इन्हें तुम अपने मिलन-विरह की बातें सुनाओगी तो क्या तुम इनकी छुपी हुई आग को न भड़का दोगी! और हमारी ब्रह्मचारिणी बहन अभया……

—चुप रहो, भाभी—मृणाल अपने भवों पर बल डालकर बोल उठती है—आओ, अभया बहन,—इनकी क्यों सुनतीं!

—नहीं, मृणाल—अभया हँसती हुई बोल उठी—अभी तुम अपनी विद्या में नयी हो, नयी विद्या भयंकरी भी हो सकती है। भाभी इस दिशा में बहुत पुरानी हैं, इनका साथ रहना ठीक होगा। क्यों भाभी, कुछ काम तो नहीं है अभी? आइए-आइए…

—मगर आपकी बहन मृणाल को जो अच्छा न लगेगा! वह खुल कर कैसे आपको अपनी कथा सुनायगी—भाभी हँसती हुई दूसरी ओर को चल देती हैं।

—तो भाभी, मैं भी अब नहीं जाती! कथा अकेली-अकेली सुनने में कुछ मजा नहीं आता—अभया उस ओर देखती हुई बोली—रस-ग्रहण अकेले-अकेले नहीं होता, जो सुनता है, वह चाहता है कि इसे और कोई भी सुनता। तभी मैं कह रही, भाभी, मजा तब आयगा जब आप भी रहेंगी। कुछ यह कहेगी और आप सुनेंगी और कुछ आप कहेंगी—हमलोग सुनेंगे…

—ओह, समझी—अपनी जगह से भाभी बोल उठती है—मगर यह निमंत्रण मृणाल के मुख से ही मैं सुनती तो……

—आओ-आओ भाभी—मृणाल इस बार हँस पड़ती है—निमंत्रण के लिए तुम इतनी क्षुब्ध हो उठोगी—मैं नहीं जानती

थी ! सादर निमंत्रण है—अब तो आओगी ? क्या अब भी नहीं ?

—हाँ, अब जरूर आऊँगी—भाभी हँसी—मगर, अभी आ रही हूँ तुरत, तब तक आप लोग बढ़ें ।

और अभया को लेकर मृणाल अपने कमरे की ओर चल पड़ती है। वह कमरे के भीतर आ पहुँचती है, मृणाल उसे अपने पलंग पर बिठाने के लिए चादर ठीक से सरियाने लगती है, तभी अभया का ध्यान उस ओर जाता है और वह पाती है कि वह चादर मर्सिलाइज्ड नहीं—विशुद्ध धौत खादी की है, जिसके चारो चौड़े हरे कोर पर नीले रंग की पतली दो धारियाँ उसकी शुभ्रता को घेर रही हैं।

अभया की दृष्टि में वह दृश्य नये रूप में आता है, वह उस पर बैठते हुए देखती है कि वहाँ जो भी वस्त्र हैं, सब-के-सब खादी के ही ; यहाँ तक कि टेविल-पोश और पर्दे भी खादी के ही हैं जिन पर खूबसूरत बेल-बूटे की प्रिंट है। अभया विस्मयाविष्ट होकर बोल उठती है—यह क्या मृणाल, खादी से तुझे इतना शौक कब से हो गया ? देखती हूँ, तूने केवल खादी ही नहीं पहन रखी है, बल्कि तेरे काम की जो भी चीजें हैं, सभी खादी की हैं ! क्या दुल्हा बाबू नेशनलिस्ट हैं ?

मृणाल लजाई और लजाती हुई बोली—नेशनलिस्ट ही नहीं, घोर काँग्रेस-कर्मी हैं, महात्मा जी के अनन्य भक्त !

—और अनन्य भक्त ही तो है, अभया वहन, आपकी मृणाल भी, देखती नहीं हैं ? इन पर पति देवता का कितना गाढ़ा रँग चढ़ा है ! जो मृणाल बोले भी न बोलती थीं, अब तो बोलने में झड़ी लगा देती हैं—भाभी बाहर से बोलती हुई आई और

दीवार के एक कोने में जहाँ एक सुंदर-सा फोटो लटक रहा है, उस ओर अभया का ध्यान आकर्षित करती हुई बोल उठी—अभया बहन, इधर जरा देखिए न ! यह जो देवता हैं जिन पर अपने हाथ के कटे सूतों की माला डाली हुई है, यह अपना अनन्य भक्तित्व ही तो दिखा रही है !

—ओह, उधर तो मेरी दृष्टि गई ही नहीं थी,—अभया उस फोटो की ओर बढ़ी और उस पर अपनी तीक्ष्ण किंतु स्नेह-भरी दृष्टि डालती हुई बोली—जभी तो···जभी तो भाभी !······मगर विवाह के समय इनका तो यह रूप न था, भाभी, क्यों मेरा अनुमान गलत तो नहीं ?

—गलत नहीं, ठीक है, अभया बहन—भाभी हँस पड़ी और उसी हँसी के उल्लास में बोल उठी—उस समय उस रूप का सँवारने वाला था ही कहाँ कोई, अभया बहन ! जिस तरह भृंगी किसी भी कीड़े को अपने स्नेहाँचल में छिपा कर उसे तदाकार बना लेती है, आपकी मृणाल ने वही तो किया है ! और जिस तरह मृणाल ने उन्हें अपना रूप देकर उनमें सुषमा भरी है, उसी तरह उस देवता ने अपने गुणों से हमारी मृणाल को अलंकृत भी किया है ! यह रूप और गुण का सम्मिश्रण ही तो मृणाल और आदित्य हैं···कितनी अच्छी जोड़ी बैठी, अभया बहन, देख कर तबीयत ललचा उठती है। मगर एकही बात मेरी समझ में नहीं आती, जिसकी सुकुमारता रेशम के भार को भी सह सकने में असमर्थ थी, उस सुकुमारता पर वे खादी के खुरदरे वस्त्र······

—क्यों, खादी से इतनी वितृष्णा क्यों भाभी—अभया बीच

में ही बात काट कर बोल उठती है—खादी के वस्त्र तो मृणाल को अच्छे भा रहे हैं, भाभी, कुछ बुरे तो नहीं फबते !

—यह क्या कह रहीं अभया बहन !—भाभी हँसती हुई कहती है—आपके मुँह से कम-से-कम यह सुनने की मैं आशा नहीं करती थी !

इसबार मृणाल सोत्सुक अभया की ओर देखते हुए बोली—भाभी को आशा न हो, मगर मैं तो समझती थी, गाँव में खादी के संबंध में औरों का विचार भिन्न हो सकता है, पर अभया बहन ज़रूर इसे अच्छा समझेंगी ! क्यों भाभी, अब तुम्हीं कहो—मेरा विचार क्या गलत था ।

—गलत न भी हो; पर मैं नहीं कह सकती कि अभया बहन तुम्हारी जैसी इसे आप भी ग्रहण करेंगी ! क्यों अभया बहन ?—भाभी बोल कर उत्सुक दृष्टि से अभया की ओर देखने लगी ।

—क्यों नहीं ग्रहण करेंगी ?—मृणाल इसबार बोली—जो स्वयं सुंदर है, जो स्वयं शुभ्र है, जो स्वयं पवित्र है और जो स्वयं आज हमारी स्वाधीनता की प्रतीक है, उसकी ओर किसी भी सहृदय का ध्यान जायगा ही—ध्यान ही केवल नहीं, उसे पाने के लिए, उसे ग्रहण करने के लिए उसका हृदय ललचायगा ही और मैं जानती हूँ कि अभया बहन सहृदया हैं ।

अभया मृणाल के मृदुल वचनों को सुनकर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी । उसे लगा कि, उसके लिए मृणाल की ओर से एक संदेश है जो उसकी आत्मा को स्पंदित कर रहा है, उसे सचेतन कर रहा है । मगर वह पा रही है कि उसके अंगों पर जो वस्त्र हैं, वे खादी के नहीं हैं । उसे लगा कि वह मृणाल की दृष्टि में छोटी

उतरती जा रही है, इतनी छोटी कि जहाँ पहुँच कर अपने को जीवित वह नहीं पा सकती……

—सहृदया हैं, तभी तो आप की शिष्या बनेंगी—भाभी भवों पर बल डालती हुई बोल उठी—मगर मैं नहीं बन सकती! खादी-वादी मुझे पसंद नहीं……

—और इसलिए कि अंगों में कहीं खरोंच न आ जाएँ!—अभया हँसती हुई बोल उठी—यही बात है न, भाभी ?

—यह आप भी समझ रही हैं, मुझे आप से सुनकर प्रसन्नता ही हुई—भाभी ने अभया की ओर देखते हुए कहा—बात कुछ गलत नहीं है! मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि मैं भावुकता की आँधी में बह कर दिखलाने के लिए इसे ग्रहण करूँ और जब वह आँधी दिमाग से हट जाय तब उसे उठाकर किसी भीखमंगे को दे दूँ—यह उस वस्त्र के प्रति अन्याय होगा और वैसा मैं नहीं चाहती।

—अभया दीदी, सुन रही हैं भाभी की बात!—मृणाल हँसती हुई बोली—खादी पहनना भी इनकी दृष्टि में एक भावुकता है!

मगर अभया ने अपनी सम्मति-सूचक कुछ भी बात अपने मुँह से नहीं कही। वह कुछ क्षण तक चुप रही और मुस्करा कर बोल उठी—भाभी को इस तरह दिक न करो मृणाल। यह बाहर-बाहर चाहे जो कह लें; पर इनके भीतर का पता लगाना हम लोगों का काम नहीं!

अभया बोलकर हँस पड़ी, मृणाल भी हँसी और भाभी ने भी उसमें सहयोग दिया, तभी बाहर से छोटी भाभी आकर

बोली—अभया बहन, माँजी बुला रही हैं, चौके में आ बैठी हैं

भाभी हँसती हुई उठ खड़ी हुई और खड़ी होकर बोली—पता पीछे भी लगाया जा सकता है, पर रसोई जो ठंढी पड़ रही है, वह पीछे गर्म तो नहीं की जा सकती ; अभी मजलिस बर्खास्त हो अभया बहन, चलना ही चाहिए हम सब को; नहीं तो माँ जी बिगड़ उठेंगी ··

और सब-की-सब चौके की ओर चल पड़ीं।

उस दिन अभया जब उन लोगों से विदा होकर बाहर निकली तब संध्या हो चुकी थी, इसलिए वह दूसरी जगह घूमने-फिरने को भी नहीं जाकर अपने बँगले की ओर ही लौटी, पर जैसे ही वह अपने हाते में आ लगी, वैसे ही उसने पाया कि कार कुछ क्षण पहले वहाँ आकर लौटी जा रही है।

अभया कुछ क्षण खड़ी कार की ओर देखती रही ; पर वह धूमिल संध्या की गोधूलि में छिप चुकी थी, वह खड़ी न रह सकी, अपनी फुलवारी में आकर घूमने लगी।

एकादश परिच्छेद

अभया यों तो मृणाल के बुलाने पर ही उसके घर गई थी, पर उसका उद्देश्य और कुछ था, जिसे वह वहाँ जाकर व्यक्त न कर पा सकी। यद्यपि वहाँ का वातावरण ठीक उसके मनोनुकूल ही था तथापि वह अपने अनुकूल वातावरण से अपने उद्देश्य पर नहीं पहुँच पायी ; फिर भी मृणाल से मिल कर उसे कुछ कम प्रसन्नता न हुई। मृणाल इन्हीं कुछ दिनों में कुछ-की-कुछ हो जा सकती है, अभया यह अनुमान तक न कर सकी थी ; पर आज उसने जिस मृणाल को देखा, वह उसके हृदय के बहुत समीप थी, आज उसने उस मृणाल में पाया कि उसमें आभिजात्य वंश की संकीर्णता न रह कर वह आकाश-सी उदार और लता-सी नमनीय हो उठी है। यह उदारता, यह नमनीयता कहाँ से आई और किस संसर्ग से आई, यह भी उसकी दृष्टि से छिपा हुआ नहीं रह गया ! वह उसे देख कर प्रसन्न हो उठी और उसी प्रसन्नता में वह जो कुछ कहा चाहती थी, वह कह न सकी—भूल गई अपने आप को और भूली-भूली ही वह वहाँ से चल पड़ी……

पर वही अभया जब जाग्रत महिला-सम्मेलन में सम्मिलित होने को सभा में आ पहुँची है तो पाती है कि महिलाओं का एक समूह है जो अपने आप में न उतना विस्तीर्ण है और न उतना

संकीर्ण—एक मध्य अवस्था में है, उस समूह में वह पाती है कि अधिकांश महिलाएँ उसकी अपरिचिता ही हैं, किंतु जो परिचिता हैं उनकी ओर देख कर वह विश्वास नहीं कर पा रही है कि वे पर्दे से बाहर सभा के खुले प्रांगण में किस तरह आ लगीं; पर उसे आश्चर्य की सीमा न रही जब उसमें पाया कि जो पर्दे में सदा से रहती आईं, वे तो आ चुकी हैं और मृणाल, जो आज नया संदेश लेकर उस गाँव में आ चुकी है, क्यों नहीं यहाँ आ पायी ! आखिर वह क्यों नहीं आ सकी—यह कौन-सा रहस्य है···वह कुछ क्षण तक इसी पर सोचती रही।

मगर यह रहस्य रहस्य बन कर न रह पाया जब अभया ने पाया कि, सभानेतृ के रूप में आसन-ग्रहण कर चुकने के बाद अचानक जो युवती उसे माला पहना रही है, वह तो और कोई नहीं, मृणाल ही हैं और वह मृणाल जब मंत्रिणी की हैसियत से अपने सभानेतृ का परिचय देने के लिए मंच पर आ खड़ी होती है और भरे हुए फूल की तरह उस के मुँह से वाणी झड़ पड़ने लगती तब अभया का उत्साह उमंगों में परिपूर्ण हो उठता है, उसमें जो एक उदासीनता थी, वह विलुप्त हो जाती है, उसे मृणाल पर अभिमान हो उठता है, उसकी ओर से प्रेरणा की सरिता जैसे बहती हुई आकर उसे आप्यायित कर देती है, वह मुग्ध हो उठती है और मुग्ध दृष्टि से मृणाल की ओर देखने लगती है······

मृणाल थोड़े में बहुत कुछ कह जाती है पर बहुत-कुछ कह चुकने पर उसे लगता है कि वह कुछ कह नहीं पायी, जो उसे कहना चाहिए था, वह कह नहीं सकी; पर उसके लिए उसे खेद नहीं है। वह मंच से उतर पड़ती है, अब जो मंच पर आता

है, वह और कोई नहीं—वह कांग्रेस-कार्यकर्त्ता है—नायक है, जिसे सब कोई व्रजेंद्र कहते हैं।

और वह व्रजेंद्र, मंत्रिणी मृणाल ने जिस दिशा की ओर सभा को संकेत किया है, उसका समर्थन करते हुए अपने व्याख्यान की ओर अग्रसर होता है, तब लगता है कि जैसे सभा में पूर्ण निस्तब्धता छागई है, सूई के गिरने तक का शब्द जैसे सुन पड़े, सभी की दृष्टि विख्याता की ओर जा लगी है। इतना सुंदर सारगर्भित व्याख्यान अभया ने कभी सुना हो—उसे याद नहीं। वह जान नहीं पा सकी कि उसका नायक—व्रजेंद्र—इतना प्रभावशाली, इतना गवेषणा-पूर्ण और इतना निर्भीक भाषण कर सकता है! और उस भाषण में वह पा रही है कि वह उसके मुंह की भाषा नहीं—हृदय के सच्चे उद्गार हैं जो अपने उद्गम-स्थान को विदीर्ण कर फूट निकले हैं। श्रोताओं की ओर से करतल-ध्वनि क्षण-क्षण में मुखरित हो उठती है और उस मुखरित ध्वनि के भीतर व्रजेंद्र अपनी दिशा की ओर बढ़ निकलता है......

इसके बाद एक-दो भाषण और होते हैं, जो समयानुकूल और सुंदर ही कहे जा सकते हैं।

अब सभानेतृ की बारी है। पर, वह अपने आपमें कुंठा का अनुभव कर रही है, वह समझ नहीं पाती कि अब वह अपने भाषण को कहाँ से प्रारंभ करे और किस तरह उसका अंत हो! फिर भी उसे तो बोलना ही होगा, उसे भाषण देना ही है। सब की दृष्टि उस ओर जा लगी है, पर वह सिर झुकाए पड़ी है, वह कुछ समझ नहीं पा रही है; फिर भी जितना ही उससे विलंब हो रहा है, वह विलंब स्वयं उसे काँटे की तरह चुभ रहा है।

अब वह उस काँटे को निकाल कर ही दम लेगी। वह कोमल से कठोर हो उठती है, उसी अवस्था में वह उठ खड़ी होती है और बहुत ही धीमे स्वर में सभा को संबोधित कर अपना भाषण आरंभ कर देती है………

अभया वाचाल है सही, प्रखर और प्रगल्भ भी है सही, पर रंग-मंच पर उसकी वाचालता उसका साथ नहीं दे रही; वह वक्र और सरल और सरल और वक्र—इस तरह टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियों से जैसे गुजर रही है, पर गुजरती जा रही है, रुक नहीं रही, गिर नहीं रही—उसके लिए यही बहुत है—आगे की ओर बढ़ते जाना ही उसका लक्ष्य है और इस तरह धीरे-धीरे अपनी गति में चल कर अपने लक्ष्य तक पहुँच पाती है और दीर्घ-निश्वास छोड़ कर अपना आसन ग्रहण करती है। उस समय जो करतल ध्वनि होती है, वह अभूतपूर्व है और अभूतपूर्व रूप में कुछ क्षण तक गूँजती रह जाती है।

और सब के अंत में— जब कि गूँज मिल चुकती है, जो खड़ी होती हैं, वह है—निर्मला देवी—जो मृणाल और अभया की भाभी है। उसका छोटा-सा काम है और वह काम है, धन्य-वाद-ज्ञापन का।

और धन्यवाद-ज्ञापन निर्मला ने जिस रूप में किया है, उसका अनुमान न मृणाल कर सकी था और न अभया ही। निर्मला ने कभी खुल कर मृणाल को देश-सेविका के रूप में देख कर उसकी सराहना न की थी, जब कभी वह उससे बोली भी तो वह परिहास और व्यंग के स्वर में ही बोली; पर वही

निर्मला सभा-स्थल में आ बैठी है जहाँ वह मृणाल से ही नहीं, व्रजेंद्र, अभया और दो-एक वक्ताओं से भी नारी-जागरण के उद्बोधक शब्द सुन चुकी है, तब वह अपनी स्वीकृति की सूचना अपने धन्यवाद के शब्दों-द्वारा देते हुए अधिक-अधिक उल्लसित हो उठी है और उसके उल्लास से नारी-मंडल में एक चेतना की लहर दौड़ पड़ी है। इसका कारण, उसका व्यक्तित्व है वह उस गाँव की जमींदार बहूरानी है, एक आभिजात्य वंश की समुज्वल ज्योति, जिसकी रश्मि उस आस-पास के भू-भाग पर अहर्निश पड़ी है और पड़ती रहेगी। वास्तव में, कुछ ही क्षण के अनंतर उल्लास की वन्या इतनी तीव्र गति में प्रवाहित हो उठेगी—वह कल्पना के परे की वस्तु थी। इससे अभया आनंद में विभोर हो उठी और सभा का काम समाप्त होते ही वह निर्मला के पास दौड़ पड़ी और उसे अपने आलिंगन में बाँधती हुई बोल उठी—जिस भाभी को मैं अब तक समझ न पायी थी, वह खुल कर मेरा हाथ बटायगी—इसकी मुझे बिलकुल आशा न थी भाभी! मगर मैं आज नहीं कह सकती कि आपका इस तरह मैदान में आना मेरे पक्ष में कितना सुंदर हुआ है—इसे मैं भाषा-द्वारा व्यक्त नहीं कर पाती। मैंने जिस काम को डरते-डरते हाथ में लेना चाहा था, उसे आप इतनी निर्भय होकर स्वीकार करेंगी—यह कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं।

—मगर सौभाग्य तो तब समझूँगी अभया बहन, जब आप की ओर से हमें सदा प्रोत्साहन मिलता रहेगा—निर्मला अपनी निर्मल हँसी बिखेरती हुई बोल उठी—आपके भाई जी को मैं समझा लूँगी, उनकी ओर से मुझे भय नहीं है, पर आप अपने

चाचाजी को संभालने का बीड़ा जब तक न लेंगी·······

—ओह, समझ गई, भाभी, आप क्या कहा चाहती हैं—अभया बीच ही में बात काट कर बोली—पर उनसे भय खाने की बात नहीं, उनका भार मुझ पर रहा। आप चाचाजी को नहीं जानतीं। बाहर से वे जितने ही कठोर हैं, भीतर-भीतर वे उतने ही कोमल भी हैं। मैं जानती हूँ कि वे पुराने विचारों के समर्थक हैं—यह उनका दोष नहीं, दोष हमारे समाज का है; पर वे गाँव के सर्वे-सर्वा हैं—वे अनाचार को नहीं देख सकते, पर सदाचार को समझने की उनमें बुद्धि है, उनमें कृपणता नहीं, उदारता है! आप जानती नहीं, मैं जानती हूँ कि मेरे रहन-सहन पर जहाँ गाँव के कुछ लोग खार खाए पड़े रहते हैं, वही वे मेरी प्रशंसा में जमीन-आसमान को एक किए रहते हैं। यह उनकी उदारता नहीं तो और क्या है? यह उनकी सूक्ष्म-दर्शिता नहीं तो और क्या है?

मृणाल उस समय वहाँ न थी, वह जहाँ थी, उस ओर इन सबों का ध्यान भी न था; पर वही मृणाल जब उस नारी-मंडल में आकर कहती है—जलपान का भी आयोजन है यहाँ, चलिए, सब प्रबंध ठीक है, तब न केवल निर्मला ही चौंकी, वरन अभया भी उसकी ओर चंचल होकर देखती रही और वहाँ की अन्य महिलाएँ भी।

सभा-सोसाइटी में आना ही जहाँ एक बिडंबना हो, वहाँ जलपान का रस्म भी पूरा करना होगा—यह कम-से-कम ग्रामीण वातावरण के लिए एक समस्या थी। अभया जन्म से ही शहरों में रह आई है, इसलिए उसे तो अपवाद ही समझना चाहिए;

पर वे महिलाएँ जो, दिहातों में ही जन्मीं, पलीं, बढ़ीं और अपनी दुनियादारी में आलगी हैं, अवश्य अधिक चंचल हो उठीं और उसमें से कुछ उदासीन-सी होकर अपने घर की ओर मुड़ीं; पर निर्मला को स्थिति का ज्ञान है, वह समझ रही है कि, इस चंचलता का कारण क्या है ? मृणाल अपने-आप में समझ नहीं रही है कि यज्ञ की पूर्णाहूति किस तरह सुंदर रूप में सम्पन्न हो सकेगी। अभया निर्मला की ओर देख रही है और निर्मला अन्य महिलाओं की ओर और मृणाल इन-दोनों की ओर·····

मगर निर्मला सावधान है और सावधान होकर ही मृणाल की आकांक्षा और उद्योग को सफल बनाना चाहती है, तभी वह अन्य महिलाओं को देख कर कह उठती है—चलो-चलो, बहन, थोड़ा जलपान कर लेनेमें कौन-सी बुराई है। आज हमलोग जिस काम की ओर झुकी हैं, वह तो हमारी सम्मिलित साधना से ही पूरा हो सकता है ! पर उस साधना में जब तक हमलोग सरसता उत्पन्न न कर सकेंगी तब तक उस कठोर व्रत को हम लोग निवाह न सकेंगी। क्योंकि हम जन्मतः कठोर-कर्मा नहीं हैं, हमारी नारी-जाति सरसता के लिए उत्पन्न की गई है, नहीं तो यह दुनिया आनंद की न होकर एक भार बन जाय·····और उसी सरसता के लिए तो यह जलपान का आयोजन है—जिसकी आयोजक और कोई नहीं, हमारी मृणाल बहन है, फिर उसकी साध·····

इस बार सभी की दृष्टि एक दूसरे की ओर गई और इस तरह सब-की-सब सभास्थल से चल कर एक चौपाल में आई, जहाँ वह आयोजन किया गया है।

जलपान का आयोजन तो एक निमित्त मात्र है, असल तो यह है कि उन नारियों के भीतर चिरकाल-संचित जो एक संकोच, एक लघुता, एक अहं और सजातीय द्वेष है, उसका उन्मूलन हो, पारस्परिक मैत्री का बंधन सबल हो, हँसी-परिहास के बीच दूसरे को स्पर्श करने का अवसर मिले और जहाँ बैठ कर प्रस्तावित कार्यों को किस तरह बढ़ाया जाय—इस पर विचार विनिमय हो। इस ओर नायक—ब्रजेंद्र का संकेत और मृणाल का आयोजन है, जिस यज्ञ की होता वह स्वयं है। उसे अपने पति के साथ कुछ स्थानों पर जानेका अवसर मिल चुका है और उस अवसर से वह अनुभव प्राप्त कर सकी है, आज उसी अनुभव का प्रसाद अपनी अन्य बहनों के बीच बाँटने को वह प्रस्तुत है।

परंतु चतुर खिलाड़ी की तरह जिसने इतना गोरखधंधा पसार रखा है, वह अलिप्त भाव से पास रह कर भी दूर-दूर रह रहा है। वह जानता है, शिकार किस तरह किया जाता है, जाल किस तरह बिखेरा जाता है, कौन उसका सहायक हो सकता है, किससे उसकी हानि हो सकती है, उसकी दृष्टि तीव्र है, उसमें दूर-दर्शिता है, उसमें सतह तक पहुँचने की क्षमता है। वह केवल चक्कर ही नहीं लगाता, उसकी दृष्टि और कहीं होती है। और जहाँ जाकर उसकी आकांक्षा को बल मिलता है और जहाँ उसकी आकांक्षा फलवती दिख पड़ती है, उसे अपनी ओर मोड़ने में प्रयत्न-शील हो उठता है। वह अभया को इसी तरह पा सका है, इसी तरह वह उसे अपनी ओर खींच सका है। अवश्य अवसर का भी इसमें कुछ कम हाथ नहीं; पर वह उसे अनायास ही वह अवसर मिल सका है, जब उसे मालूम हो सका कि है

उस गाँव के प्रभावशाली पुरुष जो राजा बाबू हैं, उनकी कन्या मृणाल स्वयं एक बड़े नेता की पत्नी और सच्ची देश-सेविका है,—वह गाँव में आई है, उससे उसका कार्य सध सकता है, उसका प्रभाव उसकी साधना के लिए अत्यंत बलशाली हो सकता है। वह उससे मिलता है, अपना प्रस्ताव उसे कह सुनाता और उसकी सहायता के लिए उससे निवेदन करता है, मृणाल उसके निवेदन पर अपना हर्ष प्रकट करती है; पर मृणाल जानती है कि, वह अपने पित्रालय में स्थायी रूप से रहने को नहीं आई है, तभी उसका ध्यान अभया की ओर जाता है, जिसमें वह पाती है कि वही इस कर्मोद्यम के लिए अग्रणी हो सकती है, उसमें योग्यता के साथ-साथ बुद्धि की प्रखरता और प्रभाव में सबलता भी है और मृणाल उस ओर उस युवक का ध्यान आकर्षित करता है और इस तरह वह युवक अभया की ओर उन्मुख होता है और इस तरह उसे सभा-नेतृत्व के लिए आमंत्रित करना वह नहीं भूलता......

मगर मृणाल इतना ही कर निश्चिंत हो नहीं बैठती, उसका प्रयत्न दूसरी दिशा की ओर मुड़ता है, वह दिशा इसकी भाभी को ओर संकेत करती है; पर उसकी भाभी कच्ची धातु की बनी नहीं है। जितना ही मृणाल प्रयत्न करती है, उतनी ही वह बनायी जाती है, उतनी ही उसकी हँसी उड़ाई जाती है, उतना ही उसे परेशान किया जाता है। मृणाल क्षुब्ध हो उठती है, पर क्षुब्ध होकर भी वह यह नहीं भूलती कि इस उद्योग में अपनी अभया बहन से याचना कर देखे और उसी याचना से प्रेरित होकर उसे मिल जाने के लिए संवाद भेजती है, संवाद अभया

तक जाता है, वह उस ओर चल पड़ती है, उसके हृदय में कुछ है जिसे वह मृणाल से कहना चाहती है। एक ही समय दोनों के हृदयों में करीब-करीब एक ही भाव का स्फुरण होता है, उसी उद्देश्य से वे दोनों एक दूसरे से मिलती भी हैं; पर वहाँ का वातावरण स्वयँ इतना मुखर है कि एक दूसरे पर अपने भाव को व्यक्त नहीं कर पाती, दोनों के उद्देश्य अपनी-अपनी जगह पर शिथिल हो पड़ते हैं, कहने की इच्छा रख कर भी एक दूसरे से कह नहीं पाती और इस तरह दोनों एक दूसरे से उस दिन विदा ग्रहण करती हैं......

मगर जिसे वे दोनों एक-दूसरे से व्यक्त नहीं कर पातीं, उसे वह मुग्ध-प्रखर वातावरण स्वयँ विहँसता हुआ कह सुनाता है, उसके कथन को मृणाल और अभया ही केवल हृदयंगम नहीं करतीं वरन् निर्मला पर उसका जादू काम कर जाता है जिसे वह तब तक समझ नहीं पाती जब तक वह सभास्थल पर आकर उस जादूगर के मंत्र को अपने कानों नहीं सुन लेती। आज इसीलिए वह जादूगर प्रसन्न है, उसकी दृष्टि में आगत भविष्य की तंद्रिल-मदिर आशा है, जहाँ उसकी सफल आकांक्षा उसकी दृष्टि में नृत्य करती-सी दीख रही है।

और यह जादूगर—स्वयँ नायक ब्रजेंद्र है। उसने जादू की लकड़ी फेर दी है, उसने अमोघ मंत्र फूँक दिया है और दूर खड़ा देख रहा है कि उसका जादू किस तरह सिर पर चढ़ कर बोल रहा है......

मृणाल का जलपान-आयोजन सफलता-पूर्वक संपन्न हो चुका है और सभी हँसती-मुस्कराती हुई वहाँ से विदा लेकर अपने-

अपने घर की ओर चल पड़ी हैं। रुक गई हैं वहाँ अभया, मृणाल और निर्मला देवी।

अब व्रजेंद्र भी निश्चितता की एक साँस लेकर इन तीनों से आ मिला है और मिलते ही वह जिसकी ओर मुड़ा है, वह है निर्मला देवी और उसे संबोधित कर कह उठता है—मैं समझ नहीं पाता कि किस तरह मैं आपके प्रति धन्यवाद प्रकट करूँ! आपने अपने धन्यवाद में अपनी सुरुचि और सहृदयता का जो परिचय दिया है, वह आपकी महानता प्रकट करने के लिए पर्याप्त है! आप से मुझे ऐसी आशा न थी······

—आपको आशा थी व्रजेंद्र बाबू—मृणाल हँसती हुई बोल उठी—मगर मुझे तो मुतलक इनसे यह आशा न थी! जो रात-दिन मुझे चिढ़ाती रहीं, जो रात-दिन मुझ पर फब्तियाँ कसती रहीं, वह आप-से-आप और इतनी तीव्रता में, रास्ते पर आ लगेंगी, इसपर किसी को किस तरह विश्वास हो सकता है! किसी को हो भी जाय, मगर मैं तो कभी आशा न करती थी। यह सब आपका ही प्रभाव है न, व्रजेंद्र बाबू!

—नहीं-नहीं, ऐसा न कहें, मृणाल!—व्रजेंद्र बाबू जरा संकोच लिए हुए ही बोले—प्रभाव व्यक्ति में नहीं, वातावरण में है। जो व्यक्ति नहीं कर पाता, वह वातावरण कर दिखाता है। मैं जानता था कि जहाँ आप खुद आ गई हैं, उस घर में वातावरण की सृष्टि होकर ही रहेगी, वहाँ निर्मला देवी उस वातावरण से बची नहीं रह सकती······और आप अभी उनकी फब्तियाँ कसने की बात कह रही थीं न! यह तो आपका सौभाग्य है कि आपकी निर्मला जैसी सहृदया भाभी मिली है! आप दोनों

का मधुर संबंध ही ऐसा है कि 'ना' को 'हाँ' में परिणत कर देता है !

व्रजेंद्र बोल कर हँस उठा, निर्मला देवी भी रस-ग्रहण कर हँस उठी और हंसती हुई ही बोली—जिस मधुर-संबंध का परिणाम मृणाल के अंग-प्रत्यंगों पर प्रत्यक्ष आवृत हो उठा है, वह मधुर-संबंध ही धन्यवाद-भाजन हो सकता है, व्रजेंद्र बाबू—यह क्यों नहीं कहते ? क्यों मृणाल, वह धन्यवाद का पात्र नहीं है ?

मृणाल हँस न सकी, उसके ओठ स्पंदित होकर रह गए, वह बोल भी न सकी। व्रजेंद्र समझ गया कि निर्मला देवी का इशारा किस ओर है, वह हँस पड़ा और हँस कर ही बोला—अवश्य वह धन्यवाद का पात्र है, निर्मला देवी—और मैं कह सकता हूँ कि इस दिशा में मृणाल अत्यंत ही सौभाग्यमयी है…

पर अभया चुप है, वह क्या सोच रही है, वह खुद नहीं समझ रही है।

—मगर मृणाल तो अपने को सौभाग्यवती तब समझेगी जब मेरी भाभी इस दिशा में आगे बढ़कर हमें दिखलायंगी कि वह कहाँ तक क्या-कुछ कर सकती हैं। मृणाल बोल कर निर्मला की ओर देखने लगी। उसकी दृष्टि में स्पष्ट एक व्यंग था, जिसे अपनी भाभी के प्रति व्यक्त कर रही है… … …

निर्मला सजग है और सजग होकर ही मुस्कराती हुई बोल उठती है—निर्मला देवी अपने आप में कुछ नहीं है—यह निर्मला देवी को छोड़ कर और कोई नहीं जानती; मगर वह इतना अवश्य और जोर देकर कह सकती है कि उसकी संचालिका अभया बहन का सहयोग यदि उसे मिल सका तो अवश्य वह

कुछ कर दिखा सकती है! क्यों, अभया बहन, आप तो कुछ कहतीं नहीं? क्या सोच रही हैं आप? मेरा खयाल कुछ गलत है?

—गलत-सही मैं कुछ नहीं जानती—अभया जरा खिंची-सी ही बोल उठती है—सहयोग ही आप चाहेंगी तो वह अभया से मिल जायगा।

—बस, इससे अधिक और क्या चाहिए, अभया बहन!—निर्मला बोल कर उसकी ओर देखने लगी, फिर ब्रजेंद्र बाबू की ओर देखकर बोली—अभया बहन का अग्रणी होना स्वयं इस बात का परिणाम है कि जिस दीक्षा में आज हमारी अन्य बहनें दीक्षित हुई हैं, वह सफल होकर ही रहेगी। मैं तो एक कारण मात्र हूंगी। अवश्य अभया बहन पर ही यह गुरुतर भार है और मुझे विश्वास है, जैसा कि आपका भी विचार होगा—आप से हमारी नारी-समिति में जागरण की एक लहर बह कर ही रहेगी।

—अवश्य-अवश्य!—ब्रजेंद्र अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने वाली हँसी में बोल उठा।

सब-के-सब उठ खड़े हुए और ब्रजेंद्र के प्रति नमस्कार-ज्ञापन कर वे तीनों गाड़ी पर आ बैठीं।

द्वादश परिच्छेद

व्रजेंद्र मात्र संचालक है और मृणाल प्रेरक—वह मृणाल जो अपने उज्ज्वल व्यक्तित्व से वातावरण को प्रस्तुत कर सकी है। वह मात्र प्रेरक बन कर ही आई थी, और प्रेरणा देकर अपनी सखी-सहेलियों से विदा-ग्रहण कर अपने घर को चली गई है—रह गई हैं निर्मला भाभी और अभया, जिन्हें अपनी जगह पर रहना है, और रह कर और कामों के साथ नारी-जागरण की ओर जिन्हें बढ़ना भी है।

मृणाल जब तक गाँव में रही, वह स्वयं आगे बढ़ी, अभया ने भी साथ दिया, वे मिल कर घर-घर घूमीं, घर-घर में चर्खे का प्रचार किया, घर-घर में इसकी ओर प्रवृत्ति डाली, कातना सिखाया, रुचि उत्पन्न की, उपयोगिता को समझाया। केवल इतना ही नहीं, पर्दे के भीतर जाकर उन दोनों ने प्रकाश की ओर उनका ध्यान आकर्षित किया, स्वस्थ्यता के साधारण नियम बतलाए और उन्हें कार्य में वर्त्तना सिखलाया। जिनकी रुचि पढ़ने-लिखने की ओर गई, उन्हें उस ओर मोड़ा, जिनकी रुचि शिल्प और कला की ओर गई, उनके लिए उस तरह की शिक्षा की व्यवस्था की। इस तरह ये दोनों सर्वांतःकरण से काम में लगी रहीं।

मृणाल विदा ले चुकी है, पर उसके जाने पर उससे प्रेरित

कामों में शिथिलता नहीं है। अभया उसे सँभाल रही है। वह जानती है कि काम को किस तरह करना चाहिए, किस तरह उसमें गति डालनी चाहिए—किस तरह उस ओर सुरुचि जग सकती है और किस तरह उस कार्य में संपन्नता आ सकती है। अभया जब अपने कर्मोद्यम में थक जाती है तब वह दौड़ पड़ती है अपनी भाभी निर्मला के पास और पहुँच कर सुनाती है उसे उल्टी-सीधी, इस तरह उसे परेशान कर डालती है। निर्मला भी उसकी उल्टी-सीधी समझती है और समझती है कि अभया का उल्टा-सीधा कितना उसके हृदय के निकट की वस्तु है! वह प्रसन्न ही होती है और प्रसन्न-मुद्रा में ही कह उठती है—जो भी कहो, अभया बहन, तुम्हारी बातें सर-आँखों पर हैं; पर मैं सारा वक्त दे भी नहीं सकती! तुम देखती हो कि······

और निर्मला जिस ओर देखने के लिए अभया से निवेदन करती है, अभया जब उस स्थल पर पहुँच कर देख पाती है तब अपनी भवों पर बल डाल कर वह बोल उठती है—तुमने बहाने का अच्छा जरिया निकाल रखा है! क्यों अपने आप को रोक न सकीं और कुछ दिनों तक? सेवा और भोग—दो विरुद्ध दिशा में जाने का प्रयास······

निर्मला उसकी बातों पर खिलखिलाकर हँस पड़ती है और हँसती हुई ही बोल उठती है—समझीं-समझीं, अभया बहन! मगर यह तुम्हारी भूल है, सेवा और भोग अपने-अपने स्थान पर रहेंगे ही, जीवन में दोनों अपेक्षित हैं! एक के बिना दूसरा नीरस है, मूल्य-हीन है······

—ऐसा तो तुम कहोगी ही—अभया किंचित् रोष-सने वचनों

में बोलती है—जो स्वयँ भोग में डूबी हुई है, वह भोग की सराहना कैसे न करेगी !

—मैं सराहना के खयाल से नहीं कहती, अभया बहन—निर्मला इस बार सावधान होकर बोली—जहाँ केवल कर्म-ही-कर्म है, भोग नहीं है, वह कर्म स्वयँ अपने आप में, एक दिन वितृष्णा उत्पन्न करने का कारण हो उठता है और जहाँ भोग ही प्रधान है और कर्म गौण हो उठा है, वह भोग स्वस्थ्यता का चिह्न नहीं—मृत्यु की ओर का आह्वान है। पर, जिस तरह जीवन में कर्म की प्रधानता है, भोग भी अपने स्थान पर वही प्रधानता रखता है। अपने स्थान पर दोनों ठीक हैं, दोनों जीवन के लिए आवश्यक हैं ! पर हमें यह न भूलना चाहिए कि हम एकांगी न हो पड़ें, एकांगी होकर ही किसी की महत्ता को न समझ बैठें और किसी को बिलकुल त्याज्य न समझ लें। न एक ग्रहणीय है और न दूसरा त्याज्य ! दोनों का समत्व चाहिए—दोनों सम अवस्था में ग्रहणीय हैं और उसी अवस्था में त्याज्य भी ! और जहाँ समत्व नहीं हैं, ठीक तुला की तरह दोनों को सम भाव में लाकर नहीं वर्त्तता, मैं कहूँगी कि उससे ग़लती हो रही है, वह भूल रहा है और उसकी वह भूल एक दिन उसे धोखा दे सकती है······

निर्मला विषय की गुरुता की ओर स्वभावतः दौड़ पड़ी थी, पर वह कुछही आगे बढ़कर तुरत मुड़ चली और मुड़ते-मुड़ते ही वह हंसकर बोल उठी—आज कर्म-प्रवाह में जिस तरह तुम बही जा रही हो बहन, यह बहाव तब तक है जब तक तुम्हें भोग का साधन उपलब्ध नहीं हो जाता। और जिस दिन तुम्हारे सामने

वह साधन प्राप्य होगा उस दिन तुम स्वयं पाओगी कि मेरे कथन में कितना तथ्य है……

अभया समझ गई कि उसकी भाभी किस ओर ले जाना चाहती है, वह अपने आप में चौंकी; पर तुरत अपने को संयत कर कुछ झुंझलाती हुई ही बोली—रखो तथ्य अपने पास ही, भाभी, लाभ ही होगा। चोर के मुंह से धर्म की चर्चा शोभा नहीं देती…

—बात कुछ गलत नहीं कही, अभया बहन—निर्मला हंसती हुई बोली—तथ्य तो, खैर, मैं अपने पास ही रख लेती हूं; मगर देखूंगी एक दिन, यदि देख सकी तो उस दिन पूछूँगी कि आप क्या थीं और अभी आप क्या हैं!

—ठीक, है वही रहने दो भाभी—इस बार अभया मुस्करायी और फिर गंभीर होकर बोली—तो क्या तुम बिलकुल बाहर नहीं जा सकतीं, भाभी? कुछ भी तो साथ दे सकतीं जब तक तुम आसानी से साथ दे सकती हो। यों अकेली कर तो लेती हूँ, मगर देखती हो, यह काम क्या अकेले का हो सकता है?

निर्मला उसकी परेशानी को समझती है, वह यह भी जानती है कि उसके काम में हाथ बटाना ही चाहिए; पर उसके सामने नारी-सुलभ संकोच आ खड़ा होता है जिसे टाल कर बाहर निकालने की वह राह बना नहीं पाती और फिर भी वह बोल उठती है—अधिक की आशा तो न करो अभया बहन, माँजी अब मुझे इस तरह स्वतंत्र घूमने देना नहीं चाहतीं, इसलिए मैं कुछ निकट के घरों में जाकर काम-काज देख आ सकती हूँ और कुछ बहनों को अपने घर बुलाकर सीना-पीरोना या पढ़ाई का काम चला सकती हूँ। क्यों ठीक होगा न?

अभया स्थिति की अनुकूलता समझ कर बोल उठती है—इतना भी यदि तुम अपने हाथों संभाल सको तो यह बहुत बड़ा काम होगा, भाभी। बाकी काम तो मैं आपही संभाल लेने के लिए काफी हूँ।

—तो मुझे मंजूर है, अभया बहन—निर्मला बोल उठी—इतने के लिए अब तुम्हें कष्ट न उठाना पड़ेगा।

अभया प्रसन्न हो उठती है, उसके सामने गुरुतर काम का बोझ स्वयं हलका प्रतीत होने लगता है, वह वहाँ से विदा लेकर बाहर निकल जाती है।

अभया की प्रकृति सदैव दुस्साहसिक रही है। जब तक वह काम को समझ नहीं लेती तब तक वह उलझी-उलझी-सी रहती है पर जैसे ही उसे प्रकाश की कुछ भी रेखा दीख पड़ी कि वह मैदान में कूद पड़ती है और अनवरनत गति में वह अपनी दिशा में चल पड़ती है। वह सदैव से ऐसा ही करती आ रही है और आगे भी उससे ऐसी ही आशा की जा सकती है।

अभया के अनवरत उद्योग और परिश्रम से आसपास के गाँवों में गृह-शिल्प और शिक्षा में एक जागरण आ गया है। उस जागरण में अभया पाती है कि जो नारी एक दिन अंध-कूप में पड़ी-पड़ी अपने दुर्वह जीवन को कोस रही थी, आज जब वह अपनी ओर देखती है और देखती है, उसकी संचालिका अभया की ओर, तब वह आनंद में पुलकित होकर बोल उठती है—तुम्हारा ऋण कुछ सामान्य नहीं है. अभया बहन ! तुम न होतीं तो······

—नहीं, सो गलत है, बहन—अभया अपनी आत्म-प्रशंसा से जरा खिझी-खिझी-सी ही कह उठती है—मैं तो एक निमित्त

हो सकती हूँ ; पर असल तो यह है कि जीवन में कुछ क्षण ऐसे भी आते हैं जो मनुष्य में चेतना भर जाते हैं। काम करने की आकांक्षा गुप्त रूप से सब में छिपी पड़ी है, वह बीज रूप में सर्वत्र छिपी पड़ी है, केवल अनुकूल अवसर की अपेक्षा रहती है और जैसे ही वह अवसर आन पहुँचता है, जैसे ही ठंढी वयार का एक झोंका उसे स्पर्श कर जाता है, वह बीज आप-से-आप अंकुरित हो उठती है, फिर यदि इसी तरह अनुकूल अवसर वह पाती रही तो उस अंकुर को पनपते और बढ़ते देर नहीं लगती। यहाँ भी यही बात कही जा सकती है। फिर ऋण-उण की बात कैसी, बहन ?

—तुम जो कह लो—वह नारी बोल उठती है—हमलोग देहात-गंवारिन, तुम्हारी इन बातों को क्या जानें! हम तो यही जानती हैं कि जो काम हमलोगों के लिए किसी दिन पहाड़-जैसा था, वह इतना आसान भी हो सकता है—यह सब तुम्हारी कृपा ही तो है, अभया बहन! फिर हमलोग गंवारिन होकर भी इतना तो समझती ही हैं कि तुम्हारा ऋण हमलोगों पर कितना ज्यादा है!

अभया इस वार प्रतिवाद न कर सकी, उसे भीतर-ही-भीतर प्रसन्नता हो रही थी कि ये दिहात की स्त्रियाँ होकर भी हृदय की कितनी साफ हैं! जहाँ वड़प्पन नाम की चीज छू-तक नहीं गई है, जो श्रद्धा करना जानती हैं—सम्मान करना जानती हैं······

और उन्हीं नारियों-द्वारा जब कभी, अवसर-अनवसर, कुछ जलपान या भोजन कर लेने के लिए वह आमंत्रित की जाती है, तब अभया अपने संकोच में फँसी-जैसी रह नहीं पाती, वह हृदय

खोलकर उस आमंत्रण को स्वीकार करती है, उस समय जलपान या भोजन के लिए जो वस्तु उसके सामने आती है, वह साधारण होकर भी उसे अधिक सुस्वादु जान पड़ती है और सराह-सराह कर उसे स्वीकार करती है। अभया जानती है कि आमंत्रण की स्वीकृति बंधुत्व को अत्यंत प्रगाढ़ बनाती है, जिस प्रगाढ़ता में वह पाती है कि जीवन के लिए आमंत्रण कितना अपेक्षित, कितना भव्य और कितना अमूल्य है। पर अभया इतने में ही सीमित नहीं रहती, वह और दो कदम आगे बढ़ती है और बढ़ती है उस समय, जब थकी-माँदी किसी ओर से अचानक आकर किसी के घर, उससे मिलते ही कह उठती है—भूख ज्यादा लग रही है, लाओ कुछ, मैं खाकर ही जाऊँगी........तब वह घरवाली अपने आप में अस्त-व्यस्त हो उठती और वह अस्त-व्यस्तता इसलिए होती है कि, उस जैसी अतिथि के लिए उसके पास है क्या ! पर अभया तो स्वयं जानती है उसे। और तभी उसका संकोच दूर करने के लिए वह फिर स्वयं बोल उठती है—मैं तुम्हारी अतिथि नहीं, मात्र-सेविका हूँ, बहन ! तूल-तबील की जरूरत नहीं, जो भी चीज मौजूद है, वही मुझे चाहिए—उससे ज्यादा मैं छू नहीं सकती······

—मगर···मगर अभया बहन, यह कैसे होगा····?

—खूब होगा, होगा कैसे नहीं ?—अभया खुले हृदय से बोल उठती है—अपनी इच्छा की चीज मुझे ज्यादा अच्छी लगती है। मैं कृत्रिमता को बिलकुल पसंद नहीं करती। अगर तुम ऐसा न करोगी तो कहो, मैं चली जाऊँ···मगर तुम्हारे कहने पर भी मैं जा नहीं सकती, मैं तो खाऊँगी ही और तुम्हें खिलाना ही पड़ेगा······

और अभया स्वयँ घर के भीतर बढ़ जाती है और जो भी खाने की वस्तु वह देख पाती है, उसे आदर के साथ और बड़े स्नेह से स्वीकार करती है। घरवाली उसकी अभिन्न-हृदयता पर मुग्ध, और उसके प्रति अत्यंत ही कृतज्ञ हो उठती है......

अभया एक दिन इसी तरह जब अतिथ्य-स्वीकार कर लौटी आ रही थी, तभी पीछे से जैसे दौड़ती हुई आकर कह रही है—कहाँ से अभी लौटी जा रहीं अभया बहन ?—और इस आवाज पर जब अभया मुड़ कर देखती है, तब पाती है कि वह तो चंपी है और वह कुछ आश्चर्य-चकित-सी बोल उठती है—अरी, तू कहाँ री चंपी। क्या यहीं तेरा घर है ?

चंपी उसके सामने आकर चुपचाप खड़ी हो जाती है, अब चंपी चंपी नहीं रह गई है, उसमें सहज-सरल एक लज्जा आ गई है और लज्जा-सूचक घुँघट जरा खिसक कर ललाट को स्पर्श कर रहो है, जिस पर सिंदूर की एक छोटी-सी गोल टीका है। अभया को लगता है जैसे वह (चंपी) अभी-अभी किशोरी से युवती की ओर दौड़ चली है; पर उसमें यौवन की चपलता नहीं, न उसकी आँखों में वह व्रीड़ा ही है, जैसे यौवन वहाँ आकर स्वयं मूर्च्छित ह ।पड़ा है। अभया के स्मृति-पटल पर एक-एक कर बहुत-सी भावनायें संचित हो उठतीं, तभी वह पूछती है—क्यों री चंपी, अच्छी तो है ?

—हूँ !— चंपी स्वीकारात्मक स्वर में अपना उत्तर देती है, पर वह स्वयं पुष्ट होकर उसके कंठ से बाहर नहीं निकल पाता। अभया उसके प्रश्न पर उल्लसित नहीं होती, वह स्वयं अपने-आप उलझ पड़ती है ; फिर भी वह अपने को संयत करती है और वह

प्रसन्न करने के विचार से बोल उठती है—तू इतनी जल्दी अपना घर बसा लेगी—मैं यह नहीं जानती थी, चंपी ! पर जो हो चुका है, अच्छा ही है। हम स्त्रियों के लिए इससे अच्छा दूसरा काम क्या हो सकता है ! पर तेरा दुल्हा कहाँ है, क्या करता है ?

दुल्हे की चर्चा से चंपी की आँखें छलछला आती हैं, पर चंपी तुरत सावधान होती और बल-पूर्वक अपने आँसुओं को आँखों में ही सँभालती हुई कहती है—वह तो यहाँ नहीं हैं !

अभया की उत्कंठा उसके छोटे से उत्तर से तृप्त नहीं होती। इसलिए पूछ बैठती है—तो कहाँ है चंपी ? अब तो शायद फार्म में वह काम करता भी नहीं।

—फारम से तो पहले ही निकाल दिए गए थे।

—तो अब क्या करता है ?

चंपी तुरत उत्तर नहीं दे पाती, वह कुछ क्षण तक चुप हो रहती है, फिर अचानक बोल उठती है—वह तो हवालात में हैं, मुकदमा है उन पर······

—मुकदमा ?—अभया जरा चौंक कर बोली—मुकदमा क्यों है, चंपी, हवालात में कब गया ? कैसे गया ? तो फिर तू अकेली ही रहती होगी ?

—हाँ, जैसे तब अकेली थी, वैसे अब अकेली हूँ !—इस बार चंपी कुछ अपने आप में दृढ़ जैसी जान पड़ी और फिर बोली—ऐसे आदमी हवालात में न जाएँगे तो कहाँ जाएँगे ? उनके लिए दूसरी जगह और है ही कौन ?

—मगर तू पहले उसे जानती थी न, चंपी ?

—जानती होती तो ऐसा दिन काहे को आता, अभया बहन !—

चंपी इस बार किशोरी के रूप में नहीं—युवती-जैसी बोल उठी—जान कर भी तो मैं कुछ कर नहीं सकती थी! मामा जो पीछे पड़े हुए थे! आखिर उनका पेट जो भरना था, सो मुझे बेच कर भरा……

अभया ने पाया कि चंपी की आकृति पर रोष की ललिमा छाई हुई है, उसमें उदासीनता नहीं, दर्प की हल्की-सी आभा है। अभया कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रही, फिर बोल उठी—तेरे दुर्भाग्य पर मुझे बहुत दुःख है, चंपी! और उस नर-पिशाच तेरे मामा पर रंज! और मैं कह नहीं सकती कि तेरी जिंदगी किस तरह ऐसे दुराचार-ग्रस्त व्यक्ति के साथ कटेगी!

अभया की बातों से चंपी प्रसन्न न हो सकी, शायद उसे ये सब बातें रुची-जैसी प्रतीत न हुईं! वह कुछ क्षणों तक सिर झुकाए जमीन की ओर देखती रही, फिर बोल उठी—जिंदगी चाहे जैसे कटे, उसके लिए मुझे दुख नहीं है, अभया बहन; मगर मुझे तो दुख है कि हवालात में वे दिन कैसे काटते होंगे! वह शराब के बिना किस तरह छटपटा-छटपटा कर रहते होंगे—यह तो मैं जानती हूँ, अभया बहन!……

चंपी बोल कर चुप हो रही, वह जाने और कुछ कहा चाहती थी, जिसे वह कह नहीं पा रही; फिर भी उसे तो कहना ही पड़ेगा। वह अभया को जानती है और वह यह भी जानती है कि अभया की मर्यादा कैसी है और कितनी है……इसी तरह कुछ क्षण तक उधेड़-बुन में पड़ी चंपी आप-ही-आप उसकी ओर देखती हुई बोल उठी—क्या उनके छुड़ाने का कोई परबंध नहीं हो सकता, अभया बहन? तुम अगर चाहोगी तो……

—ओह, मैं चाहूँगी !—अभया कठोर होकर बोल उठी—तू पागल हो गई है; जभी तू ऐसा कहती है ! शराबियों और जुआड़ियों को बचाना दया नहीं—खुद एक जुर्म है, तुझे यह जानना चाहिए चंपी ! मैं ऐसों को नहीं चाहता—हर्गिज नहीं चाहता। ये लोग समाज के कलंक होते हैं, देश को तबाह और बर्बाद करते हैं। और तेरा कोई काम हो तो कह, उसे कर सकती हूँ, तेरे खाने-पीने की तकलीफ हो तो कह, उसे दूर किया जा सकता है; मगर मुझे ऐसों पर दया नहीं—घृणा आती है......

चंपी का उत्साह अपनी जगह पर आकर ठंढा पड़ गया। उसे लगा कि जैसे वह स्वयं गल कर पानी-पानी हो उठी है ! वह सिर झुकाए पड़ी थी, उसके कानों में अभया के वितृष्णा-मूलक वे शब्द अब भी प्रतिध्वनित हो रहे थे। वह मन-ही-मन खिन्न हो सोचने लगी कि क्यों उसने ऐसी याचना की उससे ? वह और भी सोचने लगी—अभया से अपनी बातों के लिए, जो जान कर या अजान में कही गई है—किस तरह वह क्षमा की प्रार्थना करे ! मगर वह इतना कुछ सोच कर भी कुछ कह नहीं सकी। अभया भी मन-ही-मन चंपी के मन की विह्वलता-विकलता का अनुभव कर रही थी जिसे वह प्रकाश करते हुए बोल उठी—क्यों चंपी, तेरा खाना-पीना किस तरह चलता है ? सच बता, किस तरह चल रहा है ?

चंपी इस प्रश्न को सुन कर उत्सुक न हो सकी, वह सत्यता को अस्पष्ट रखती हुई बोली—खैर, यह तो तुम्हारी दया है, अभया बहन ! मगर मैं तो तुम से माफी चाहती हूँ—मुझे तुमसे वैसी बातें न कहनी चाहिए थीं।

चंपी कुछ क्षण तक चुप रही, फिर आप-ही-आप बोली—जी ठिकाने नहीं हैं, इसीसे मैंने तुम्हारे दिल को दुखाया, अभया बहन ! जब मन ही काबू में नहीं तो फिर ऐसी बात के लिए तुम दुख न मानोगी। और घृणा की जो बात कहती हो सो तो सिर्फ तुम्हीं नहीं कहतीं—जितने भी मिलते हैं, सभी तो उनसे घृणा की ही बात करते हैं; मगर एक मैं हूँ जो उनसे घृणा भी नहीं कर सकती, उन्हें प्यार भी नहीं करती···कुछ भी नहीं कर सकती··· कुछ भी करने के लिए जी नहीं रह गया है, मगर एक बार उन्हें जेल से बाहर निकाल पाती··· पाती तो जरूर उनसे कहती कि देखो, अबतो ऐसा न करो······

अभया चंपी की बातों पर गंभीरता पूर्वक कुछ क्षण तक सोचती रही, उसे लगा कि चंपी का हृदय कितना सरल, कितना निष्कपट और कितना पवित्र है! मगर अभया उसकी बातों के समर्थन या खंडन में कुछ न कह कर बोल उठती है—तू मेरे साथ चलेगी मेरे घर तक चंपी ?

—नहीं, चल नहीं सकूंगी!—चंपी अप्रसन्न-जैसी ही बोली।

—क्यों, घर में बहुत काम करना पड़ता है ?

—काम ?—चंपी के ओठ हिले और वह फीकी हँसी लिए हुए बोली—आखिर घर जो ठहरा, अभया बहन, काम-काज तो लगा ही रहता है, इससे छुट्टी कब मिल सकती है !

चंपी इतनी ज्यादा गृहिणी हो उठेगी—अभया उसकी बातों से हँसी और हँसते-हँसते ही बोली—देखती हूँ, घर से ज्यादा स्नेह हो गया है, क्यों री चंपी, ठीक है न ?

—स्नेह न भी हो—चंपी गंभीर-मुद्रा ही में बोली—मैं नेह-

स्नेह कुछ नहीं जानती; मगर जो घर अपना है, वह तो दूसरे पर छोड़ा नहीं जा सकता। और मैं हूँ जो देख रही हूँ, दूसरा यहाँ कौन बैठा है जो उसकी देखभाल करेगा। चलो न अभया बहन, मेरे घर पर...वह जो दीख रहा है परली सिरे पर...चलो ना!

अभया इस बार स्वयं अपने आप में लघु हो उठी। अभया चंपी को जानती है, और जानती है उसके सरल-निष्कपट हृदय को भी; पर आज अभया को स्वयं उत्साह नहीं है कि वह चंपी की अभ्यर्थना स्वीकार करे। जो अभया अपरिचित के घर विना बुलाए जा सकती है, जो अभया दूसरे के घर मांग कर खाने में भी नहीं लजाती, वही अभया परिचित ही नहीं—जिसे वह एक दिन स्नेह कर चुकी है, उस चंपी के घर, उससे आमंत्रित-अभ्यर्थित होकर भी जाने में कुंठा का अनुभव कर रही है! मगर वह अपनी कुंठा को भीतर-ही-भीतर दवाकर, बाहर से मुस्कराती हुई बोल उठती है—अभी तो मुझे जाने ही दे, चंपी, किसी दिन आ जाऊँगी, अभी तो जाने ही दे।

और अभया अब रुकी हुई नहीं रह सकती, रास्ते पर बढ़ चलती है। चंपी खड़ी-खड़ी कुछ क्षण तक उसकी ओर देखती रह जाती है, फिर एक लंबी साँस छोड़कर अपने घर की ओर लौट पड़ती है।

त्रयोदश परिच्छेद

अभया चंपी से मिलकर चल तो पड़ी, पर वह प्रसन्न नहीं है रह-रह कर उसकी याद उसे हो आती है, आती है याद उसकी वे बातें जो उसने अभया से कही हैं। उनमें पाती है कि चंपी में हृदय तो है, पर विवेक का स्थान भी उसमें कुछ कम नहीं है। इतनी सी उम्र में चंपी कितनी विवेकशील हो उठी है – इस पर जब वह विचार करती है तब उसका हृदय भी उसकी ओर अधिक अधिक उल्लसित और दयार्द्र हो उठता है; पर ज्यों ही वह पाती है कि चंपी-जैसी चंद्र को जिस राहु ने ग्रसित कर रखा है, वह सर्वग्रासी राहु तिल-तिल कर उसे अस्तित्व- विहीन किए बिना दम न लेगा, त्योंही उसका वह उल्लास वहीं शेष हो जाता है, पर उसे सूझ नहीं पड़ती कि उसे अब क्या करना चाहिए। वह इसी अंतर्द्वंद्व को लेकर रास्ते पर आगे बढ़ जाती है!

अभया जब घर आ पहुँचती है तो देखती है कि दरवाजे के बाहर कार खड़ी है। इधर जब से वह नारी-जागरण में जुट पड़ी है तब से उसे इतना अवकाश ही नहीं मिलता कि वह आनदकौशल से मिले, जिस आनंद की ओर उसके मन का झुकाव रह चुका है; पर जैसे ही वह कमरे की ओर बढ़ी वैसे ही उसने पाया कि डा० स्वरूप की मजलिस खूब जमी है, जहाँ गृहपति के सिवा राजा बाबू हैं, आनंद हैं और आनंद के सहकर्मी और दो-एक उच्च

पदाधिकारी सज्जन हैं और किसी गंभीर विषय को लेकर चर्चा छिड़ी हुई है। मगर अभया के प्रवेश करते ही सब का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हो उठता है, सभी जरा अस्त-व्यस्त-जैसे दीख पड़ने लगते हैं, कुछ क्षण के लिए चर्चा रुक जाती है, आनंद कुछ बोलना ही चाहता है कि डा० स्वरूप स्वयं बोल उठते हैं—तुम आ गई अभय, अच्छा ही हुआ। आनंद बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा में थे।

आनंद अपने आपमें जरा संयत हो पड़ता है और डा० स्वरूप की बातों के समर्थन में वह बोल उठता है—प्रतीक्षा तो बहुत की; पर कभी ऐसा सौभाग्य न हुआ कि आप से भेंट हो सके। आज भी मुझे उम्मीद न थी कि आपको मैं पा सकूँगा ! आप तो काम करना जानती हैं और यह भी जानती हैं, कि किस तरह काम को आगे बढ़ाया जा सकता है, उस समय आपकी दृष्टि में केवल काम रह जाता है और........

—यह तो आप अपने मन का इजहार दे रहे हैं !—अभया किंचित् मुस्कराती हुई बोली—मैं पूछती हूं, लोगों को अपनी बात ही अधिक क्यों सुहाती हैं ? क्यों नहीं वह दूसरी दिशा की ओर भी देखना पसंद करते हैं ?

अभया बोल कर अपने उत्तर के लिए खड़ी न रही, वह बाहर से आई थी, उसे कपड़े बदलने थे, इसलिए वह भीतर की ओर दौड़ पड़ी। वातावरण थोड़ी देर क्षुब्ध बना रहा, उत्तर में आनंद जो कुछ कहना चाहता था, वह कह नहीं पाया; पर न कह पाकर वह भीतर-भीतर महसूस करता रहा कि अभया ने जो बात अभी कही है, वह साधारण स्थिति में नहीं कही गयी है,

उसमें प्रच्छन्न एक व्यंग है जिसमें तिक्तता ही अधिक है। अभया इतनी तिक्त क्यों उठी है—वह स्वयं समझ पा नहीं रहा है।

मगर क्षुब्ध वातावरण को स्वस्थ्य करने के विचार से डा० स्वरूप शांत-मुद्रा में बोल उठे—मनुष्य जब तक अचेतन पड़ा रहता है, तब तक वह अपने को पहचान नहीं पाता। पर जैसे ही उसमें सचेतना आ जाती है, वैसी ही वह पाता है कि उसकी कार्यकरी शक्ति उसे भीतर-भीतर उत्साहित कर रही है, प्रेरित कर रही है उस दिशा की ओर जिधर उसकी पूर्व से प्रवृति रही है, वह अपनी प्रवृत्ति को मूर्त्त रूप में परिवर्तित करने के लिए चंचल-विभोर हो उठता है। अभया में जो चंचलता आ गई है, वह और कुछ नहीं, उसकी कार्यकरी शक्ति उसे दूसरी दिश की ओर देखने नहीं देती और इस विचार से वह क्षम्य है, आनंद !

—ठीक कहते हैं डाक्टर भाई !—राजाबाबू ने डा० स्वरूप के समर्थन में, जरा उभक कर बैठते हुए कहा—अभया किस धातु की बनी है, मैं नहीं कह सकता ; मगर मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि वह जितनी ही कर्मठ है उतनी ही बोलने में भी प्रखर है। उसके सामने विपक्षियों का तर्क टिका हुआ नहीं रह सकता। खुद मैं अपनी बात कहता हूँ आनंद बाबू—इस बार राजा बाबू आनंद की ओर मुखातिब होकर बोल उठे—मैं नहीं चाहता था कि गाँव की स्त्रियाँ पर्दे से बाहर हों, वे उन कामों की ओर झुकें जिनसे हमारा बँधा हुआ समाज छिन्न-भिन्न हो उठे। क्योंकि मैं जानता था कि समाज आज का बना नहीं, सनातन के प्रयत्न से जिसका अस्तित्व तैयार हो सका है, वह समय की लहरों में बह जाय; मगर अभया के तर्क के सामने मेरी एक न चली। उसने मेरे सामने

ऐसे-ऐसे प्रश्न रखे, जिनका उत्तर मेरे पास न था ; मैंने हार खायी, पर मुझे दुख न हुआ। क्योंकि केवल तर्क से ही वह मुझे उतना संतुष्ट न कर सकी जितना उसके विलक्षण कार्य-कौशल से मैं प्रभावित हुआ। फिर मैं उसके रास्ते में रोड़े बन कर टिक न सका, सच तो यह कि मेरा रोड़े के रूप में टिकना संभव था भी नहीं! जो आँधी बन कर आई है, उसे तो राह देनी ही होगी। अगर उस आँधी को कोई रोकना चाहे तो आँधी का नुकसान तो क्या होगा—स्वयँ उसके संचित धक्के से अपने आपको को ही वह विनष्ट कर देगा। वैसी दशा में बुद्धिमानी की बात तो यही हो सकती है कि आँधी को अपने रूप में बहने दे···उसको अपनी गति में वह जाना ही अच्छा! और मुझे खुशी है कि जो काम महीनों क्या—वर्षों में भी नहीं हो पाता, वह कुछ चंद महीने में, अपनी आँखों देख रहा हूँ। क्या यह शुभ लक्षण नहीं, आनंद बाबू?

—क्यों नहीं-क्यों नहीं!—आनंद उत्तर में बोल उठा; पर वह स्वयं बोल कर भी समझ न सका कि उसका उत्तर कितना उसके हृदय की ओर से है और कितना केवल उत्तर देने के खयाल से ही कहा गया है।

राजा बाबू कुछ क्षण चुप रहे, फिर बोल उठे—आज का युग कुछ और है, और कल का कुछ और था! जो युग अतीत हो चुका है, वह चाहे सुंदर हो या असुंदर, स्वस्थ हो वा अस्वस्थ, उसको लेकर सोचना—केवल सोचते रहना ही—आज के युग के लिए उचित नहीं; मगर आज के युग का लक्ष्य यह जरूर रहना चाहिए कि कल के युग की कमजोरियों को, बुराइयों को

अपने स्थान पर ही छोड़ कर, केवल अच्छाइयों को, यदि वह ग्रहण करना चाहे तो, ग्रहण कर ले। ग्रहण करना उसे लाभ ही देगा, कुछ हानि नहीं; मगर वह अपने लक्ष्य को न भूले और उसे केवल हृदय का एक उच्छ्वास, एक लहर या एक करेंट समझ कर ही वहीं रुका न रह जाय, बल्कि वह अपनी गति पर बढ़ता चले—बढ़ता चले और इस तरह जब अपने लक्ष्य तक पहुँच जाय तब वह विश्राम ले! अभया बेटी इस युग की एक प्रतीक है···और मैं निष्पक्ष और निष्कपट भाव से, इस सत्य को प्रकट करने में कुछ कुंठित नहीं हूं कि एक दिन जिस अभया के नाम से मैं रुद्र हो उठा था, एक दिन जिसके चलते हमारे डाक्टर भाई स्वरूप से मेरी वितृष्णा ही नहीं, उपेक्षा के भाव थे, जिन्हें मैं ढोंगी, कपटाचारी और जाने क्या-क्या नहीं समझता था, उन्हीं को एक दिन मृणाल के विवाहोपलक्ष में आमंत्रित करने के लिए मैं जब यहाँ आ पहुँचा और पहुँच कर जब पहले-पहल मैंने अभया बेटी को देख पाया, तब, सारी उपेक्षाओं, वितृष्णाओं के रहते हुए भी जाने क्यों, मैं कह नहीं सकता क्यों, मैं उससे भी कह बैठा—मैं तुम्हें स्वयं आमंत्रित करने आया हूँ, अभया बेटी, स्वयं आया हूं······और उस क्षण मेरे आमंत्रण को उसने जिस रूप में स्वीकार कर लिया, वह भी मुझे अक्षर-अक्षर याद है। खैर, अभया गई मेरे घर और गई एक प्रभाव, एक तेज, एक प्रकाश लेकर···आज मैं पाता हूँ कि, वह प्रकाश न केवल मेरी हवेली को ही समुज्ज्वल बना रहा है, वह तेज केवल मेरे परिवार तक ही सीमित नहीं है और वह प्रभाव मैं स्वयं अपने आपमें ही काम करते हुए नहीं पा रहा हूँ, बल्कि आज उससे

मेरे दिहात की दिशा-विदिशाएँ स्वयं उद्भासित, और प्रभावित हो उठी हैं। मगर अभया बेटी को पाकर जहाँ मैं इतना प्रसन्न हूं, वहाँ मुझे भय भी कुछ कम नहीं है और वह भय इसलिए है कि कहीं इस शक्ति प्रवाह में व्याघात उत्पन्न न हो जाय। क्योंकि व्याघात पाकर जो घूर्णावर्त्त उत्पन्न होगा—वह सहज नहीं, बड़ा ही मर्मांतक होगा.........

राजा बाबू घूर्णावर्त की कल्पना से आप-ही-आप जैसे भयभीत हो उठे; उनसे आगे न बोला गया। वह स्वयं मौन होकर अखबार के पन्ने उलटने-पलटने लगे।

राजा बाबू ने जो कुछ कहा है, उसमें गुरुता कुछ कम नहीं है। डा० स्वरूप ने उनकी बातें सुनीं और सुनीं आनंद और दूसरे ने भी ; पर सभी ने उन बातों को अपने-अपने दृष्टि-कोण से ही देखा। डा० स्वरूप ने पाया कि राजाबाबू प्रकृति के उदार और स्नेह-शील हैं और यह इनकी उदारता ही है कि अभया को वे ऐसा समझ रहे हैं; मगर उनकी स्पष्ट, निष्कपट एवं उदार वचनों से न तो आनंद को प्रसन्नता हो सकी और न उनके साथी-सहकर्मियों को। साथियों ने समझा कि राजा बाबू साधारण-सी बात को अतिरंजित करना जानते हैं, उनके अतिरंजन में सत्य कम, मनोरंजन ही अधिक है। और आनंद को लगा जैसे अभया आनंद की एक चुनौती मात्र है, एक विद्वेष है जो उस वातावरण में स्वयं मुखरित हो उठा है।

मगर वह घूर्णावर्त्त !

वास्तव में वह घूर्णावर्त्त ही है जिसने डा० स्वरूप के अंतस्तल को आलोड़ित कर छोड़ा है। वहां पर पितृ-हृदय का स्नेह

स्वयं आँखों को बोझिल बना रहा है और इस रूप में आकर डा०
स्वरूप बोल उठते हैं—घूर्णावर्त्त का खयाल मुझे भी कुछ कम
व्यथित नहीं करता, राजा बाबू, मगर मैं क्या करूं और कुछ
कर भी क्या सकता हूँ जब मैं पाता हूँ कि मैं स्वयं उस शक्ति के
सामने कितना लघु हूं। पर, मुझे भय नहीं है और इसलिए कि
मैं जानता हूँ कि भय को भय के रूप में स्वीकार करना स्वयं मृत्यु
का एक आह्वान होगा, जो मेरे जीवन का उद्देश्य नहीं। जानता
हूं, जो होना है, वह होकर रहेगा, उसे न आप संभाल सकते हैं
और न मैं संभाल सकता हूं और न कोई अन्य ! मनुष्य इसी शक्ति
के सामने जो पंगु है ! वह अदृश्य शक्ति·······वह दैवी
विधान···············

इस बार आनंद आप-से-आप हँस पड़ा और हँसते हुए ही
बोला—दैवी-विधान कहकर इसे छोड़ा नहीं जा सकता है डाक्टर
साहब, जब हम खुद पाते हैं कि किसीने आग में पकने के लिए
अपनी उँगलियाँ छोड़ रखी हैं। इसे अदृश्य शक्ति या दैवी-विधान
कहना दैवी-विधान का अपमान करना होगा।

डा० स्वरूप कुछ बोले नहीं, केवल हँस कर रह गए; मगर
राजा बाबू हँस न सके, पर बोल उठे—अपमान नहीं, यही सत्य
है आनंद बाबू ! आपलोग वैज्ञानिक सत्य को ही सत्य मानते हैं
इसके सिवा दूसरा सत्य आपलोगों की दृष्टि में न आता है, न
जँचता है; पर वह सत्य अपनी जगह पर इतना स्पष्ट है और
इतना प्रत्यक्ष है कि वहाँ वैज्ञानिक सत्य स्वयं सिकुड़ कर—अस्तित्व
खोकर रह जाता है जिसकी ओर हमारे डाक्टर भाई का लक्ष्य

—मगर वैज्ञानिक सत्य को इनकार नहीं किया जा सकता—आनंद के सहकर्मी में से एक बोल उठ।

—मैं इनकार नहीं, स्वीकार ही करता हूँ प्रफुल्ल बाबू—राजा बाबू हँसकर बोले—मगर उसकी सीमा तक ही, फिर भी सीमा से जो बाहर है—सीमा-हीन है—असीम है, वहाँ वैज्ञानिकों का विज्ञान स्वयं क्षुब्ध होकर रह जाता है, मैं तो उसकी बात कह रहा था ....

—मगर जो स्वयं असीम है, उससे मेरा काम जो नहीं चलता।

—और इसलिए क्या उसका अस्तित्व हम स्वीकार नहीं कर सकते ?

—स्वीकार क्यों नहीं करता ?

—तब यह भी स्वीकार करना ही पड़ेगा कि उसकी सत्ता के सामने सभी सत्ताएँ नगण्य हैं.........

इसी समय अभया नहा-धोकर अपने साफ कपड़ों में सजती संवरती चाय की ट्रे हाथों में थामे आकर टेबिल पर रखते हुए बोली—क्यों, चाचा जी, ऐसी-ऐसी बातें बोलकर क्यों अपना सिर गर्म करते हैं और क्यों दूसरों का भी ?

इस बार राजा बाबू हंस पड़े और हँसते हुए बोले—तुम नहीं जानतीं, अभया बेटी, ये बातें किस तरह चल पड़ीं ?

—जानती कैसे नहीं, चाचाजी !—अभया ने हँसते हुए ही कहा—बूढ़े-बूढ़े में ही ये बातें ठीक बैठती हैं ; मगर जहाँ आनंद बाबू हैं, आनंद बाबू जैसे और हैं, उनके बीच अगर ऐसी बातें न कही जायँ तो क्या पेट का अन्न पचे नहीं ? पेट का अन्न पचाने

के लिए और बहुत सी तरकीवें हो सकती हैं, वे तरकीवें क्या होंगी—मैं उन्हें बताऊँ चाचाजी, मानेंगे ?

—तरकीवें तो बहुत होंगी, यह मैं मानता हूँ—राजा बाबू ने हँसते हुए ही कहा—मगर जो तुम बताना चाहती हो, वे क्या हमलोगों के लिए उपयुक्त होंगी, अभया बेटी ? तुम कहोगी—चर्खा चलाओ, गाँवों में फेरी लगाओ, न हो तो और कोई काम करो—यही न ? मगर यह सब हमारे लिए नहीं है। हमें तो बैठे-बैठे अब आराम ही करने दो, काम बहुत हो चुके हैं, अब जो हैं, वे तो तुम लोगों के लिए ही हैं। क्यों ठीक है न ?

अभया ने चाय तैयार की और एक-एक प्याला सभी की ओर बढ़ाया और राजा बाबू के हाथ पर देती हुई बोली—देख लीजिए, चाचाजी, चीनी ठीक पड़ी है न ? क्यों, और चाहिए ? आनंद बाबू तो बोलेंगे नहीं, उन्हें तो जो दे दीजिए, सभी ठीक ही बतलाएँगे ?

—आनंद बाबू ऐसा नहीं है अभया बेटी—राजा बाबू ने हँस कर ही कहा—क्यों आनंद बाबू, अभया बेटी क्या कह रही हैं ?

इस बार आनंद उत्सुक हो उठा, फिर प्याले से एक शिप लगा कर बोला—अभया देवी ठीक कह रही हैं राजा बाबू ! मगर वह यह कहना भूल जाती हैं कि स्वाद क्या है और आवश्यकता क्या है और दोनों का सामंजस्य क्या है। आवश्यकता के सामने स्वाद का कुछ स्थान नहीं रह जाता........

—और तभी तो आपको स्वाद की जरूरत भी नहीं रह जाती !—अभया आप-ही-आप हँस पड़ती है, फिर बोल उठती है—क्या आप कृपा कर यह बता सकेंगे कि अभी आप चाय को

आवश्यकता समझ कर पी रहे हैं, या स्वाद के लिए? या और...

—आवश्यकता के लिए भी और स्वाद के लिए भी।

—तब तो आप बतलाएँगे ही कि यह ठीक उतरी है या नहीं? मगर क्या आप सच-सच बतलाएँगे भी?

—ऐसी हालत में सच को झूठ ही बतलाना कभी-कभी ठीक होता है! - आनंद हँसते हुए ही बोला—मगर मैं ऐसा न कहूँगा, मुझे तो थोड़ी चीनी चाहिए ही। जानता हूँ, आजकल आप व्यस्त जो हो पड़ी हैं, तभी यह भूल हो पड़ी।

- भूल!—अभया चम्मच भर चीनी बढ़ाते हुए बोली—भूल ही कहना ठीक होगा। हाँ, मैंने भूल ही की थी और मैं भूल यह कर बैठी कि मैंने यह नहीं जाना कि आजकल आप तिक्त जो हो उठे हैं, तीते मुँह में मिठास कुछ कम मालूम पड़ती है—यह स्वाभाविक ही हैं। क्यों प्रफुल्ल बाबू, आप को चाय के लिए चीनी तो नहीं चाहिए?

—नहीं, ठीक है, धन्यवाद!

—और चाचाजी, आपको?

—नहीं, अभया बेटी, मुझे तो कड़ी ही ज्यादा पसंद है।

—और आपको?—प्रफुल्ल के पास बैठे हुए सज्जन से पूछा।

—नहीं-नहीं, बहुत है, धन्यवाद!—उस युवक ने कहा।

इस बार अभया खिलखिलाकर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही राजा बाबू की ओर देख कर बोली—देखा न, चाचाजी, अभी मैंने तीते मुँह की बात कही थी। चाय का स्वाद ठीक-ठीक उतरा है या नहीं—यह मैं नहीं कह सकती; मगर जब इतने व्यक्तियों को वह अच्छी लगी तब एक आनंद बाबू ही ऐसे निकले

जिन्हें चीनी की जरूरत महसूस हुई। अब आपलोग स्वयं सोच लीजिए, इनमें कितनी सचाई और कितनी.........

इस पर सब-के-सब हँस पड़े और उसी हँसी में डा० स्वरूप बोल उठे—अभया और आनंद की बातों में पड़ना हमें मुनासिव नहीं राजा भाई! ये दोनों जितने ही अभिन्न हैं, उतने ही एक दूसरे के प्रति कठोर भी! मगर, अभय, इस तरह आनंद को तंग न किया करो, आनंद सूधे हैं, तनकर जवाब नहीं देते; मगर जब कभी जवाब देंगे तो तुम तंग हो उठोगी, अभय!

डा० स्वरूप को आनंद के प्रति एक प्रकार का स्नेह है जो पिता का पुत्र के प्रति और गुरु का शिष्य के प्रति होता है। उन्हें परिस्थिति का भी ज्ञान है, उस परिस्थिति का जो अभया के वार्तालाप से उत्पन्न हो चला है। आनंद उस परिस्थिति से स्वयं संक्षुब्ध हो उठा है—यह भी डा० स्वरूप से छिपा नहीं है और उनसे यह भी छिपा नहीं कि अभया क्यों उसे इस तरह मूर्ख बना रही है। मगर वह यह नहीं चाहते। क्योंकि वह जानते हैं कि व्यंग जब तक रसात्मक है तब तक वह आनंद का कारण है और ज्योंही उसमें उपेक्षा आई, त्यों ही वह कष्टकर हो उठता है और किसी को किसी भी तरह क्लेश पहुँचाना कल्याण कारक नहीं। तभी डाक्टर स्वरूप आनंद की ओर ही मुखातिव होकर बोले—क्यों आनंद बाबू, तुम इन दिनों इधर आ भी न रहे थे, कुछ ज्यादा दिन पर आए हो, मुझे लगता है कि यही वजह है जो अभया इस तरह तुम से कह रही है, क्यों अभय, बात यही है न? या और कुछ.........

—बात यह नहीं है डाक्टर साहब—आनंद इसबार सतर्क

होकर ही बोल उठा, लगा जैसे संचित विक्षोभ फूट कर बाहर निकलना चाहता हो—बात कुछ दूसरी है जिसे कह कर अभया देवी को मैं दुखाना नहीं चाहता !

—मगर अभया देवी आपको अभय प्रदान करती है—अभया व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए बोली—अभया का हृदय इतना कच्चा नहीं कि आपकी बातें उसे छिन्न-भिन्न कर देंगी ! कहिए, चुप क्यों गए ?

—माफ कीजिए, व्यर्थ की बातें बढ़ाना मैं नहीं चाहता।—आनंद स्वयं बोल उठा।

—यह आपकी बड़ी कृपा है !— अभया इसबार हँसी और हँसती हुई बोली—मगर जो बात बोलने-बोलने को होकर भी न बोली जाय, वह भीतर सिमिट कर पत्थर जैसी कड़ी हो उठती है। आनंद बाबू, आप इस बात को नहीं जानते, मैं जानती हूँ कि वह पत्थर पेट की तंतुओं को कितना नुकसान पहुँचाता है...

—लेकिन उस नुकसानी के लिए मुझे ज्यादा चिंता नहीं, आप तो डाक्टर हैं ही—आनंद इस बार हँसते हुए बोल कर बाहर जाने के लिए उठ पड़ा।

—क्यों, जल्दी क्या है आनंद बाबू ?—डा० स्वरूप अस्त-व्यस्त होकर बोल उठे।

—जल्दी ही है डाक्टर साहब, जाना ही ठीक होगा।

—हाँ, जाना ही ठीक होगा, बाबूजी—अभया हँसती हुई बोल उठी—रोकिए नहीं, रोकने पर आज वे रुकेंगे भी तो नहीं !

—जैसा आप समझ रही हैं, यह बिलकुल गलत है—आनंद खड़ा-खड़ा ही बोला—मगर आप रोकना कब चाहती हैं ?

—मगर मेरे चाहने से आप का ज्यादा उपकार नहीं अपकार ही अधिक होगा, इतना भर तो मैं कही सकती हूँ; फिर जान-बूझ कर अपकार मैं क्यों करूँ ?

—खैर, धन्यवाद, इतना तो जाना कि आप को मेरे अपकार का ध्यान भी है।

—हाँ-हाँ, जरूर ध्यान है, आनंद बाबू—अभया किंचित् रुष्ट होकर ही बोली—ध्यान न होने पर मैं आप से कहती ही क्यों ?

इस बार सब-के-सब उठ पड़े। आनंद और उनके साथियों ने डा० स्वरूप के प्रति नमस्कार-ज्ञापन किया और निकल पड़े। अभया उन्हें कार तक पहुँचाने आई, पर वहाँ तक आकर भी आज वह आनंद बाबू की प्रसन्नता का कारण न बन सकी। कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

चतुर्दश परिच्छेद

आनंद के चले जाने के बाद अभया लौट कर दालान में आई। डा० स्वरूप अकेले आरामकुर्सी पर लेटे हुए थे, पर उनकी मुख-मुद्रा स्वयं बता रही थी कि वह कुछ विषम गुत्थियों को सुलझाने में व्यस्त-जैसे हो पड़े हैं, पर अभया के वहाँ पहुँचते ही डा० स्वरूप कुछ प्रसन्न से दीखे और उसी रूप में बोल उठे—ब्रजेंद्र को इधर बहुत दिनों से न देखा, अभय, वह क्या आज-कल यहाँ.........

—यहाँ वह आजकल नहीं हैं, बाबूजी, मगर वह जल्द लौट कर आने वाले ही हैं, संभव है, वह आज या कल आ जाएँगे। सुना, इधर कुछ लीडर आनेवाले हैं, उनके व्याख्यानों का आयोजन करना है...........

मगर डा० स्वरूप इन समाचारों से उल्लसित न हो सके, वह केवल-हूँ--बोलकर चुप हो रहे, फिर आप-ही-आप बोल उठे—मगर मेरा खयाल है, वे सब इस समय आ न सकेंगे, अभय! इस समय, मुझे लगता है, विश्वव्यापी युद्ध से देश के वातावरण में जो धूमिलता आ गई है, प्रच्छन्न रूप में जो शिथिलता आ गई है, वह प्रत्यक्ष बता रही है कि यह आसार अच्छे नहीं हैं, यह तो प्रचंड आंधी आने का पूर्वरूप-सूचक है! युद्ध-जनित परिस्थितियों से भारत की आत्मा संक्षुब्ध हो उठी है, और यह संक्षुब्ध

आत्मा अपने आप में स्थिर नहीं हो सकती, शांत हो नहीं सकती। ऐसी अवस्था में वह कब, क्या कर बैठे, निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा जकता, कुछ सोचा भी नहीं जा सकता······

अभया अब तक अपने पिता के पास टेबिल के सहारे खड़ी थी, पर वह खड़ी न रह सकी, टेबिल के सिरे पर जरा उझककर बैठते हुए बोल उठी—अगर इन सब बातों को लेकर इस तरह सोचने से लाभ ही क्या बाबूजी ! होने दो जैसा कुछ होगा। उसे तो हम-आप संभाल नहीं सकते·······

—बेशक हम-आप इसे नहीं संभाल सकते !—डा० स्वरूप ने एक बार अपनी आँखें खोलीं, अभया की ओर देखा, फिर उन्होंने आँखें मूँदीं और बोला उठे—काल की गति किसके रोके रुक सकी है, अभय ? मगर आनेवाला काल साधारण नहीं, उग्र होगा, प्रचंड होगा और ऐसा होगा जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती······ तुम समझ सकती हो, यह सब फ़िजूल की बातें हैं—शायद ऐसा तुम्हारा कहना ठीक भी हो सकता है ; मगर देश में जो इतनी निस्तब्धता छागई है, वह क्या सदैव ऐसी बनी रह सकती है भला ? जब-जब घोर निस्तब्धता छाई है तब-तब समय ने करवट बदली है, यह भूचाल का लक्षण है, यह बड़े विस्फोटक के फटने का चिन्ह है······समझती हो, अभय, यह विस्फोटक कितना भयंकर होगा। ओह, कितना भयंकर !!·······इसका अन्दाज हमारी स्थूल बुद्धि नहीं लगा सकती·······

डा० स्वरूप अपनी गति में बोलकर चुप हो रहे, मगर इन बातों की ओर अभया झुकी जैसी न दीख पड़ी। अभया जिस धातु की बनी है, उसे यह सब बातें हिला नहीं सकतीं। इसलिए

वह उछलकर खड़ी होते हुए बोली—अन्दाज न लगना ही अच्छा है बाबूजी ! व्यर्थ की बातों का अन्दाज ही क्या ?

अभया अब स्थिर न रह सकी, वह हँसतीहुई बोलकर अपने कमरे की ओर दौड़ पड़ी। डा० स्वरूप ने एकबार अभया की ओर देखा और आप-ही-आप बोल उठे—मगर यह व्यर्थ की बातें नहीं हैं अभय ! काश तुम समझ पा सकतीं !

अभया भोजन के बाद विश्राम करने को जब पलंग पर आ लेटी तब वह निश्चिन्त होकर लेट न सकी। उसकी स्मृति में बहुत-सी बातों का समूह एक साथ प्रतिभासित हो उठा। वह एक बार चंपी की आकृति और उसकी दुरवस्था की चिंता करती है, वहीं वह आनंद के साथ आज की की हुई बातों की समस्या में उलझ पड़ती है और उसके साथ-साथ अन्यान्य बातों में भी; उसके बाद उसकी दृष्टि के सामने ब्रजेन्द्र आता है जो अपने त्याग-तपस्या और संकल्प की साधन में जाने कहाँ-कहाँ का अलख जगाए फिरता है। जिसे, लगता है, न खाने की चिंता है, न आराम की कुछ परवा ! न कोई ख्वाहिश, न कोई हौसला, न आकांक्षा, न अपेक्षा ! उसके सामने जो कुछ है, वह उसका कर्त्तव्य है—वह कर्त्तव्य जो उसकी आत्मा की एकांत पुकार है··· और तभी उसे याद पड़ती है, अपने पिता की बात—वह विस्फोटक की बात जिसे सुनकर वह उपेक्षाभरी हँसी हँस चुकी है, फिर भी वह विस्फोटक स्वयं उसके दृष्टि-पट पर अपनी भयंकरता की छाप डाले बैठा है, जिससे वह कठोर-कर्मा अभया स्वयं आप भी कुछ कम भयभीत नहीं है। अभया इन्हीं बातों में जाने कब तक उलझी-उलझी-सी पड़ी रही; मगर पड़ी न रह

सकी, दिन-भर के परिश्रम-जनित अवसाद से धीरे-धीरे उसकी आँखें झपने लगीं और झपते-झपते ही उसे नींद हो आई·······

मगर जैसे ही भोर हुआ, वैसे ही बाहर से किसी ने पुकार.—अभया देवी ! तब वह घोर निद्रा में पड़ी थी, मगर बाहर से उसके नाम की पुकार से उसे लगा कि कोई प्रतीक्षा में बाहर खड़ा है। वह सजग हो उठ बैठी—खड़ी हुई, उसने कपड़े संभाले और बाहर की ओर निकल पड़ी, उसने आकर पाया कि पुकारने वाला और कोई नहीं, स्वयं व्रजेंद्र हैं और उस व्रजेंद्र के प्रति नमस्कार ज्ञापन करते हुए पूछा—कब आए, कब आए व्रजेंद्र बाबू ? मगर इतना सवेरे-सवेरे··· ···

—हाँ, इतना सवेरे-सवेरे ही आना पड़ा, अभया देवी—व्रजेंद्र बोलते हुए दालान में आए और सोफे पर बैठते हुए कहा—वीरगंज में सभा का आयोजन किया गया है, बाहर के नेताओं के पधारने की स्वीकृति आ चुकी है, अभी बहुत सारे काम करने को पड़े हैं। मैं आश्रम में आकर सभी को सभी तरफ भेज चुका हूँ, और जो-कुछ जरूरी चिट्ठियाँ पड़ी थीं, जब वे दे चुकने के बाद मैंने चाहा कि एक बार आपसे मैं मिल लूँ और मैं स्वयं आपको आमंत्रण दूँ कि आप तब तक मेरा साथ दें जब तक······

—ओह, साथ !—बीच में ही अभया हँसकर बोल उठी—मगर साथ तब तक मैं न दे सकूँगी जब तक आप मुझे वह अवसर········

—कौन-सा अवसर······

—सो मैं पीछे बतलाऊँगी—अभया जरा खिंची-खिंची सी बोली—मगर मैं पूछती हूँ कि बाहर में चक्कर लगाते-लगाते

अपने बदन की क्या गत कर रखी है—इस पर भी कभी आपने खयाल किया है? क्या यह जीने का लक्षण है·········

ब्रजेंद्र अभया की बातों को सुन कर हस पड़ा और हँसते हुए ही बोला—जीने-मरने का प्रश्न हमारे सामने कहाँ है, अभया देवी! जो प्रश्न सामने हैं, उन्हें ही तो पूरा नहीं कर सकता······ मगर अभी इन सब बातों के लिए वक्त ही कहाँ हैं? आप तैयार हो लीजिए········

—तैयार!—अँगड़ाई भरते हुए अभया ने कहा—जितनी जल्दी आप सोच रहे हैं मुझ से वह जल्दी न हो सकेगी।

—क्यों? क्या कहती हैं आप?

—मैं जो कहती हूँ, ठीक कहती हूँ!—अभया ने ब्रजेंद्र की ओर देखते हुए कहा—आप जिस तरह तुरत तैयार हो उठते हैं, मैं तो उस तरह नहीं हो सकती········

—मगर हम लोगों को तुरत निकलना जो चाहिए!······वक्त पर स्टेशन पहुँचना है, ट्रेन पकड़नी है, इस तरह देर करने से ट्रेन तो पकड़ी नहीं जा सकती और अगर अभी ट्रेन न पकड़ी गई तो दिन भर फिर बेकार गया ही समझिए, फिर आप ही सोचिए, कैसे क्या कुछ होगा।

—जैसे होता है, हो लेगा—अभया खिंची हुई ही बोली—यह सब भार मुझ पर छोड़ दीजिए, मैं सँभाल लूंगी।

—आप?

—हाँ, मैं—मैं!

—तो लीजिए, मैं बैठा, अब आप ही जो आज्ञा कीजिए, किया जाय!

—अच्छा तो कपड़े उतारिए……

—क्यों, मैं तो नहा-धोकर आ रहा हूँ……

—तो फिर मुझे ही जाने दीजिए। आप तब तक आरा से बैठिए, अब तो बाबूजी भी बाहर से टहल कर आ जाएँगे।

अभया भीतर की ओर चल पड़ी, उसके रसोइए को बुल कर जलपान की चीजें तैयार करने को कह कर एक छोटा स पुर्जा लिखा, फिर उसे एक नौकर के हाथों थमा कर वह स्नान घ की ओर गई।

ब्रजेंद्र अकेला बैठा न रहा, उसने अपनी अटैची खोली उससे लेटरपैड निकाला और आवश्यक पत्र लिखने को बै गया। मगर जब वह इस तरह अपने कामों में संलग्न था, तभी डा० स्वरूप बाहर से बढ़ते हुए उसके सामने अचानक आकर बोल उठे—कल रात को हमलोग तुम्हारी चर्चा कर रहे थे, तभी मालू हुआ कि तुम दो-एक दिन में आनेवाले हो……

ब्रजेन्द्र उनके सम्मान में उठ खड़ा हुआ और अभिवादन-प्रदर्शित करते हुए बोल उठा—हाँ, बात सच थी, मैं कल रात को ही आश्रम में आ गया था……

—तो अभी कुछ दिन ठहरोगे ?

—ठहरना !— ब्रजेन्द्र हँसकर बोला—ठहरने का अवकाश ही कहाँ है ? वीरगंज में एक विराट सभा होने जा रही है। कुछ बाहर के नेतागण आ रहे हैं ! अभी वहीं चल कर आवश्यक प्रबन्ध करना है। मैं अभी वही आमंत्रण लेकर यहाँ आया था, अभया देवी……!

—अभयसे भेंट हो चुकी है ?

—हाँ, भेंट हो चुकी है, वह तैयार हो रही होंगी।

और तभी अभया भीतर से केशों पर कंघी फेरते हुए वहाँ आकर बोल उठी—देखिए न, बाबूजी, ब्रजेंद्र बाबू इत्ते दिनों पर आए भी हैं तो ये आपसे मिले बिना ही चले जाने को तैयार थे! मैंने ही इन्हें रोक रखा है!

—नहीं-नहीं, सो बात नहीं है, डा० साहब—ब्रजेंद्र हंसते हुए बोल उठा—यह कब हो सकता था कि मैं यहाँ आऊँ और आपसे मिले बगैर चलता बनूँ? अभयादेवी नहीं जानती हैं, मगर मैं तो जानता हूँ कि आप से मुझे कितना बल मिल रहा है? मैं कितना साहस पाता हूँ आपसे? आपके दो-एक शब्दों से? हम कार्यकर्ताओं को, जितनी और चीजों की जरूरत महसूस नहीं होती, उतनी हमें आप जैसे ज्ञान-वृद्ध की सद्भावना की आवश्यकता है, जो हमें आपसे मिला करती है।

डा० स्वरूप आराम कुर्सी पर आ बैठे और बैठते हुए स्थिर शांत स्वर में बोले—मानव-हृदय में खुद प्रेरक शक्ति मौजूद रहती है, पर किसी में वह जाग्रत रूप में रहती है और कहीं सुप्त! जहाँ जाग्रत रहती है, वहाँ केवल इशारा कर देना ही काफी होता है, ब्रजेन्द्र! पर जहाँ खुद वह शक्ति मूर्च्छित हो पड़ी है, वहाँ इशारा क्या, बड़े-बड़े प्रयत्न भी निष्फल हो पड़ते हैं और फल कुछ नहीं मिलता। पर मुझे खुशी है कि तुम में वह—यह शक्ति स्वयं जाग्रत है, सतत सचेतन है, वहाँ इशारा न भी किया जाय, अपना काम वह करेगी ही। तुमने साहस बंधाने की जो बात कही है, वह तो तुम्हारी शालीनता है! मगर तुम जैसे आज कितने कार्यकर्त्ता हैं जिन्हें इस बात का खयाल हो? फिर भी मैं उनकी प्रशंसा ही

करूंगा, जो कम-से-कम इतना तो करते हैं कि, वे अपने सुख-साधनों को तिलांजली देकर देश-सेवा की ओर उन्मुख हैं......

ब्रजेन्द्र ने डा० साहब की बातें सुनीं और वह उत्तर में कुछ कहा ही चाहता था कि, अभया बोल उठी—जल्दी जाना चाहते थे न ब्रजेन्द्र बाबू ? मगर बाबूजी के पास बैठ कर आप जो जल्दी जा सकेंगे—यह मैं जानती हूँ !

—नहीं नहीं—डा० स्वरूप हंस पड़े और हँसते हुए बोले—मैं कार्य में बाधक न बनूंगा अभय, मैं इन्हें रोकूंगा भी नहीं ! यह जब तक बैठे हैं तब तक ही इनके साथ मेरी बातें हैं ! क्यों, तुम तैयार हो गईं ?

—मैं तो कबकी तैयार हूँ ?

—तो फिर मुझे भी आप तैयार ही समझिए—बोल कर ब्रजेन्द्र उठ खड़ा हुआ।

—मगर इस तरह उठने से कैसे काम चलेगा, ब्रजेन्द्र बाबू ?—अभया बोल उठी—मैं तैयार ही कब हूं ? अभी तो हम लोगों का जलपान ही कहां हुआ ? बिना भरपेट खाए, आप जा सकते हैं, मगर मैं तो जा नहीं सकती !

—आप ऐसा न कहिए, अभया देवी !—ब्रजेन्द्र ने हँस कर ही कहा—इस वक्त आप यहाँ से भगा देना भी चाहेंगी तो मैं जा न सकूंगा—इतना आप को भी स्मरण रहना चाहिए। मैं खाकर ही जाऊंगा। जब आप मेरे जाने का भार ले चुकी है तब मुझे चिंता ही क्या ?

—धन्यवाद ! सुन कर प्रसन्नता हुई—कहती हुई अभया खिल-खिला कर हँस पड़ी। इसी समय जलपान की चीजें लेकर रसोइया

आया और टेबिलपर रख गया। अभया आई, तस्तरियों में चीजें चुनीं, एक व्रजेन्द्र की ओर बढ़ाई, दूसरी डा० साहब की ओर और एक आप लेकर बैठ गई। मगर डा० साहब ने जलपान की सामग्री व्रजेन्द्र की ओर बढ़ाते हुए कहा—मैं केवल चाय लेलूंगा—जलपान की चीजें तो तुम्हीं लो व्रजेन्द्र !

इसके बाद डा० स्वरूप ने अपने सामने इन दोनों को जलपान कराया। जलपान क्या-था, पूरा भोजन ही था। जलपान शेष भी न होने पाया था कि कार लेकर खुद आनंद आ पहुँचा और दालान में आते ही वह अभया से बोला—कार आपने मांगी थी, आपके सामने हैं। कहिए, कहां जाना है, मैं खुद पहुँचा दूँ।

—कार के लिए धन्यवाद—अभया मुस्कराती हुई बोली—मगर मैं आप को और कष्ट नहीं देना चाहती।

डा० स्वरूप आनन्द को अचानक पाकर अस्तव्यस्त हो उठे और उसे अपने पास के सोफे की ओर इशारा करते हुए कहा—अच्छे वक्त पर आए आनंद ! जलपान की चीजें धरी हैं, जलपान कर लो !...हाँ व्रजेन्द्र बाबू, आप को आनंद बाबू से परिचय है ?... शायद नहीं होगा......

तभी आनंद बोल उठा—मैं आप को पहचानता हूँ—आप जैसे नेता को कौन नहीं जानता, मगर आप मुझे पहचानेंगे......

—नहीं-नहीं—व्रजेन्द्र बोल उठा—मैं नेता नहीं, एक लघु सेवक मात्र हूं, आप जैसा समझ रहे हैं—यह तो आप का सौजन्य है, पर वास्तव वह नहीं है। और डा० साहब, आनंद बाबू के साथ सीधा मेरा परिचय न भी हो, मगर इनकी प्रशंसा सर्वत्र एक रस छाई है। आपने-अपने उद्योग और अपनी श्रम-शीलता से कृषि-प्रधान

—यह तो आप की अपनी इच्छा और रुचि पर ही निर्भर करता है।

—मगर आपकी रुचि का भी तो मुझे ध्यान रखना ही चाहिए! मैं आप को घबराहट में डाल कर अपनी रुचि पर प्रसन्नता प्राप्त करूं तो यह गर्हित स्वार्थ होगा। मैं ऐसा हरगिज पसंद नहीं करूंगी। यदि मैं यही बात पहले से जानती होती तो आप को परेशानियों में पड़ना न होता। लीजिए, आपकी खातिर चाल धीमी किए देती हूँ। अब तो आप प्रसन्न होंगे?

और यह कह कर अभया ने कार की गति बिलकुल धीमी कर दी। जो कार ८०-८५ की स्पीड में जा रही थी, अब केवल दस पर आलगी है; मगर इस पर आकर भी व्रजेन्द्र प्रसन्न नहीं है और वह तभी बोल उठता है—यह तो मुझ पर अतिशय अनुग्रह है, अभया देवी—इसे मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ और कदाचित् आप इसे भी स्वीकार करेंगी कि यह अनुग्रह मुझपर प्रदर्शित किए गए ममत्व का प्रतीक है। जो कार्य आप की प्रसन्नता का कारण था, उस प्रसन्नता का विसर्जन क्या मेरे दुख का कारण नहीं हो सकता, अभयादेवी? इस पर शायद आपने विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी। आप न समझें, किंतु मैं समझता हूँ कि ममत्वपूर्ण हृदय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य की विवेचन शक्ति नष्ट हो जाती है। किंतु मैं इसे पसंद नहीं करता। आप कार को उसी गति में जाने दें।

अभया जाने क्या सोचने में निमग्न थी, उसने व्रजेन्द्र की सारी बातें सुन कर भी लगा जैसे कुछ सुना ही नहीं। कार अब भी दस मील की स्पीड में ही चल रही थी, व्रजेन्द्र ने पाया कि अभया ने उसकी बातों पर अपना कुछ भी मंतव्य प्रकाश न किया तब वह बोल

उठा—इतनी धीमी गति में तो हम लोग वक्त पर पहुँच भी नहीं सकेंगे, अभयादेवी, स्पीड बढ़ाइए।

—क्या कहा, स्पीड बढ़ा दूँ ?—इस बार आश्चर्य-चकित दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए अभया ने कहा—क्या सच ही बढ़ाऊं ?

—हाँ, बढ़ाइए, सचही बढ़ाइए।

—कोई एक्सिडेंट हो जाय तो ?

—तो !...व्रजेंद्र कुछ क्षण रुका, फिर बोल उठा—उसकी कुछ पर्वा नहीं, मैं उसका भार अपने ऊपर लेता हूं। मैं लेता हूं भार अभया देवी ! सच, मैं लेता हूं।

इस बार व्रजेंद्र संभल कर बैठ गया, लगा जैसे मृत्यु को आलिंगन करने के लिए वह दृढ़ परिकर है !

—मगर मैं बढ़ा न सकूँगी।

—क्यों-क्यों, अभया देवी ?

—क्यों का उत्तर मैं बता नहीं सकती !

—नहीं, उसे बताना ही चाहिए, बताना ही चाहिए, अभया देवी,—व्रजेंद्र अधिक विनम्र होकर ही बोल उठा।

—मैं हारी, वह मेरा अभिमान था।

—यह क्या कह रही हैं, अभया देवी ?

—जो कह चुकी हूँ, वह सत्य है।

—मगर मैं इस गति में पहुँच नहीं सकूंगा, अभया देवी ! तीव्रता चाहे मैं न पसंद करूं; पर इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि मैं बिलकुल जड़ हो बैठूँ। मंजिल के लिए तीव्रता अपेक्षित न भी हो, मगर साधारणता तो चाहिए ही। और इतना साधारण नहीं कि वह जड़ता का प्रतीक हो उठे।

अभया इसबार हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—क्या सामने जो गाँव दीख रहा है, यही तो वीरगंज नहीं, ब्रजेंद्रबाबू ?

—ओह, आगया ?—ब्रजेंद्र ने इस बार सामने की ओर दृष्टि डाली और प्रसन्न होकर बोल उठा—हां, यही वीरगंज है, अभया देवी ! जो तिरंगा झंडा फहरा रहा है, वही सभास्थल है।

—तो क्या स्पीड बढ़ाऊँ ?—अभया हँस पड़ी।

ब्रजेंद्र भी इस बार हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा—अब आपकी स्पीड से मुझे भय नहीं, अभया देवी, मैं जानता हूं, अब खतरा नहीं है—अभी के लिए नहीं है; मगर अब जो भी आए—आए। वह चाहे जितना बड़ा हो क्यों न, उसके लिए मुझे चिंता नहीं, प्रसन्नता होगी—क्योंकि मैं जानता हूं, चालक आप हैं, आपका संचालन जिस दिशा की ओर हो, वहाँ खतरा भी आनंद का ही कारण होगा—इतना मुझे विश्वास है।

—विश्वास है ?—अभया ने हँसते-हँसते ही पूछा।

—हां, विश्वास है।

और तभी कार एक गढ़े पर उछल कर पार कर गई। ब्रजेंद्र ने चौंक कर पूछा—यह क्या था अभया देवी ?

—कुछ नहीं, साधारण खंदक था—अभया फिर हँसी—क्यों, डरे तो नहीं ?

—विश्वास अटल है, अभया देवी, फिर यह प्रश्न क्यों ?

अभया इस बार बोल न सकी, चुप हो रही। कार आकर खड़ी हो रही। जब बहुत से आदमी उस ओर आते दीख पड़े, तभी ब्रजेंद्र दरवाज़ा खोल कर बाहर निकलते हुए बोलउठा—उतरिए भी तो।

अभया उतर कर बोल उठी—चलिए ......

पंचदश परिच्छेद

वीरगंज की सभा का अधिवेशन बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुआ। बाहर के गण्यमान्य नेताओं के ओजस्वी भाषण अब भी वीरगंज की दिशा-विदिशाओं में प्रतिध्वनित हो रहे हैं। अधिवेशन समाप्त हो चुका है, नेतागण विदा हो चुके हैं। कार्यकर्त्ताओं में अब वह सरगर्मी नहीं रह गई है, चारो ओर शिथिलता छा गई है। जो चीजें संग्रह कर मंगवाई थीं वे अपनी-अपनी जगह पहुँचाई जा रही हैं; पर उमंग वह नहीं है, उत्साह वह नहीं है। फिर भी व्रजेन्द्र अपनी जगह अडिग है, वह यथास्थान सभी चीजों को पहुँचा कर ही विदा लेगा—उसकी विदा ही अंतिम विदा होगी। इसलिए वह चिंतित है, जरा उदासीन भी; फिर भी वह कार्य की जगह अटका हुआ है, अभया भी उसका साथ दे रही है।

किंतु अभया की कर्मोद्यत प्रकृति अवसाद-ग्रस्त हो उठी है। लगातार कर्मोन्माद में पड़ी अभया अपनी सफलता की पूर्णाहुति में उसी तरह तल्लीन है; पर तल्लीनता में व्याघात हो उठता है जब वह पाती है कि उसके सामने कार्य-संचालक व्रजेन्द्र स्थितप्रज्ञ जैसा पड़ा है। न वह चंचल है, न वह अशांत, उसकी शांति चिरशांति-जैसी कठोर हो उठी है। अभया नहीं चाहती कि वह इस तरह उसे शांत-मुद्रा में देखे! यह शांति उसे वांछित नहीं; वह अवांछणीय शांति में अपने नायक व्रजेन्द्र को देखना नहीं चाहती, न वह यहीं

चाहती है कि, वह व्रजेन्द्र जो स्वयं उसकी दृष्टि में उसका अभिन्न हो उठा है, अपने आप में हलचल से भिन्न होकर—रहित होकर—इतना स्थिर हो बैठे कि वह जड़ हो जाय ! वह चेतन को जड़ नहीं देखना चाहती, बल्कि सच तो यह कि वह जड़ को भी चेतन देखना चाहती है। उसे यह अपेक्षित है, उसके लिए यही वांछणीय भी। और तभी वह बोल उठती है—दिन-रात काम करते-करते काफी थकावट आ गई है, व्रजेन बाबू, चलिए न, कुछ दूर तक टहल आया जाय ! यह पहाड़ी प्रान्त मुझे अत्यधिक भाता है, वह जो पहाड़ के निकट झरना है, चलिए वहां तक, कुछ देर मन तो बहला लिए जाएँ ! क्यों ?

व्रजेन्द्र ने उसकी बातें सुनीं; पर तुरत उत्तर में कुछ कह न सका। वह अबतक सिर झुकाए जाने क्या सोच रहा था; पर उसे और अधिक सोचने का अवसर न मिला जब अभया पुनः बोल उठी—क्यों, बात क्या है, व्रजेन्द्र बाबू ? बोलते क्यों नहीं ? 'ना' या 'हाँ' कुछ भी तो कहिए ! जो जी चाहे........

—क्या मेरा जाना ठीक होगा ? ये जो काम करने को पड़े हैं...

—काम ?—अभया जरा रोष में ही बोली—इत्ते सारे लोग पड़े हैं, फिर ये सब काम में तो लगे ही हैं, तो क्यों न कुछ देर टहल लिया जाय।

—क्या आप अकेली नहीं जा सकतीं ?

—अकेली जाने में मुझे कोई भय नहीं—इतना तो आप भी समझ रहे हैं—अभया इसबार तन कर बोल उठी—मगर मैं पूछती हूं कि क्या आपने सब बातों को टालना ही निश्चय कर रखा है ? जो मैं कहूँ, उसे आप टालें ही—जब यही निश्चय है तो कहिए, फिर मैं आप से कुछ कहूंगी ही नहीं। जहाँ अपना ही देखना है और दूसरे

का नहीं, वहाँ कुछ कहना ही उसपर अन्याय लादना है। यदि यही सच हो तो कहिए, मैं वही करूँ!

इस बार ब्रजेंद्र हँस पड़ा, पर उसकी हँसी स्थिर न रह सकी। अभया ने पाया कि यह हँसी उसके हृदय की नहीं—बाहरी है, जो केवल किसी की प्रसन्नता का कारण मात्र हो सकती है, इससे कुछ अधिक नहीं। अभया इस बार कुछ बोली नहीं, वह उसकी ओर देखती रही; पर वह अधिक क्षण तक उसकी ओर देख न सकी। बीच ही में ब्रजेंद्र उठ खड़ा हुआ और उठते हुए ही बोल उठा—अब मैं तैयार हूं, अभया देवी! जित्ती देर चाहे—चलिए, टहला जाय।

—धन्यवाद, सुनकर मैं प्रसन्न हुई—अभया ने प्रसन्नता सूचक ध्वनि में मुस्कराते हुए कहा।

दोनों चल पड़े। संध्या होने में कुछ ही देर थी, सूर्य पहाड़ की आड़ में जा चुका था, मगर पश्चिमांचल आकाश पर लालिमा बिखरी पड़ी थी। दोनो उसी ओर जा रहे थे; मगर दोनों बढ़ते हुए जा रहे थे, धीमी गति में, बिलकुल निस्तब्ध, बिलकुल नीरव। अभया चाहती थी कि गति में तीव्रता लेकर पहाड़ की चोटी तक जा पहुंचे, जहां से वह डूबते हुए सूर्य को क्षितिज की रेखा पर पा सके; पर ब्रजेंद्र की गति मंथर थी, वह अब भी जाने क्या सोच रहा है! पता नहीं, वह क्यों इतना, इस तरह, उलझा-उलझा-सा है। पहाड़ के निकट पहुंचते-पहुंचते ही ब्रजेंद्र बोल उठा—विस्फोटक की बात एक दिन डाक्टर साहब ने कही थी, अभया देवी, शायद आपको भी याद होगा।

—हाँ, याद है।—अभया ब्रजेंद्र की आकृति की ओर देख-

चाहती है कि, वह ब्रजेन्द्र जो स्वयं उसकी दृष्टि में उसका अभिन्न हो उठा है, अपने आप में हलचल से भिन्न होकर—रहित होकर—इतना स्थिर हो बैठे कि वह जड़ हो जाय ! वह चेतन को जड़ नहीं देखना चाहती, बल्कि सच तो यह कि वह जड़ को भी चेतन देखना चाहती है। उसे यह अपेक्षित है, उसके लिए यही वांछणीय भी। और तभी वह बोल उठती है—दिन-रात काम करते-करते काफी थकावट आ गई है, ब्रजेन बाबू, चलिए न, कुछ दूर तक टहल आया जाय ! यह पहाड़ी प्रान्त मुझे अत्यधिक भाता है, वह जो पहाड़ के निकट झरना है, चलिए वहां तक, कुछ देर मन तो बहला लिए जाएँ ! क्यों ?

ब्रजेन्द्र ने उसकी बातें सुनीं; पर तुरत उत्तर में कुछ कह न सका। वह अबतक सिर झुकाए जाने क्या सोच रहा था; पर उसे और अधिक सोचने का अवसर न मिला जब अभया पुनः बोल उठी—क्यों, बात क्या है, ब्रजेन्द्र बाबू ? बोलते क्यों नहीं ? 'ना' या 'हाँ' कुछ भी तो कहिए ! जो जी चाहे........

—क्या मेरा जाना ठीक होगा ? ये जो काम करने को पड़े हैं...

—काम ?—अभया जरा रोष में ही बोली—इत्ते सारे लोग पड़े हैं, फिर ये सब काम में तो लगे ही हैं, तो क्यों न कुछ देर टहल लिया जाय।

—क्या आप अकेली नहीं जा सकतीं ?

—अकेली जाने में मुझे कोई भय नहीं—इतना तो आप भी समझ रहे हैं—अभया इसबार तन कर बोल उठी—मगर मैं पूछती हूं कि क्या आपने सब बातों को टालना ही निश्चय कर रखा है ? जो मैं कहूँ, उसे आप टालें ही—जब यही निश्चय है तो कहिए, फिर मैं आप से कुछ कहूंगी ही नहीं। जहाँ अपना ही देखना है और दूसरे

का नहीं, वहाँ कुछ कहना ही उसपर अन्याय लादना है। यदि यही सच हो तो कहिए, मैं वही करूँ!

इस बार ब्रजेंद्र हँस पड़ा, पर उसकी हँसी स्थिर न रह सकी। अभया ने पाया कि यह हँसी उसके हृदय की नहीं—बाहरी है, जो केवल किसी की प्रसन्नता का कारण मात्र हो सकती है, इससे कुछ अधिक नहीं। अभया इस बार कुछ बोली नहीं, वह उसकी ओर देखती रही; पर वह अधिक क्षण तक उसकी ओर देख न सकी। बीच ही में ब्रजेंद्र उठ खड़ा हुआ और उठते हुए ही बोल उठा—अब मैं तैयार हूं, अभया देवी! जित्ती देर चाहे—चलिए, टहला जाय।

— धन्यवाद, सुनकर मैं प्रसन्न हुई—अभया ने प्रसन्नता सूचक ध्वनि में मुस्कराते हुए कहा।

दोनों चल पड़े। संध्या होने में कुछ ही देर थी, सूर्य पहाड़ की आड़ में जा चुका था, मगर पश्चिमांचल आकाश पर लालिमा बिखरी पड़ी थी। दोनो उसी ओर जा रहे थे; मगर दोनों बढ़ते हुए जा रहे थे, धीमी गति में, बिलकुल निस्तब्ध, बिलकुल नीरव। अभया चाहती थी कि गति में तीव्रता लेकर पहाड़ की चोटी तक जा पहुंचे, जहां से वह डूबते हुए सूर्य को क्षितिज की रेखा पर पा सके; पर ब्रजेंद्र की गति मंथर थी, वह अब भी जाने क्या सोच रहा है! पता नहीं, वह क्यों इतना, इस तरह, उलझा-उलझा-सा है। पहाड़ के निकट पहुंचते-पहुंचते ही ब्रजेंद्र बोल उठा—विस्फोटक की बात एक दिन डाक्टर साहब ने कही थी, अभया देवी, शायद आपको भी याद होगा।

—हाँ, याद है।—अभया ब्रजेंद्र की आकृति की ओर देख-

कर बोल उठी—मगर यह बात अभी कैसे याद आई ?

व्रजेंद्र शिला-खंड पर बैठ गया, अभया उसी के पास खड़ी थी, व्रजेंद्र बोल उठा—वह बात मैं भूलता कब हूँ, अभया देवी? मैं तो पाता हूँ कि डाक्टर साहब का अनुमान कुछ गलत नहीं है! सूक्ष्म दृष्टि काल की नाड़ी को पहचानती है और मैं पाता हूँ कि उस नाड़ी में भीतर-भीतर इतनी गर्मी पहुंच चुकी है कि, वह स्थिर चल नहीं सकती, वह फटेगी ही·······

अभया इस बार उसकी बातों पर हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही उसी जगह बैठती हुई बोली—मैं पूछती हूं कि इन उल-जलूल बातों को आप अगर न सोचें तो क्या काम न चले! एक बाबूजी हैं जिन्हें बोलने का मर्ज है! उनकी तबीयत दूसरी और किसी बात से बहलती नहीं। वे जब कहेंगे तो ऐसी ही बातें कहेंगे। जानें इन सब बातों में ही उनका दिमाग उलझा रहता है; मगर उनके लिए मुझे चिंता नहीं। जानती हूँ, वे बूढ़े हैं और बूढ़ों को मरने की चिंता सबसे पहले होती है, जिस के लिए उन्हें क्षमा किया जा सकता है। मगर आप के मुख से ऐसी बातें सुनने के लिए मैं हर्गिज तैयार नहीं। मैं जानती हूं कि यह शुभ लक्षण नहीं। आप जैसे कर्मठ व्यक्तियों के दिमाग में ऐसी बातें घुस कर परेशान किए रहें—मैं इसे हर्गिज नहीं चाहती। क्या यह मृत्यु का लक्षण नहीं है?

व्रजेंद्र अभया की बातों पर एक हलकी-सी हँसी हँस पड़ा, फिर बोल उठा—बूढ़ों की सभी बातें बिलकुल निराधार होती हैं और उन्हें मृत्यु की चिंता ही अधिक रहती है, यह सच हो भी, पर मैं इसे ऐसा नहीं समझता। केवल मैं उनकी बातों पर ही पूर्णरूप

से विवेचन नहीं करता, अभया देवी, मैं तो अपनी कहता हूं, चाहे हम बाहर-बाहर जितनी उम्मीदें लिए बैठे रहें, मगर मुझे लगता है कि आज की युद्ध जनित परिस्थितियों से देश में जो अवसाद घर कर गया है, वह बाहर से चाहे जितना स्थिर और शांत जान पड़े, पर उसके अंतराल में ऐसी धधकती हुई आग है कि वह फूट कर निकलेगी ही और उस आग से सारा देश जल-भुन कर तबाह होगा। यह सुदूर भविष्य की बात मैं नहीं कहने जा रहा, मैं पाता हूँ कि दो दिन-दस दिन के भीतर—हाँ, सच है, इससे अधिक और न होगा, कुछ होकर ही रहेगा—और जो कुछ होगा—उसकी ठीक-ठीक कल्पना अभी नहीं की जा सकती। उसका रूप, उसकी आकृति जो भी हो, मगर चीज एक ही रहेगी, उसमें अंतर न आयगा।

अभया को व्रजेंद्र की बातों पर विश्वास न हुआ, इसलिए वह एक अवज्ञा की हँसी हँस पड़ी, लगा जैसे वह अपनी हँसी में व्रजेंद्र के मन की सारी चिंताओं को डुबो डालेगी; पर व्रजेंद्र पर उसका कुछ भी प्रभाव दीख न पड़ा। वह उसी तरह अभया की ओर देखता रहा, तभी अभया बोल उठी—यह उद्विग्न करने-वाली बात आपके मुख से मैं सुना नहीं चाहती व्रजेन बाबू! जैसा समय आवेगा—देखा जायगा। उसके लिए इतना पहले से चिंतित हो उठना क्या उचित हो सकता है? जिन बातों पर अपना कुछ जोर नहीं, जो स्वयं आप-से-आप पैदा होती हैं, उनका आप-से-आप अंत भी होता है—फिर ऐसी बातों में अपने को उलझाए रखना ठीक नहीं। फिर आप जैसे व्यक्ति के मुख से जिनका जीवन ही सदैव एक खिलौना रहा है........

—जीवन एक खिलौना है—इस बार ब्रजेंद्र प्रसन्नता की हँसी में हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोल उठा—यही मैं सुना चाहता था, अभया देवी, यही मैं सुना चाहता था। जो जीवन को खिलौना से अधिक महत्त्व नहीं देता, उसके लिए दुख-सुख, विपत्ति-संपत्ति, हानि-लाभ और जीवन-मरण में फिर अंतर ही क्या रह जाता है ! दुख आए तो सुख आए तो, दोनों अवस्थाओं में वह समान है, दोनो अवस्थाएँ उसके लिए समान हैं, फिर वह कुछ करके ही क्यों न मरे और वह कुछ ऐसा हो—जो जीवन का एक संदेश हो, जो आनेवाली पीढ़ी को आगे बढ़ाए, आगे बढ़े हुए को और आगे बढ़ने की ओर बढ़ावा दे, हिम्मत बंधाए और जो स्वयं भू-लुंठित है, उसे फिरसे उठ बैठने को प्रोत्साहित करे। यदि इतना भर हुआ तो मानो सब कुछ हुआ, वह मरकर भी अमर है······मगर मैं यह भी नहीं चाहता, मैं तो केवल यही चाहता हूं कि मरूं और मर कर देखूं कि जीवन क्या था और मृत्यु क्या है !········और यह तभी हो सकता है, जब अचानक कोई विस्फोटक फटे और ऐसी जगह फटे जब मैं अपने कर्म कठोर जीवन में उलझा-जैसा रहूं, जब मुझे खुद अपने आप पर सोचने-विचारने का भी अवकाश न रह जाय···जब मैं स्वयं डूबा हुआ रहूँ······क्या ऐसा जीवन तुम्हें पसंद आयगा अभया देवी! ऐसे जीवन की ओर तुम········

—यह जीवन, यह जीवन!—अभया अपने आवेश में आकर बोल उठी—मैं नहीं कह सकती, मैं पसंद करती या नहीं, कैसे कहूं कि वह जीवन क्या है? जिसमें जीवन-मृत्यु, विषाद-आनंद स्वयं एकाकार हो उठता है; मैं नहीं जानती, वह क्या है! पर

क्या आप इसे पसंद करते हैं—करते हैं व्रजेन बाबू ?

—यह मैं खुद कहा नहीं चाहता, यह तो स्वयं काल ही बतलायगा अभया देवी—व्रजेंद्र प्रसन्न-मुख बोल उठा—मगर उस समय मैं कहाँ हूँगा, तुम कहा होगी······नहीं-नहीं, यह गलत बात, इसकी ही अपेक्षा क्यों रहे······जब कि सारी अपेक्षाएँ मैं नहीं, नहीं कह सकता कि सारी अपेक्षाएँ मुझसे खो चुकी हैं······

अभया को लगा जैसे व्रजेंद्र उसकी ओर खिंच आकर भी उससे दूर हो रहा है, वह व्रजेंद्र जो सारी अपेक्षाओं से अपने को मुक्त समझ रहा है। क्यों वह आज इतना कठोर कर्मा है ? क्यों आज वह जीवन-मृत्यु की ओर से इतना अचंचल है ? क्यों उसे अपने जीवन से मोह नहीं रह गया ? क्यों ऐसा जीवन इसका है जिसमें कोई साध नहीं, कोई प्रत्याशा नहीं, कोई अपेक्षा नहीं ? निरपेक्ष अवस्था संतों की अवस्था है, वह अवस्था हम सांसारिकों के लिये नहीं है जिन्हें संघर्षों के भीतर से गुजरता है, जिन्हें सम्पत्ति-विपत्तियों को साथ-साथ लेकर चलना है......अभया और अधिक सोच न सकी, वह व्रजेन्द्र के हाथ को अपने हाथ में लेकर बोल उठी—जो अपनी सारी अपेक्षाओं से स्वयं ऊपर है, उसके सामने मैं और तुम का प्रश्न ही क्या ? मगर मैं......कह नहीं सकती कि मैं उस समय अपनी आंखों, उस विस्फोटक के फटने के समय, देख सकती कि मैं भी वहीं हूँ जहाँ आप हैं...... हाँ, इतना भर देख पा सकती !......

—क्या सच, अभया, तुम देखना चाहती हो वह समय—वह समय, जब विस्फोटक फटेगा ? जब मैं और तुम उसके भीतर रहेंगे... जब मैं और तुम........सच बताओ, अभया, देख सकोगी वह,

इन खुली आंखों से देख सकोगी वह ?......

अभया का हाथ मृदु से कठोर हो उठता है—व्रजेन्द्र से यह छिपा नहीं रहता, अभया की आँखें सजल हो उठती हैं और ओठों पर एक मृदु कंपन हो उठता है और वह वाष्प-गद्गद कंठ से कह उठती है—अंतरिक्ष के प्रभु साक्षी हैं—यही मेरी आकांक्षा है...

—यह आकाँक्षा !—व्रजेन्द्र अपना हाथ खींच लेता है और उसकी दृष्टि में अपनी दृष्टि डाल कर बोल उठता है—वह आकाँक्षा, अभया, मैं क्या सुन रहा हूँ ? क्या देख रहा हूँ ? किंतु तुम्हें क्या पता है कि मैं कितना निःस्व हूँ ? मेरा हृदय कितना निःस्व है !...

—निःस्व ?—अभया खिलखिलाकर हंस पड़ती है, उसकी उन्मुक्त खिलखिलाहट से वहाँ की प्रकृति मुखरित हो उठती है !

—हाँ, निःस्व हूँ अभया, आज अपना कह कर पुकारने वाला मेरे सामने नहीं रह गया। मैं सभी दिशाओं में निःस्व हूँ।

अभया व्रजेंद्र की बातों से आकुल हो उठती है,वह समझ नहीं पाती कि कैसे वह समझाए कि उसका पूछनेवाला कोई न हो, मगर अभया है जो आमरण उसे पूछने केलिए अपने को प्रस्तुत कर चुकी है, वह आमरण उसे छोड़ना नहीं चाहती—वह तब भी छोड़ना नहीं चाहेगी जब वह स्वयँ मृत्यु-दूत से दो-दो पकड़ लड़ता-जूझता रहेगा ! किंतु वह अभया कैसे समझाए कि वह उसके लिए क्या है, क्या होकर उसकी छाया का अनुसरण कर रही है वह ! अभया की वाणी स्वयं पंगु हो उठी अपने आप को व्यक्त करने से, वह कुछ न बोल सकी; किंतु उसकी सजल उज्ज्वल आँखें अपने उत्सर्ग के मुक्ताकणों को उसके फैले हाथों में डाल कर स्वयं बता गईं कि वह क्या है ? व्रजेन्द्र को यह समझते देर न लगी, उसने पाया कि अभया जो

उसके निकट बैठी है, कितनी संवेदनशील है! अभया का यह रूप उसके लिए अभिनव था। उसने अभया को जाना था, जाना था कि वह कर्म-कठोर प्रवाह में बहने वाली एक प्रखर झंझा है जिस में आवेग है, उद्वेग है, गति शीलता है, चपलता है और उद्दाम कार्य-करी शक्ति है, जिस में दया से अधिक स्वाभिमान है, जिसमें सहृदयता से अधिक कठोरता है, जो बात-बात में किसी को मूर्ख बना देने की क्षमता रखती है; पर वह यह कदापि नहीं जानता था कि वह तो अभया की बाहरी दिशा है जो सदैव कठोर रही है, पर उसका अंतर इतना मृदु, इतना कोमल, इतना सुकुमार और इतना भाव-प्रवण भी होगा—इस ओर उसकी दृष्टि ही कब गई थी?........

ब्रजेन्द्र ने एक बार साहस कर अभया की ओर देखा। संध्या का अंधकार घना हो आया है, द्वितीया का चाँद पहाड़ की ओट में जा छिपा है, इसलिये उस सघन अंधकार में अभया एक तपस्विनी की निर्विकार छाया जैसी हो उसकी दृष्टि में उतर आयी—हाँ, बिलकुल छाया-सी, अचल, अटल, निर्विकार एक रस, अचंचल! ब्रजेंद्र का हाथ स्वतः उसके हाथ से टकराया, और उसे अपनी मुट्ठी में भर कर बोल उठा—क्यों, अभया, तुम कुछ बोल नहीं रहीं, क्या सोच रही हो?

इस बार अभया अचंचल से चंचल हुई; पर उसने अपना हाथ उसकी मुट्ठी से खींचा नहीं, वह बोल उठी—क्या सोच रही थी, मैं स्वयं कुछ नहीं जानती; मगर मैं यह जानना चाहती हूँ कि जीवन में केवल कर्म ही अपेक्षित है या और कुछ? और यदि और कुछ भी होता तो उसका ग्रहण क्या अनुचित होगा?

—क्या अनुचित और क्या उचित है, इसका विवेचन मुझ

से न हो सकेगा, अभया—व्रजेंद्र कुछ क्षण रुका, फिर सहज गति में बोलता चला—उचित-अनुचित को छोड़ कर जीवन में जिस व्रत का व्रती हो चुका हूँ, उससे अधिक मेरे लिए कोई भी काम्य नहीं रह गया है। जीवन जिस मातृभूमि के लिए उत्सर्ग है, वह उसीके लिए सुरक्षित है और जो स्वयं उत्सर्ग हो चुका है, उसके लिए फिर दूसरा प्रश्न ही क्या रह जाता! मैं अपने कर्त्तव्य में सच्चा रहूँ, इमान्दार रहूँ, आपद में, विपद में एक रस रह कर यदि अपनी सेवा, सच्चे अर्थ में समर्पित कर सकूँ तो मेरे लिए इससे बढ़ कर और आनंद का कारण दूसरा न होगा।

अभया उसके उत्तरों को सुन कर प्रसन्न न सकी। उसकी मनोदशा पर इतना द्रुत परिवर्त्तन पाकर अभया स्वयं संक्षुब्ध हो उठी। संक्षुब्ध का कारण व्रजेंद्र न जान सका, वह इस ओर प्रवृत्त भी न था। इसी बीच अभया ने धीरे से अपना हाथ कब खींच लिया, उसे इसका भी ध्यान न रहा। अभया इस बार दूसरी ओर देखने लगी; पर अंधकार में वह कुछ और न पा सकी। अभया कुछ बोली नहीं, कुछ हिली नहीं; पर उसके अन्तस्तल में एक ही साथ जैसे अनेक भावों का संघर्ष छिड़ गया। वह किसे पकड़े, किसे छोड़े—यह उसकी शक्ति के परे था। उसके मुंह से अचानक निकल गया—तुम बड़े पाषाण हो। व्रजेंद्र ने सरल गति में ही स्वीकार किया—हाँ, अभया, सच कहती हो, मैं पाषाण हूँ।

—पाषाण होना ही स्वाभाविक है मेरे लिए अभया!—व्रजेंद्र इस बार अत्यंत कोमल होकर बोल उठा—जिसने कभी ममता पायी न हो, जिसने दया का सौम्य रस आस्वादन कभी कर नहीं

पाया, जो सदैव अकिंचन बनकर, अकिंचन जैसा रहकर अपने को सब तरह से अलग रखता आया, उससे तुम ममता पाने की, दया पाने की आशा नहीं रख सकतीं, अभया देवी !

अभया उत्तर में कुछ न बोल सकी। उसका मन चंचल था, इसलिए वह उठ खड़ी हुई और खड़ी होकर बोल उठी—रात कुछ अधिक हो आई है, अब चलना ही ठीक होगा।

—हाँ, चलना ही ठीक होगा—कहकर ब्रजेंद्र भी उठा और चल पड़ा। अभया भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ी।

रास्ते में एक जगह नाला पड़ता था। दिन के प्रकाश में वह उतना भयंकर न था, पानी का धार पतला तो था, मगर दोनों ओर के किनारे बहुत ही ऊँचे और उठे हुए थे। रास्ता क्या था, पंग-डंडी थी जिस पर संभल कर चलना पड़ता था, जरा भी पैर जमा नहीं कि घुलट कर नीचे गिरने की बारी थी। ब्रजेन्द्र को इसका खयाल था। जैसे ही वह आगे बढ़ते-बढ़ते उक्त स्थान पर आया वैसे ही अभया को सावधान करते हुए, अपनी स्तब्धता को भंग कर वह बोल उठा—अब उसी स्थान पर आगई हो अभया देवी, जब दिन को ही तुम गिरने-गिरने को हो चुकी थीं। सावधान होकर चलो।

—ओह, हम लोग आगए उस जगह पर ?—अभया जैसे चौंक कर ही बोल उठी—मगर इस वक्त मैं उस तरह जा नहीं सकूँगी, मुझे अवलंब चाहिए—चाहिए ही।

और ऐसा कह कर अभया ने अपना दांया हाथ उसके गले में डाल कर कहा—अब चलिए, निर्विघ्न अब मैं पार कर जाऊँगी।

और इस तरह दोनो आगे बढ़े। दूसरा कोई समय होता तो

षोड़श परिच्छेद

युद्धजन्य परिस्थिति से देश की दशा में असाधारण परिवर्त्तन आ गया है; पर यह परिवर्त्तन दिनानुदिन भयंकरता की ओर अग्रसर होते जा रहा है। फसलें अब भी उतनी ही पैदा होतीं जितनी धरती माता पहले से ही देती आ रही है; पर ये फसलें तैयार भी न हो पातीं कि दुगुने-तिगुने दामों पर खलिहानों में ही खरीदार मौजूद ! मवेशियों का भी वही हाल है ! पचास-पचहत्तर से सवासौ, सवासौ से पौने दोसौ और इसी तरहके अनुपात में उनके दाम बढ़ते जा रहे हैं। बेचने वाले बेचने के वक्त नहीं सोचते कि इसका अंतिम परिणाम कहाँ जाकर टिकेगा ! काश्तकारों को देखने में रुपए तो बहुत मिल रहे हैं, पर उन्हें उनसे भी अधिक जीवन के और अन्य उपयोगी चीजों के खरीदने में लगाने पड़ रहे हैं। कोई चीज ऐसी नहीं जो कहने को भी सस्ती कही जा सके, कोई चीज ऐसी नहीं जो सुलभ हो ! गृहस्थ स्वयं अन्न पैदा करते हैं, पर उनके घर अनाज ठहर नहीं पाते। भूख की ज्वाला बढ़ रही है, मजदूर और नौकरी पेशा के आदमी संत्रस्त हो रहे हैं, साधारण स्थिति के आदमी समझ नहीं पाते कि वे आगत भविष्य का किस तरह सामना कर सकेंगे। इसी समय विश्वव्यापी युद्ध के लिए आदमियों की मांग होती है, सरकार की ओर से उन्हें अच्छे-अच्छे

प्रलोभन दिए जाते हैं, स्थान-स्थान पर इस कार्य के लिए अनेक रूप में एजेंट रख छोड़े गए हैं। वे या तो उपाधिधारी रईस, जमींदार या बड़े रुतबे के व्यक्ति हैं या छोटे-बड़े ओहदे के हाकिम, जो देहातों में जाकर अमन-सभा करते हैं, लोगों को युद्ध के लिए प्रलोभित करते—उन्हें बढ़ावा देते और उनका उत्साह बढ़ाते हैं। उनकी दोधारी तलवार चल रही है। एक ओर महँगी, दूसरी ओर प्रलोभन; एक ओर अकाल का तांडव, दूसरी ओर युद्ध में सम्मान-प्रद नौकरियों में मन चाहे वेतन और अन्य सुविधाएँ प्राप्त ! फिर भारतवर्ष जैसा दार्शनिक प्रदेश, जिसकी दृष्टि में सम्राट इस भू-पर स्वयं जाग्रत भगवान समझा जाता है !! तो फिर क्यों न जाग्रत भगवान के आह्वान पर वे अपने को पूर्णतः न्यौछावर करने को तैयार हों ! एक पंथ दो काज ! सेवा की सेवा भी और जीवन की मधुमयी आकांक्षाओं को फलने-फूलने का सुंदर सुअवसर ! इधर अकाल सिर पर, अन्न के लिए जहाँ त्राहि-त्राहि मची हुई है, मुश्किल से जो एक संध्या भोजन कर पाता है, उसके लिए क्या बुरा है ! यदि वह अपने आप में शारीरिक शक्ति रखता है तो युद्ध का आनंद वह क्यों न ले ! और इस तरह जो जहाँ है, वहीं से युद्ध की ओर दौड़ पड़ा है। कालेज के शिक्षार्थी, स्कूल के विद्यार्थी, डाक्टर-कंपाउंडर, ओवरसियर, लोहार, बढ़ई, मजदूर, धोबी, चमार—आखिर सभी की तो जरूरत है युद्ध-क्षेत्र के लिए! लेफ्टिनेंट से युद्ध मैदान के कुली तक—आदमी चाहिए—बस आदमी चाहिए, किसी भी रूप में, किसी भी शकल में, किसी भी वय के हो, किसी भी अवस्था में—आदमी चाहिए और इस तरह के आदमी दौड़ पड़े हैं—युद्ध-क्षेत्र की ओर, घर की माया-ममता

षोड़श परिच्छेद

युद्धजन्य परिस्थिति से देश की दशा में असाधारण परिवर्त्तन आ गया है; पर यह परिवर्त्तन दिनानुदिन भयंकरता की ओर अग्रसर होते जा रहा है। फसलें अब भी उतनी ही पैदा होतीं जितनी धरती माता पहले से ही देती आ रही है; पर ये फसलें तैयार भी न हो पातीं कि दुगुने-तिगुने दामों पर खलिहानों में ही खरीदार मौजूद! मवेशियों का भी वही हाल है! पचास-पचहत्तर से सवासौ, सवासौ से पौने दोसौ और इसी तरहके अनुपात में उनके दाम बढ़ते जा रहे हैं। वेचने वाले वेचने के वक्त नहीं सोचते कि इसका अंतिम परिणाम कहाँ जाकर टिकेगा! काश्तकारों को देखने में रुपए तो बहुत मिल रहे हैं, पर उन्हें उनसे भी अधिक जीवन के और अन्य उपयोगी चीजों के खरीदने में लगाने पड़ रहे हैं। कोई चीज ऐसी नहीं जो कहने को भी सस्ती कही जा सके, कोई चीज ऐसी नहीं जो सुलभ हो! गृहस्थ स्वयं अन्न पैदा करते हैं, पर उतके घर अनाज ठहर नहीं पाते। भूख की ज्वाला बढ़ रही है, मजदूर और नौकरी पेशा के आदमी संत्रस्त हो रहे हैं, साधारण स्थिति के आदमी समझ नहीं पाते कि वे आगत भविष्य का किस तरह सामना कर सकेंगे। इसी समय विश्वव्यापी युद्ध के लिए आदमियों की मांग होती है, सरकार की ओर से उन्हें अच्छे-अच्छे

प्रलोभन दिए जाते हैं, स्थान-स्थान पर इस कार्य के लिए अनेक रूप में एजेंट रख छोड़े गए हैं। वे या तो उपाधिधारी रईश, जमींदार या बड़े रुतबे के व्यक्ति हैं या छोटे-बड़े ओहदे के हाकिम, जो देहातों में जाकर अमन-सभा करते हैं, लोगों को युद्ध के लिए प्रलोभित करते—उन्हें बढ़ावा देते और उनका उत्साह बढ़ाते हैं। उनकी दोधारी तलवार चल रही है। एक ओर महँगी, दूसरी ओर प्रलोभन; एक ओर अकाल का तांडव, दूसरी ओर युद्ध में सम्मान-प्रद नौकरियों में मन चाहे वेतन और अन्य सुविधाएँ प्राप्त ! फिर भारतवर्ष जैसा दार्शनिक प्रदेश, जिसकी दृष्टि में सम्राट इस भू-पर स्वयं जाग्रत भगवान समझा जाता है !! तो फिर क्यों न जाग्रत भगवान के आह्वान पर वे अपने को पूर्णतः न्यौछावर करने को तैयार हो ! एक पंथ दो काज ! सेवा की सेवा भी और जीवन की मधुमयी आकांक्षाओं को फलने-फूलने का सुंदर सुअवसर ! इधर अकाल सिर पर, अन्न के लिए जहाँ त्राहि-त्राहि मची हुई है, मुश्किल से जो एक संध्या भोजन कर पाता है, उसके लिए क्या बुरा है ! यदि वह अपने आप में शारीरिक शक्ति रखता है तो युद्ध का आनंद वह क्यों न ले ! और इस तरह जो जहीं है, वहीं से युद्ध की ओर दौड़ पड़ा है। कालेज के शिक्षार्थी, स्कूल के विद्यार्थी, डाक्टर-कंपाउंडर, ओवरसियर, लोहार, बढ़ई, मजदूर, धोबी, चमार—आखिर सभी की तो जरूरत है युद्ध-क्षेत्र के लिए! लेफ्टिनेंट से युद्ध मैदान के कुली तक—आदमी चाहिए—बस आदमी चाहिए, किसी भी रूप में, किसी भी शकल में, किसी भी वय के हो, किसी भी अवस्था में—आदमी चाहिए और इस तरह के आदमी दौड़ पड़े हैं—युद्ध-क्षेत्र की ओर, घर की माया-ममता

भुलाकर !! यह सर्वनाशी युद्ध कितना प्रलयंकर है—कितना भयंकर………

मगर जो मनस्वी हैं, जो विचारक हैं, जो बुद्धि-जीवी हैं, वे अत्यंत चिंतित हैं। उनकी चिंता साधारण नहीं, अतल तलस्पर्शी हैं। वे देखते हैं वर्त्तमान को ही नहीं, आगत भविष्य की ओर, जहाँ पहुंच कर वे पाते हैं कि यह जीवन तो जीवन नहीं है ! कुत्ते की मौत मरना……नहीं, ऐसे तो नपुंशक मरा करते हैं, हिजड़े इस तरह मरना पसंद करेंगे। मनुष्य तो मनुष्य की तरह मरना पसंद करेगा ! मगर मनुष्य मरे ही क्यों इस तरह ? क्यों न वह अपना विक्षोभ प्रकट करे उसके प्रति जो उसे वाध्य करता है मरने के लिए ? नहीं, वह विक्षोभ प्रकट करेगा ही, विद्रोह करेगा ही, क्रांति लायगा ही ! आखिर क्रांति का जन्म भी तो इसी अवस्था में—इसी परिस्थिति में ही तो होता है ! विद्रोह का उद्गम भी तो वही जगह है, जहाँ मनुष्य को वर्वर वनाने की चेष्टा की गई है ! सहने की भी एक सीमा होती है और उसी के भीतर वह एक गुण समझा जा सकता है; पर जब सहना अशक्य हो उठता है, तव वहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं रह जाता; पाप-पुण्य का विचार नहीं रह जाता। उस समय रोष उवल पड़ता है, फिर उस अवस्था में किसे इतनी फुर्सत है कि वह सोच देखे—वह क्या है और उसकी शक्ति कितनी है ! वह कूद पड़ता है मैदान में, फल चाहे जो हो—उस ओर उसका ध्यान ही कहाँ रह जाता………

वे मनीषी—वे द्रष्टा अपने अंतर्चक्षुओं के सामने पाते हैं कि क्षुब्ध पृथिवी की वुभुक्षा इतनी प्रवल हो उठी है कि वह वलिदान

लेकर ही शांत होगी, मगर बलिदान का आह्वान किस रूप में हो—इसी ओर उनका ध्यान लगा है। वे चाहते हैं, क्यों न मूल में ही कुठाराघात किया जाय। न मूल रहेगा, न शाखाएँ पनपेंगी पर मूल का विनाश क्या इतना संभव है?......नहीं, संभव असंभव का विचार मनस्वी नहीं किया करते, वे तो केवल करना जानते हैं, जो उसकी दृष्टि में महत् है, जो उनकी दृष्टि में विराट है। उनकी केवल अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि रहती है, केवल दृष्टि ही नहीं, उनकी युक्तिभी रहती है और वे अपनी दृष्टि और युक्ति से उसे संपन्नता की ओर ले जाने को तत्पर हो उठते हैं। आज देश की आत्माओं का एक ही स्वर है, एक ही ध्येय है........ अतीत का इतिहास उन्हें यही बताता है......वर्त्तमान की परिस्थिति उन्हें ऐसा करने को सतत लाचार कर रही है—आगत की आशंका उनके मस्तिष्क में उत्तेजना भर रही है........

यही संचित विस्फोटक है, जो फटना चाहता है जिसकी ओर मनीषियों का ध्यान जा लगा है। डा० स्वरूप यही सोचते हैं, व्रजेंद्र भी यही सोचता है, उसकी कर्मपद्धति अवरुद्ध हो गई है। वह अपनी दृष्टि के सम्मुख पाता है कि द्रुतवेग से अचानक जो भयंकरता आगई है, उसका हेतु क्या है? हेतु को ही वह पकड़ना चाहता है, हेतु पर ही वह प्रहार करना चाहता है। वह समझ नहीं पाता—जो देश इतने धन-धान्य से परिपूर्ण हो, उसी देश का निवासी आज अन्न-वस्त्र के लिए संत्रस्त क्यों हो उठे! ओह, अन्न के अभाव में कदन्न का ग्रहण करे, पेड़ों के पत्ते, शाक और जंगली फल! अपनी लज्जानिवारण के लिए वह आकाश की ओर करुण दृष्टि से निहारे! यह विधाता का कितना क्रूर प्रदर्शन है! कितना

भुलाकर !! यह सर्वनाशी युद्ध कितना प्रलयंकर है—कितना भयंकर........

मगर जो मनस्वी हैं, जो विचारक हैं, जो बुद्धि-जीवी हैं, वे अत्यंत चिंतित हैं। उनकी चिंता साधारण नहीं, अतल तलस्पर्शी हैं। वे देखते हैं वर्त्तमान को ही नहीं, आगत भविष्य की ओर, जहाँ पहुंच कर वे पाते हैं कि यह जीवन तो जीवन नहीं है! कुत्ते की मौत मरना......नहीं, ऐसे तो नपुंशक मरा करते हैं, हिजड़े इस तरह मरना पसंद करेंगे। मनुष्य तो मनुष्य की तरह मरना पसंद करेगा। मगर मनुष्य मरे ही क्यों इस तरह ? क्यों न वह अपना विक्षोभ प्रकट करे उसके प्रति जो उसे वाध्य करता है मरने के लिए ? नहीं, वह विक्षोभ प्रकट करेगा ही, विद्रोह करेगा ही, क्रांति लायगा ही ! आखिर क्रांति का जन्म भी तो इसी अवस्था में—इसी परिस्थिति में ही तो होता है ! विद्रोह का उद्‌गम भी तो वही जगह है, जहाँ मनुष्य को वर्बर वनाने की चेष्टा की गई है ! सहने की भी एक सीमा होती है और उसी के भीतर वह एक गुण समझा जा सकता है; पर जब सहना अशक्य हो उठता है, तव वहाँ कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार नहीं रह जाता; पाप-पुण्य का विचार नहीं रह जाता। उस समय रोष उवल पड़ता है, फिर उस अवस्था में किसे इतनी फुर्सत है कि वह सोच देखे—वह क्या है और उसकी शक्ति कितनी है ! वह कूद पड़ता है मैदान में, फल चाहे जो हो—उस ओर उसका ध्यान ही कहाँ रह जाता.........

वे मनीषी—वे द्रष्टा अपने अंतर्चक्षुओं के सामने पाते हैं कि क्षुब्ध पृथिवी की बुभुक्षा इतनी प्रवल हो उठी है कि वह बलिदान

लेकर ही शांत होगी, मगर बलिदान का आह्वान किस रूप में हो—इसी ओर उनका ध्यान लगा है। वे चाहते हैं, क्यों न मूल में ही कुठाराघात किया जाय! न मूल रहेगा, न शाखाएँ पनपेंगी पर मूल का विनाश क्या इतना संभव है?......नहीं, संभव असंभव का विचार मनस्वी नहीं किया करते, वे तो केवल करना जानते हैं, जो उसकी दृष्टि में महत् है, जो उनकी दृष्टि में विराट है। उनकी केवल अपने लक्ष्य की ओर दृष्टि रहती है, केवल दृष्टि ही नहीं, उनकी युक्तिभी रहती है और वे अपनी दृष्टि और युक्ति से उसे संपन्नता की ओर ले जाने को तत्पर हो उठते हैं। आज देश की आत्माओं का एक ही स्वर है, एक ही ध्येय है......... अतीत का इतिहास उन्हें यही बताता है......वर्त्तमान की परिस्थिति उन्हें ऐसा करने को सतत लाचार कर रही है—आगत की आशंका उनके मस्तिष्क में उत्तेजना भर रही है.........

यही संचित विस्फोटक है, जो फटना चाहता है जिसकी ओर मनीषियों का ध्यान जा लगा है। डा० स्वरूप यही सोचते हैं, व्रजेंद्र भी यही सोचता है, उसकी कर्मपद्धति अवरुद्ध हो गई है। वह अपनी दृष्टि के सम्मुख पाता है कि द्रुतवेग से अचानक जो भयंकरता आगई है, उसका हेतु क्या है? हेतु को ही वह पकड़ना चाहता है, हेतु पर ही वह प्रहार करना चाहता है। वह समझ नहीं पाता—जो देश इतने धन-धान्य से परिपूर्ण हो, उसी देश का निवासी आज अन्न-वस्त्र के लिए संत्रस्त क्यों हो उठे! ओह, अन्न के अभाव में कदन्न का ग्रहण करे, पेड़ों के पत्ते, शाक और जंगली फल! अपनी लज्जानिवारण के लिए वह आकाश की ओर करुण दृष्टि से निहारे! यह विधाता का कितना क्रूर प्रदर्शन है! कितना

वीभत्स, कितना असंतोषप्रद, कितना घातक! ओह, कितना घातक!

व्रजेंद्र गंभीरता पूर्वक इन वातों पर विचार करता है, वह शिथिल होकर रह जाता है। उसकी प्रवृत्ति पंगु होकर रह जाती है, उसका मस्तिष्क जड़ हो उठता है। आश्रम उसका अब भी चल रहा है, पर उसकी आत्मा आज मूर्छित हो पड़ी है, उसमें न चेतनता रह गई है, न कुछ जीवन रह गया है, न उसमें हंसी खुशी के कल्लोल का चिह्न दीख पड़ता है। जो गाँव सदैव प्रफुल्ल-प्रसन्न दीख पड़ता था, वहीं विशृंखलता छा गई है! यह विशृंखलता कहाँ जाकर अंत लेगी, आज वह कुछ सोच नहीं पा रहा!......

तभी व्रजेंद्र को निमंत्रण मिलता है। यह निमंत्रण आनंदकौशल की ओर से आया है। सरकार की ओर से उसे उपाधि मिली है, जिसके उपलक्ष्य में वह हाकिम-हुक्कामों और प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित कर प्रीति-भोज का उत्सव मनाने जा रहा है। उसमें डा० स्वरूप निमंत्रित किए गए हैं, राजा बाबू निमंत्रित किए गए हैं। अभया आमंत्रित की गई हैं और खुद वह व्रजेंद्र भी आमंत्रित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त जिला के ऊँचे अफ़सर और नगर के गण्यमान्य सज्जन आमंत्रित हुए हैं!.........

व्रजेंद्र निमंत्रण-पत्र पाकर एक वार उसे अथ से इति तक पढ़ जाता है, उसकी दृष्टि में एक ओर यह उपाधि-स्वीकार-जनित उत्सव और दूसरी ओर जनता में त्राहि-त्राहि की वीभत्स पुकार स्वयं विभीषिका के रूप में उपस्थित हो उठती है। उसे घृणा हो उठती है, उसकी आकृति पर लालिमा की सघन रेखा दौड़ पड़ती है, उसका सारा शरीर झनझना उठता है और ... की हँसी हँस कर वह आप-ही-आप बोल उठता है—

यह आमंत्रण नहीं, मानवता का अपमान मात्र है.........नहीं वह इसमें सम्मिलित नहीं हो सकता.........

तभी उसके सामने मंगल आता है—वह मंगल जो जेल की सजा भुगत कर अभी-अभी लौटा है, जो चंपी का पति है, जो एक समय जुआड़ी और शराबी रह चुका है। वह आकर व्रजेंद्र को नमस्कार कर अपना परिचय आप सुना जाता है, फिर विनम्र स्वर में कहता है—मैं स्वयंसेवक होना चाहता हूँ, बाबूजी, मैंने शराब पीना छोड़ दिया है, क्या मुझे अपने दल में न रख सकेंगे ?

व्रजेंद्र मंगल की ओर देखता है—देखता है—वह युवक तो है, पर उसकी आकृति में यौवन नहीं, दीनता की भयंकरता है, फिर भी उसकी वाणी में दृढ़ता और आँखों में तीक्ष्णता है। व्रजेंद्र कुछ क्षणोंतक उसकी ओर देखता रह जाता है और वह साधारण स्वर में बोल उठताहै—क्या तुम स्वयंसेवक बनना चाहते हो ?

—हाँ, बाबू जी !—मंगल उल्लसित होकर बोल उठता है—मेरी बड़ी साध है कि मैं स्वयंसेवक बनकर कुछ सेवा कर सकूँ। मैं अबतक गुमराह था, मैंने बड़े-बड़े पाप किए, मैंने चोरी की, दूसरों को ठगा, शराब पी और जुए खेले ! ये ऐसी लत थीं जिनने मुझे आदमी की सूरत में न रखा। मैंने शादी की, एक छोटी सी लड़की को घर लाया, उसे सुख तो क्या, कभी उसको भर पेट अन्न तक न दे सका ! फिर ऊपर से मार, गालियाँ, जाने कैसे-कैसे अत्याचार न किए उस पर !......मगर आज वही है जो मेरे लिए एक बड़ा सहारा है। जेल काट आया हूं, चारो ओर से मुझ पर घृणा बरस

पड़ी है, कोई मेरीओर देखने को रवादार नहीं—कोई हँस कर मेरा पूछने वाला नहीं; मगर एक मेरी रानी चंपी है जिसने मुझे हँस कर ही अपने घर में जगह दी है; बल्कि जिसने फूलों के हार और चंदनों से आनंद में भर कर मेरी आरती उतारी है, जिसने मुझसे शपथ खिलाई है, जिसने मुझे आपके पास भेजा है। हाँ, बाबूजी, सच कहता हूँ, आज मुझे शरण दीजिए.....शरण दीजिए और कोई है नहीं जो मुझ-जैसे पापियों को आज अपनी छाया में शरण देगा।

व्रजेन्द्र उसके एक-एक शब्द को सुनता रहा और खूब ध्यान से सुना। उसे उसकी बातें असाधारण सी लगीं। एक जुआड़ी जीवन भर शराब की लत पाले, जो अपनी जेल की सजा भुगत कर अभी-अभी वहाँ से लौटा है, वह देश-सेवा के लिए अपने आपको स्वयंसेवक बनाना चाहे—अवश्य वह असाधारण ही तो हो सकता है। व्रजेन्द्र ने फिर से उसकी ओर एक बार ताका और वह केवल उसकी दृढ़ता की परीक्षा लेने के लिए बोल उठा—स्वयंसेवक बनने से तुम्हारा कुछ विशेष लाभ तो होगा नहीं। तुम क्यों नहीं फौज में भर्ती होजाते हो? फौजी दफ्तर खुला हुआ है, लोग धड़ाधड़ भर्ती हो रहे हैं। उन्हें अच्छी तनख्वाह दी जाती है, पहनने को काफी कपड़े, बूट-पतलून, खाने को गोश्त, चाय-टोस्ट-रोटियाँ, सिगरेट, सभी तरह के आराम......उनके घरों की हिफाजत......और यहाँ तुम्हें क्या मिलेगा? दिन भर चक्कर मारोगे, सूखी-रूखी दो एक रोटियाँ........परिश्रम ज्यादा, मिलना कुछ नहीं.....अच्छा तो यही हो कि तुम फौजी-दफ्तर जाओ......

—फौजी-दफ्तर!—मंगल हँस पड़ता है और हँसते-हँसते

ी बोल उठता है—मजाक न कीजिए, बाबूजी, हम गरीब हैं
रही, हम पापी और जुआड़ी-शराबी भी रहे हैं जरूर, मगर
आदमी तो हैं ! आदमी सिर्फ पेट भर लेना ही नहीं चाहता, वह
कुछ और भी चाहता है। फौज में भी मैं नाम लिखा सकता था,
जहाँ मुझे रोटियाँ मिल सकती हैं, जहाँ मुझे रुपए मिल सकते हैं,
जहाँ मुझे पतलून और बूट भी मिल सकते हैं; मगर मैं खुद उसकी
फौज में सामिल होऊँ, जो हम पर सितम ढाती है, जो हमें
आदमी नहीं, गुलाम समझती है, जिसे हमारे जीने की जरा भी
परवा नहीं, जो हमें सब तरह से लूटती है ! शराबी मुझे किसने
बनाया ? जुआड़ी हम क्यों बने ? हम आज इतने लाचार क्यों
हैं ? हम अन्न उपजाएँ, मगर हम खुद उसी अन्न के लिए तरस-तरस कर मरें······आज सरकारी गुदामों में लाखों मन गल्ले सड़
रहे हैं, मगर हम चार दाने के लिए तरसते हैं ! ऊँचे दामों पर
गल्ले वही खरीद सकते हैं, जिनके घर रुपए की कमी नहीं, जो
रुपए खुद बनाते हैं। उनका हाथ कौन पकड़ता है ? वह नौ की
चीज नब्बे में खरीदे तो उसे घाटा क्या है ? जो अपने इमान
को इतने सस्ते में लुटा सकती है, आप उसीका साथ देने की
मुझे सलाह दे रहे हैं बाबूजी ! आप चाहें मेरी मजाक कर सकते
हैं, मगर भगवान के नाम पर ऐसी सलाह तो आप दें ही नहीं !
मैं जेल देख आया हूँ ! इमान्दारी से जब खाना न जुटा सकूंगा
तो मेरा रास्ता खुला हुआ है, खुद उसके घर सेंध डालूंगा, लूटूंगा
और अगर बच गया तो अच्छा ही और अगर न भी बच सका
तो उसके लिए मलाल भी नहीं रह जायगा—जेल की सिद्दतों को
हँसते-हँसते काट लूंगा ! आखिर सारा हिन्दुस्तान जेल ही तो है—

बड़ा-सा जेल ! फिर छोटे से जेलखाने को कौन डरता है ? डर था मगर अब नहीं रहा—मैं उसे देख चुका हूं·········

मंगल बोल कर चुप हो गया, वह जाने कुछ और क्या कहा चाहता था, पर वह कह नहीं सका। ब्रजेंद्र ने उसकी ओर देखा और पाया कि उसने जो कुछ कहा है, उसमें उसके हृदय का संपूर्ण योग है, वह सत्यता से परिपूर्ण है ! दंभ का जरा भी नाम नहीं ! जो कुछ कहा है—स्वाभाविक रूप में कहा है, जो उसके अंतर की व्यथा से फूट निकला है। फिर भी ब्रजेंद्र उसकी ओर सदय न हुआ, उसने पूछा—तो क्यों नहीं, और कोई जगह नौकरी कर लेते ?

—नौकरी ?—मंगल हँस कर ही बोला—नौकरी कर सकता था, मगर एक तो मैं नौकरी पर टिक नहीं सकता, दूसरे कोई मुझे नौकर रखना ही नहीं चाहेगा। आप ही बतलाएं, जिसके सिर कलंक का टीका एक बार लग चुका है, उस टीका को पचाना साधारण आदमी का काम नहीं हो सकता। वह तो वही पचा सकता है, जिसके सामने अमृत और विष एक जैसा है, जो विष को ही गले से लगा सकता है और अमृत दान कर दे सकता है। वह शंकर हो सकता है, जिसके रंगी-भंगी, भूत-दूत सहचर हैं। उसी शंकर की शरण में आगया हूँ। मेरा सौभाग्य, अगर वह मुझे स्वीकार कर अपनी शरण में स्थान दें, और अगर वह न भी स्थान दें तो मुझे उसके लिए दुख नहीं, समझूंगा—मैं उसके योग्य अभी नहीं बन पाया ; मैं उस योग्य बनने की कोशिश करूँगा—कोशिश कर देखूंगा, अगर वैसा बन सका तो अच्छा ही, नहीं तो उसी के नाम पर मर मिटूंगा। मिटना तो है ही, फिर कुत्ते की मौत मरने से क्या

तो कहीं अच्छा रहेगा। जिस नाम को लेकर मरूंगा, उसकी लाज तो उसके हाथ में रहेगी ही, फिर मुझे दुख क्या?······तो क्या मैं चलूं बाबूजी?

इस बार ब्रजेंद्र को लगा कि पश्चाताप की अग्नि में घुल कर जो पवित्र हो चुका है, वह अतीत में चाहे जैसा रहा हो, वह त्याज्य नहीं, उसका स्थान सुरक्षित रहना ही चाहिए। ऐसे ही व्यक्ति से उसका मिशन चल सकता है, ऐसे ही व्यक्ति उनके गाढ़े वक्त पर काम आ सकते हैं। ब्रजेंद्र ने फिर से एक बार उसकी ओर दृष्टि डाली और प्रसन्न होकर बोल उठा—अब जाने की तुम्हें जरूरत नहीं है। यह आश्रम तुम्हारा है, तुम रह सकते हो, तुम्हारा नाम स्वयं-सेवक-श्रेणी में लिख लिया गया। जो आदेश होगा, करोगे और सदैव इस बात का ध्यान रखोगे कि तुम भारतमाता के चरणों में अपने को अर्पण कर चुके हो, उसकी लज्जा तुम्हारी लज्जा है, उसका सम्मान तुम्हारा सम्मान है·········

—बस, मैं निहाल हो गया बाबूजी, निहाल हो गया!—मंगल प्रसन्न होकर बोल उठा—मुझे, बस, और कुछ न चाहिए। मैं आपके हाथों अपने को सौंप चुका हूँ, सौंप चुका हूँ इसलिए कि मैं आदमी बनूँ। मैं दूसरी जगह भी रह सकता था, मगर मैं आदमी बन नहीं सकता था, वहाँ मेरी प्रवृत्ति फिर उभर सकती थी, पर मैं शपथ खाकर कह सकता हूँ कि आप जैसे महान व्यक्ति के निकट मैं आदमी बन कर ही रहूँगा। यही मुझे आशीर्वाद चाहिए बाबूजी, एक बार मेरे सिर पर आप अपना हाथ रख दीजिए, रख दीजिए बाबूजी·········

और मंगल अपनी जगह से उठ कर ब्रजेंद्र के पैरों पर सिर झुकाए

पड़ गया। व्रजेंद्र अपने आप में सजग हुआ और सजग होकर बोल उठा—यह क्या करते हो, मंगल? यह उचित नहीं, यह तो दास्य वृत्ति है, यह ठीक नहीं। हम भाई-भाई हैं, गले-गले मिल सकते हैं।

और व्रजेंद्र ने उसके सिर पर हाथ रखते हुए उसे उठा कर अपने गले से लगाते हुए कहा—मंगलमय प्रभु का आशीर्वाद और शुभाकांक्षा सदा तुम्हारे साथ रहेगी मंगल! चलो, उठो, भोजन कर लो, मैंने भी अभी नहीं किया है।

व्रजेंद्र उठ कर भोजनशाला की ओर चल पड़ा, मंगल भी उसके साथ-साथ चल पड़ा। आज उसके आनंद का क्या कहना? कौन कह सकता है कि यह वही मंगल है जो जुआड़ी और शराबी रह चुका है·········जो जेलखाने से सजा भुगत कर अभी-अभी लौटा आ रहा है·········

सप्तदश परिच्छेद

अभया इन दिनों गाँव से बाहर-बाहर ही रही, इसलिए ज्योंही वह उधर से लौट आई, त्योंही उसे मालूम हुआ कि राजा बाबू के घर से उसकी भाभी ने उसकी भेंट चाही है—यह समाचार खुद डा० साहब ने उसे सुनाया था। अभया आज उसीसे मिलने को चल पड़ी है; पर उससे मिलने के पहले, रास्ते में ही एक आदमी से भेंट हो गई जो पड़ोस के गाँव से उसी के पास आ रहा था। उसने बड़े विनम्र होकर नमस्कार किया, फिर एक छोटा-सा पुर्जा उसके हाथ में डालते हुए कहा—बाबू ने दिया है आपको देने, मैं आपके ही पास जा रहा था!...... अभया ने उसे पढ़ा, कुछ क्षण तक सोचती रही, फिर आप ही बोल उठी—अभी तुम्हें कहाँ जाना है? क्या लौट जाओगे?

—हाँ, मुझे लौट ही जाना है, फिर बाबू जी जहाँ कहीं कहेंगे जाने, जाऊँगा!

—अभी क्या उनसे तुम्हारी भेंट होगी?

—शायद हो भी सकती है!

—अगर भेंट हो तो कह देना—मैं अभी-अभी वहीं चली, जहाँ के लिए उन्होंने लिखा है! मगर, इतनी दूर पैदल तो जाया नहीं जा सकता, इसलिए सवारी का इंतजाम तो मुझे कर लेना ही होगा!... अच्छा, तो जाओ।

अभया बोल कर राजा बाबू की हवेली की ओर चल पड़ी और वहाँ पहुँच कर सीधे राजा बाबू के कमरे में गई, जहाँ वह मसनद के सहारे लेटे हुए सटक पी रहे थे। राजाबाबू ने अभया को अपने सामने आते पाकर कहा—आओ-आओ, अभया बेटी, इधर तो तुमसे भेंट ही नहीं होती ! इतनी काम में फँसी रहती हो कि जरा भी तुम्हें अवकाश नहीं मिलता !...मगर तुम अभी आई कैसे बेटी ?

—अभी तो जरूरत से आई हूँ, चाचाजी ! अभयपुर के ठाकुर साहब के घर डिलिवरी होने वाली है, पर हो नहीं रही है, बड़ी तकलीफ है, जहाँ मेरी खास जरूरत है ! मुझे रास्ते में खबर लगी, सवारी मुझे चाहिए........इसके बिना तो इतनी दूर जाया नहीं जा सकता...........

—सवारी !—राजाबाबू ने दरवान को बुलाते अभया से कहा—सवारी का इंतजाम अभी तुरत हो जाता है, बेटी, बैठो तब तक......

—हाँ, तब तक चाचीजी से मिल लेती हूँ, सवारी ठीक हो जाय तो कहला दीजिएगा।

—कहलवा दूँगा—राजाबाबू बोले, अभया बाहर निकलने को हुई तब फिर वे बोल उठे—अरी बेटी, जरा सुन तो जाना !

अभया उल्टे पांव तुरत लौट कर बोली—क्या है चाचाजी ?

—तुमने मृणाल का समाचार तो शायद नहीं सुना है ?

—नहीं, क्यों ठीक है न चाचाजी !

—हाँ, ठीक-ही है; मगर जमाई बाबू को टाइफाइड हो गया है, आज इक्कीस दिन हो रहे हैं। मृणाल की चिट्ठी आई है, उसने तुम्हें भी याद किया है ! मैंने धीरू को वहाँ भेज दिया है देखने......जाओ न भीतर, चिट्ठी तुम खुद से देख लेना।

—टाइफाइड !—अभया विस्मित होकर बोल उठी—सिरियस टाइप की तो नहीं है चाचाजी ? और कोई कांप्लिकेशन्स ?······

—ऐसा तो कुछ साफ नहीं लिखा है, बेटी, मगर इतना जरूर मालूम पड़ता है कि मृणाल बहुत ही घबराई हुई है।

—अच्छा तो मैं भीतर चलकर चिट्ठी देखती हूं—कहती हुई अभया भीतर आई, और आती हुई सीधे अपने भाभी के कमरे में दाखिल हुई; पर कमरा योंही खाली था, वह बरामदे पर आकर खड़ी हुई और पुकार उठी—भाभी, ओ भाभी।

तभी दूसरी ओर से भाभी आती हुई दीख पड़ी और आते ही बोली—ओह, बड़ी कृपा की, अभया बहन !

—कृपा नहीं—अभया उसके साथ कमरे की ओर बढ़ते हुए बोल उठी—आपने बुलाया था न भाभी, पिताजी से मालूम हुआ। मैं बाहर चली गई थी ! जैसे ही उन्होंने कहा—मैं चल पड़ी। कहिए, क्या आज्ञा है ?······हाँ, भाभी, क्या इधर मृणाल की चिट्ठी आई है ?

—हाँ, आई है, तभी तो आप को बुलाया था अभया बहन !—कहकर भाभी पलंग के सिरहाने की ओर बढ़ी और तकिए के नीचे से लिफाफा निकाल कर उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—यही है अभया बहन, वह बेचारी बड़ी घबरा उठी है, वे बीमार जो हैं !

अभया पत्र को एक साँस में पढ़ गई और उसे शेप करते हुए बोली—हाँ, सचमुच घबरा गई है, भाभी ! और घबराना स्वाभाविक है भी ! जिसने बीमारी कभी देखी नहीं है, उसके सामने जब वह पहुँचती है तो बड़ा विकराल रूप लेकर पहुँचती है, फिर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो धीरज रख कर उसका उपचार करा सकते हैं। मृणाल तो अभी बच्ची है···मैं देखती हूँ, वहाँ मुझे चलना होगा ! हाँ

चलना ही होगा, भाभी, नहीं तो मृणाल क्या कहेगी, क्या समझेगी'

—अभी तो आपके भाई साहब आपको ढूँढ़ रहे थे, सुना कि आपको अभी बाहर से आने में देर है, वे ठहर न सके। उन्होंने भी कहा था—अभया आवे तो कह देना। अगर आप जा सकें तो मृणाल को बड़ा सहारा मिलेगा। यों तो वहाँ डाक्टरों की कमी होगी नहीं, मगर आपका जाना उनके लिए एक बहुत सहारा होगा।

अभया कुछ क्षण तक चुप रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—हाँ बहुत बड़ा सहारा मिलेगा, मैं जरूर जाऊँगी भाभी! अगर मैं अपने आपके लिए काम में न आई तो मेरे इतने दिनों का परिश्रम व्यर्थ ही समझिए!......मगर मैं अभी ठहर नहीं सकती, भाभी अभयपुर के ठाकुर के घर डिलिवरी होने को है; पर सुना, हो नहीं रही है, वहाँ हमारी सख्त जरूरत है, अभी व्रजेंद्रबाबू ने समाचार दिया है! गांव की दगरिनें किसी काम की नहीं.......

दगरिनों का नाम सुनकर कुछ क्षणों के लिए भाभी की आकृति सफेद हो उठी, वह भीतर-ही-भीतर काँप उठी। आगत भविष्य की आशंका से वह भयभीत हो उठी; पर वह स्वयं कुछ न बोल सकी।

अभया ने उसकी आकृति देखी, उसे समझते देर न लगी वह तभी बोल उठी—एक दिन मुझे आप के घर इसी उद्देश्य से आना पड़ेगा, भाभी, उस दिन मैं दिखलाऊँगी कि यह डाक्टरी पेशा क्या है? आपने अब तक डा० अभया को देखा तो नहीं है?

—हाँ, देखा तो नहीं है—भाभी निश्चिंतता की साँस लेकर प्रसन्न हुए बोल उठी—मगर डा० अभया को जानती अवश्य हूँ और यह भी जानती हूँ कि वह अपनी कला में उतना ही दक्ष है, जितना वह और कामों में।

इसी समय स्वयँ राजाबाबू भीतर आते हुए दीख पड़े, अभया ने कमरे से ही उन्हें भीतर आते हुए देखा, वह उठकर खड़ी हुई और भाभी से बोली—मैं अब ठहर नहीं सकती, शायद सवारी ठीक हो गई। चाचाजी खबर देने स्वयं आ रहे हैं। वह झटपट बाहर निकली और निकलते-निकलते ही बोल उठी—सवारी ठीक हो गई चाचाजी ?

—हाँ, यही खबर देने आ रहा था अभया बेटी—राजा बाबू अपनी जगह से ही बोल उठे।

इतने में ही चाची भी अपनी जगह बैठी दीख पड़ीं। अभया उनकी ओर बढ़ी और उसके चरणों को स्पर्श करने के लिए जैसे ही वह झुकी, वैसे ही चाची बोल उठीं—कब आईं, अभया बेटी !

—अभी-अभी आई थी, चाची जी, और अभी तुरत चल रही हूँ, मुझे एक आवश्यक काम से जाना है बाहर ! यहाँ सवारी लेने आई थी ! जिसके लिए खुद चाचाजी खबर देने को आ खड़े हैं।

—तो क्या ठहर नहीं सकोगी ?—चाची बोल उठीं—मृणाल की चिट्ठी आई है, लल्लन वहीं गया है !

—चिट्ठी अभी-अभी देखी है, चाचीजी !—अभया ने निश्चिंत होकर कहा—मगर डरने की बात नहीं है। मृणाल घबरा उठी है। छुट्टी पाते ही मैं जाऊँगी वहाँ। मैंने निश्चय कर लिया है।

—हाँ, अभया बेटी—चाची उदास होकर बोल उठीं—तुम्हारा जाना ही ठीक होगा ! कब क्या हो जाय, कौन कह सकता है !

—अच्छा ही होगा, चाचीजी। तुम आशीर्वाद करो कि वे अच्छे हो जायँ !

—आशीर्वाद !—चाची गंभीर होकर बोल उठीं—मैं तो चिट्ठी

पाकर तभी से दुर्गा-दुर्गा कर रही हूँ, अभया बेटी ! मैं जानती हूँ कि दुख क्या है—और संतान का दुख……ओह, संतान का दुख मा-बाप के लिए कितना असह्य होता है, बेटी, यह तो खुद दुर्गामाता ही जानती हैं।

—सब ठीक ही होगा, चाचीजी, इतना घबराने से कैसे काम चलेगा ! —अभया बोलती हुई बाहर की ओर चल पड़ी, तभी चाची बोल उठी—लौटती बार मिलकर जाना बेटी, तुमसे मुझे बड़ा बल मिलता है, जरूर मिलती जाना………

—हाँ, जरूर मिल कर ही जाऊँगी चाचीजी !—अभया बोल कर चल पड़ी।

वह सवारी पर बैठी, घर गई, फिर आवश्यक चीजों को लेकर सवारी पर आ बैठी। सवारी तेजी के साथ अभयपुर की ओर चल पड़ी।

अभयपुर का ठाकुर एक प्रतिष्ठा-सम्पन्न और प्रसिद्ध व्यक्ति है। अभया जैसे ही पहुँची, दरवाजे पर बहुत आदमी बैठे हुए दीख पड़े ; पर सब-के-सब विपण्ण मुख-मुद्रा में बैठे थे। अभया को लगा—जैसे चारों ओर की अवसन्नता वहीं आकर इकत्रित हो उठी हो। अभया उतरी और दरवाजे की ओर चल पड़ी, तभी ठाकुर ने अभया की ओर देखा, उसके जान में जान आई, रुकी हुई साँस जैसे चलने को हुई। बैठे हुए अचंचल जन-समूह में चंचलता की एक लहर दौड़ पड़ी, सभी की दृष्टि उसकी ओर खींच आई, तभी अभया बोल उठी—सूतिका की क्या हालत है ?

—बेचैन है देवीजी, बच्चा उलटा पड़ गया है, कोई तदबीर काम नहीं आती !

—खैर, कोई चिंता नहीं, चलिए भीतर !—अभया निर्द्वंद्व बोल उठी—गाड़ी पर सामान रखा है, मंगवा लीजिए।

अभया आगे की ओर बढ़ चली, एक आदमी गाड़ी की ओर दौड़ा, ठाकुर साहब अभया के साथ भीतर की ओर चले। अभया ने भीतर आकर देखा कि सूतिका-गृह के आस-पास बहुत-सी औरतें विचित्र मुख-मुद्रा में खड़ी हैं। भीतर से रह-रह कर भयंकर चीख की आवाज आ रही है। अभया निर्भय मुद्रा में वहाँ आ पहुँची, सब की दृष्टि उस ओर गई, तभी एक अधेड़ स्त्री उसके पैरों से लिपट कर बोल उठी—बहू मर रही है, बचाओ, मां !

—ओह, घबराने की जरूरत नहीं, चलो भीतर !—अभया बोल कर भीतर घुसी, और वहाँ की हालत देख कर बोल उठी—तुम सब-की-सब बाहर जाओ, यहाँ किसी के रहने की जरूरत नहीं, आप रह सकती हैं ! यह आग की बोरसी बाहर कीजिए, धुएँ से दम घुट रहा है, हाँ, यह खिड़की भी खोल दीजिए ! इतना अंधेरा......अंधेरा नहीं-प्रकाश चाहिए........

सभी औरतें बाहर निकल आईं, भीतर वह रह गई, रह गई घर की वह अधेड़ स्त्री और जच्चा ! अभया ने गर्म पानी तैयार करने का आदेश किया, और वह अपने उपचार में लग गई। वास्तव में जच्चे की अवस्था बड़ी ही दयनीय थी; फिर भी अभया को अपने बल पर भरोसा है, अपने कौशल पर अटल विश्वास है ! वह अपनेकार्य में सिद्ध-हस्त रह चुकी है ! वह अस्त्रोपचार करती है, हस्त-लाघवता दिखलाती है और करीब आध घंटे के भीतर वह अपने काम में सफल होती है। शिशु भूमीष्ठ होकर रो पड़ता है; मगर जच्चा अचेत है...

मगर अभया सचेष्ट है, समयोपचार चल रहा है, इस बार जच्चे

ने आँखें खोलीं और सामने बच्चे को रोते हुए पाया। अभया इस वार मुस्कराई और मुस्कराते हुए बच्चे को गर्म-गर्म पानी से नहलाते हुए बोली—बच्चा हृष्ट-पुष्ट है, इसने आपको बड़ा तंग किया, नहीं क्यों?

जच्चा बोल न सकी, पर उसकी आँखें सजल-उज्ज्वल होकर स्वयँ बता रही थीं कि वे उसकी कितनी कृतज्ञ हैं!

तभी वह अधेड़ स्त्री बोल उठी—तंग तो इतने जरूर किया है—माँ को ही नहीं, घर-भर को, आज तीन दिनों से दिन-को-दिन और रात-को-रात नहीं समझा! कितनी मिन्नतें न मानीं, कितने ओझा-गुनी के दरवाजे न देखे, कितनी दाई-दगरिनों की बाँहें नहीं पकड़ीं, मगर सभी बेकार हुए! सच पूछो तो किसी को आप का खयाल ही न था! भगवान भला करे, बरज बाबू का, जिन्होंने आपको यहाँ भेजा.........

—मैं तो बराबर काम पर इधर आती थी, खुद आपकी बहू तो हमारे अच्छे काम करने वालों में हैं! क्यों रमा, तुम्हें भी मैं याद न पड़ी?

जच्चा मुस्कराई और मुस्कराती हुई ही बोली—नहीं!

—क्यों, नहीं?—अभया कुछ रुष्ट होकर ही बोली—क्या अब भी याद न रखोगी?

—याद!—जच्चा लेटे-लेटे ही बोल कर चुप हो रही, फिर मुस्करा कर बोल उठी—शायद!

—खैर, याद न भी रखो, उसके लिए मुझे दुख नहीं—अभया बोली—मगर अभी अपने स्वास्थ्य की ओर ध्यान तो रखोगी ही! मैं एक पुर्जा लिख कर रख छोड़े जाती हूँ, दवा मंगवा लेना, अभी जितना आराम से रह सको, रहो। दो-चार दिनों में फिर मैं आऊगा।

अभया घर से बाहर हुई, तभी उसने देखा कि दूसरे घर के बरामदे पर बहुत सी औरतें इकट्ठी हैं और बीच में ढोलक और झाँझ रखे हुए हैं। अभया उस समूह के निकट आकर हँसती हुई बोल उठी—हाँ हाँ, बधाई के गीत शुरू करें। अब क्या देर है ? फिर मुँह मांगी मिठाई कैसे मिलेगी ? मगर मुझे भूल कर आपलोग अपने आप सभी सफाचट न कर लीजिएगा। इस घर में भूलने की आदत लगी हुई है पहले से ही; इसलिए इनसे आशा तो मुझे बिलकुल नहीं, हाँ आप लोगों से रख सकती हूं ! अपने हिस्से से ही सही—मुझे तो मिठाइयां चाहिएँ ही.........

—आपकी रमा आप को भूल सकती है—वह अधेड़ स्त्री उसके पास आकर हँसती हुई बोल उठती है—मगर मैं कैसे भूल सकती हूँ आपको, जिसने मेरे आँसू पोछे हैं, मेरे घर को हँसाया है ! अभी बधाई के गीतों का जो समा बंधा है, वह तो आपकी ही दया से तो ! फिर मिठाइयों की कौन पूछता है ? वह तो जब चाहें, आपकी मिहनत की कमाई हो ठहरी ! मैं आपकी खातिर कर ही क्या सकती हूँ, यह मेरी ओर से आप ग्रहण करें.........

और अभया ने देखा कि उसके हाथ पर वह घर की मालकिन अशरफी रख रही है ! अभया उसे देख कर विचलित नहीं हुई, वह बोल उठी—यह तो मुझे चाहिए ही नहीं, मैं तो मिठाइयों की भूखी हूँ, मुझे तो वे ही चाहिएँ !

—उन्हीं के लिए तो दे रही हूँ, रख लीजिए.........

—हाँ-हाँ, रख लीजिए—जन-समूह की ओर से आवाज आई।

—नहीं-नहीं, मैं आप से इतना ही नहीं लूंगी—और लूंगी—अभया तन कर खड़ी हो रही, फिर बोल उठी—क्या आप मुझे इतना

हो कुछ देकर टरका देना चाहती हैं ?

—नहीं-नहीं टरकाने की कौन सी बात !—घर की मालकिन हँस पड़ी और हँस कर ही बोली—जो भी चाहेंगी, ऐसी कोई चीज नहीं, जो नहीं दी जा सके, मगर मैं गरीब आदमी दे ही क्या सकती हूँ !

—गरीब आदमी हैं आप, तभी तो मैं मांग रही हूँ !—अभया फिर से उसी गंभीरता को लिए हुए ही बोल उठी—आप धनी होतीं तो मैं कुछ नहीं लेती !

घर की मालकिन चिंता में पड़ गई, वह क्या कहे—उसे कुछ सूझ न पड़ा। तभी अभया फिर से बोल उठी—तो क्या कहती हैं, साफ कह दीजिए, मैं समझती हूँ, आप आगा-पीछा सोच रही हैं !

—नहीं-नहीं, मैं कुछ भी नहीं सोचती—घर की मालकिन बोली—जो भी कहेंगी, मैं दूँगी, जरूर दूँगी।

इसी समय ठाकुर साहब भीतर आए, उसकी प्रसन्न आकृति स्वयं बता रही है कि वह अभया के प्रति अपनी कृतज्ञता ही प्रकट करने को आ पहुँचे हैं। उसने देखा कि अभया और घर की मालकिन दोनो दुविधाओं के बीच पड़ी हुई हैं। वे वहीं खड़े चकित-विस्मित होकर दोनों की ओर देखने लगे। तभी घर की मालकिन बोल उठी—कहिए न, कह क्यों नहीं रही हैं, अभी तो मालिक भी सामने हैं !

इस बार अभया हँस पड़ी और ठाकुर साहब की ओर देखते हुए बोल उठी—मालकिन की ओर से इनाम में मुझे अशरफी मिल रही है; पर मैं चाहती हूं कि मुझे और भी कुछ.........

—हाँ, हाँ, जरूर मिलेगा, अभया देवी !—ठाकुर साहब हँस कर बोल उठे—मगर कहिए भी तो !

—सच कहते हैं, मिलेगा ?

—जरूर मिलेगा।

—तो मुझे वही बच्चा दे दीजिए, मैं पाल-पोस लूंगी उसे!

ठाकुर साहब खिलखिला कर हँस पड़े, मालकिन भी हँसी, और बधाई गाने वाला नारी-समूह भी हँस पड़ा। तभी मालकिन हँसते-हँसते बोल उठी—यह तो तुम्हारा है ही मां, मगर पालने की झल्लत क्यों पालो, उसे तो तुम इस बूढ़ी पर ही छोड़ दो, जब खेलने-दौड़ने लायक हो जायगा—ले जाना।

—अच्छा तो यह सही—अभया बोल कर फिर से सौर गृह की ओर दौड़ी और भीतर जाकर अशरफी बच्चे के हाथों थमा कर बाहर आकर बोल पड़ी—अच्छा तो अब चलती हूँ!

—मगर जलपान तो करके हो जाइए!—मालकिन बोली।

—नहीं, अभी तो सीधे घर जाना है, बिना नहाए-धोए यह सब काम तो कर नहीं सकती।

और इस बार अभया तीव्र वेग से बाहर की ओर चल पड़ी। ठाकुर साहब उसके साथ आए, वह गाड़ी में आ बैठी, सामान पहुँचा दिया गया। ठाकुर साहब ने अपनी कृतज्ञता प्रकट की, सवारी चल पड़ी। अभया को जल्द अपने घर पहुँच कर नहाना-धोना था, इस-लिए गाड़ी तेज चाल में चल रही थी, पर रास्ते में जब वह एक गाँव होकर अपने मन-ही-मन जाने क्या सोचते हुए जा रही थी कि इतने में चंपी अचानक उसके सामने दीख पड़ी और वह पास आकर बोली—कहाँ से लौटती जा रही हैं अभया-बहन!

गाड़ी कुछ देर के लिए रोक दी गई, अभया हँस कर बोल उठी—अभी-अभी ठाकुर के घर से लौटी जा रही हूँ चंपी! कहो, तुम अच्छी हो?

—हाँ, अच्छी हूँ, अभया बहन !—चंपी ने स्वाभाविक रूप में ही जवाब दिया—अब तो वह जेल से आ गए हैं और इधर तो कई दिनों से वह आश्रम में ही रहने लगे हैं। शायद तुमने तो उसे देखा होगा, बहन ?

—नहीं, उसे तो मैंने देखा नहीं अबतक, चंपी !—अभया निर्विकार होकर बोली—मंगल आश्रम में रहने लगा है—वह शराबी ? अरी, कहती क्या हो ?

—ठीक ही कहती हूँ, अभया बहन—चंपी उसी तरह कहती गई—कल रात घर आये थे, वे तो बरज बाबू की खूब तारीफ कर रहे थे। कह रहे थे, वह आदमी नहीं, देवता हैं ! जरा भी भेद नहीं, जरा भी अभिमान नहीं ! वह तो उन्हीं की निगरानी में रहने लगे हैं ! कहते थे—आश्रम के कामों में खूब मन लगता है, जहाँ दूसरे आदमी उन पर गंदी-गंदी बातें उगलेते थे, वहां वह बरज बाबू उन्हें अपने साथ रखते हैं। जो वे खाते हैं, उन्हें खिलाते हैं। उन्हीं से सुना—तुम तो उन्हीं के साथ आश्रम का काम करती-फिरती हो।

—तो क्या उसने शराब पीना छोड़ दिया ?—अभया ने मुस्कराते हुए पूछा।

—छोड़ी है या नहीं—सो तो मैं नहीं कह सकती, अभया बहन; मगर जब से वह जेल से लौटे हैं, कभी उन्हें पीते हुए न पाया, न कभी यही पाया कि वह नशे में हैं।

—खैर, सुन कर खुशी हुई मुझे !—अभया खुशी में ही बोली—अबतो तुम पर मार नहीं पड़ती ?

चंपी इस बार मुस्कराई और मुस्कराते हुए ही कहा—मार

भी पड़े तो अब उसके लिए दुख नहीं है, अभया बहन ! वह मेरे हैं, मैं उनकी हूं, वह जिस तरह मुझे रखना चाहें, मुझे उसी में सुख मिलेगा; मगर कोई मेरे सामने उनकी निंदा या उन्हें गंदी बातें कह उठता है, तब लगता है कि या तो मैं मर जाऊँ या उसकी ज़बान निकाल लूँ ! मैं सब कुछ सह सकती हूं, मगर मुझ से यही नहीं सहा जाता ! कौन ऐसा है, जिससे गलती नहीं होती, मगर गलती करने वाला भी तो आदमी है, फिर आदमी को आदमी से आदमी जैसा व्यवहार करना ही चाहिए ! जो खुद अच्छा है, उसके लिए तो कोई बात नहीं, मगर बुरे को अच्छा बनाया जाय—यह तो गंदी बातों से नहीं हो सकता, अभया बहन ! मगर मैं खुश हूं, ऐसा आदमी मिल गया है, अब मेरा भाग्य, अगर उनकी संगत में वह सुधर गए तो फिर क्या कहना ! देखना बहन, अगर कभी तुमसे भेंट हो जाय तो उन्हें समझाना !

अभया चंपी के बातों पर मन-ही-मन बड़ी प्रसन्न हुई। वह अपने शराबी पति की इतनी अनुगामिनी हो सकती है—इसे पाकर वह प्रसन्नता की हंसी हंस पड़ी और हंसते-हंसते ही कहा—जरूर समझाऊँगी चंपी ! मगर जो अपने आप अच्छे रास्ते पर आलगा है, उसे न भी समझाया जाय, वह रास्ते पर खुद चलता चलेगा। खैर, मुझे खुशी है कि तुम्हारे बुरे दिन जाते रहे, अब जो दिन आया है और आयगा – वह तुम्हारी प्रसन्नता के दिन ही आएँगे।

चंपी अभया की बातें सुन कर मन-ही-मन प्रसन्न हो उठी। लगा जैसे उसके अंग-प्रत्यंगों से प्रसन्नता फूट पड़ी हो। वह सिर झुकाए पड़ी रही।

अभया ने कहा—अब चलती हूं चंपी—कह कर उसने गाड़ीवान को इशारा किया। गाड़ी चल पड़ी।

लौटती बार उसे राजा बाबू के घर ही उतरना था,उसने पहले से ही ऐसी बात देरखी थी, पर वह वहाँ उतर न सकी, गाड़ी उसके दरवाजे पर ही आ लगी, वह उतर पड़ी और उतर कर गाड़ीवान से कहा—चाचीजी से कह देना, अभी मैं वहाँ न आ सकी, अवसर पाकर किसी समय आ जाऊँगी।

गाड़ीवान सामान भीतर पहुँचा कर गाड़ी परआ बैठा, अभया दालान होकर अपने कमरे में पहुँची। वहाँ सामान को यथा स्थान रख कर ज्यों ही वह स्नान-घर की ओर जा रही थी, त्यों ही उसने सुना कि कार दरवाजे पर आ लगी है, आवाज उसने सुनी ; पर वह दालान की ओर न आकर स्नान-घर में ही जा पहुँची। अभया जानती है कि, वह कार किस की है, कौन आया है और किस लिए आया है। पर यह जान कर भी वह चंचल नहीं है, बल्कि बाथ-रूम में उसे जितना समय लगना चाहिए, उससे कहीं अधिक समय वह लगा रही है वहाँ। वह जान-बूझ कर ही ऐसा कर रही है ; पर क्यों वह ऐसा कर रही है, वह स्वयं नहीं समझ रही। फिर भी आगंतुक ऐसा है जो उससे मिलकर ही जायगा। उसे इतना जरूर पता लग चुका है कि वह (अभया) अभी-अभी बाहर से लौटकर घर आ गई है, वह घर पर ही है, वह यह भी अनुमान कर रहा है कि बाथ-रूम मेंवह कितना समय लगा सकती है! पर जब उसने आने मेंविलंब देखा तब वह डा० स्वरूप से, जो उसी के साथ बाहर से आए हैं, बोल उठे—शायद अभया देवी बाहर से आकर लेट तो नहीं रही

हैं ? जरूर लेटी ही होंगी।

डा० स्वरूप अपनी आराम कुर्सी से हिले, वह कुछ बोलना ही चाहते थे कि अभया ने भीतर से ही कहा—हाँ, अभया लेट रही है आनंद बाबू ! यही तो उसे लेटने का वक्त मिला है !

आनंद आप-ही-आप प्रसन्न हुआ और प्रसन्नता पूर्वक ही बोल उठा—सो तो जानता था, अभया देवी ! मगर आप जान बूझकर घर में इस तरह आप छिपी रहेंगी—यह मैं नहीं जानता था ! कृपा कर आइए भी तो ! आप इस तरह छिपी रहेंगी तो काम कैसे चलेगा ? सारे काम पड़े हैं, उनमें आपकी सख्त जरूरत है।

—जरूत तो पूरी होने से रही !—इस बार अभया सादे कपड़े में, तौलिये से मुँह पोंछती हुई आकर खड़ी हो रही, देखा—वहाँ केवल आनंद और डाक्टर साहब ही नहीं हैं, राजा बाबू हैं और दो सज्जन और हैं, जो नये-नये दीख पड़ रहे हैं।

अभया दो नवागंतुक को अपने सामने पाकर जरा अप्रतिभ हुई, पर इसी समय डा० स्वरूप ने ही उनका परिचय कराते हुए कहा—तुमने समझा था कि यहाँ केवल आनंद ही है और कोई अन्य नहीं। पर तुम्हें जानकर खुशी होगी कि ये दो सज्जन, जिन्हें तुम अपने बीच पा रही हो, आनंद के अन्यतम मित्र हैं। यह हैं मि० कैलाशपति आई० सी० एस, इस जिला के मजिस्ट्रेट और दूसरे हैं राय बहादुर विपिन सिन्हा, एस० पी०। फिर उन दोनों की ओर मुखातिब होकर बोले—अबतो आप लोगों को शायद इसका परिचय न भी देना हो—यही मेरी बेटी डा०......

दोनों अपने स्थान से जरा उठे और अभया के प्रति सम्मान

पूर्वक अपना अभिवादान जनाते हुए कहा—आपसे मिलकर अवश्य प्रसन्नता कुछ कम नहीं हुई, मिस स्वरूप !

—यह आपका सौजन्य है—अभया ने अपनी स्वीकृति की सूचना दी—मगर इतने बड़े आदमी मेरे यहाँ आएँगे—इसकी तो मुझे कभी कल्पना भी न थी !

—हाँ, यह सच है, अभय !—डा० र. रूप ने प्रसन्नता पूर्वक इसे स्वीकार किया—यह तो आनंद की कृपा ही समझो ! कल ही तो उत्सव होने जा रहा है, खुद प्रान्त के गवर्नर ने अपने पहुँचने की स्वीकृति दे दी है, जिसके प्रबंध में आप सभी को यहाँ आना पड़ा है। हमारा परम सौभाग्य है कि हमलोगों के बीच आनंद बाबू का आना कितना अच्छा हुआ। हमलोगों का कर्त्तव्य है कि यह उत्सव सफलता-पूर्वक सम्पन्न हो जाय........

—इसकी सफलता के लिए आपका सहयोग वांछनीय है, अभया देवी !—आनंद ने अभया की ओर देखते हुए बड़े उल्लास में कहा—कुछ काम ऐसे हैं, जिन के लिए आपकी खास जरूरत है। यों निमंत्रण तो आपको मिल चुका होगा ; पर मैं आज खुद आपको खास तौर पर निमंत्रित करने आया हूँ। मैं चाहता हूँ कि अभी आप हमलोगों के साथ चलें और जो काम आपके लिए बच रहे हैं, उन्हें पूरा करें।

—मैं भी आप से यही अनुरोध करना चाहता था—मि० कैलाशपति ने कहा।

—अनुरोध कह कर आप मुझे लज्जित न करें !—अभया ने जरा गंभीर होकर ही कहा—जहाँ आप जैसे बड़े-बड़े व्यक्तियों का पदार्पण हो चुका है, वह उत्सव यों ही सफल होकर रहेगा, यह तो को

भी विश्वास कर सकता है। पर मुझे दुख है कि मैं साथ न दे सकूंगी!

—साथ न दे सकेंगी?—राहबहादुर विपिन सिन्हा ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए गंभीर स्वर में कहा।

—हाँ, मुझे समय नहीं है, मुझे बाहर जाना है!

—बाहर जाने के लिए समय है, मगर इस कार्य के लिए नहीं, यह क्या कह रही हैं मिस स्वरूप!—फिर से राय बहादुर सिन्हा ने उसी स्वर में कहा।

—जो कह रही हूँ-ठीक कह रही हूँ—अभया रोष में कुछ गंभीर होकर बोली—बाहर जाने के लिए समय है, इसलिए कि वह जरूरी काम है मेरे लिए; मगर यह जरूरी नहीं!

—यह जरूरी नहीं, जहाँ गवर्नर खुद तशरीफ ला रहे हैं!—फिर से राय बहादुर सिन्हा ने ही कहा।

अभया इस बार हँस पड़ी और हँसते हुए ही कहा—गवर्नर तशरीफ ला रहे हैं, यह आप के लिए जरूरी हो सकता है, क्योंकि आप को उनके अंदर रहना है; मगर मेरे लिए वह जरूरी नहीं, मैं अपनी जरूररत को खुद महसूस कर सकती हूँ, आप नहीं कर सकते!

—आई-सी!—रायबहादुर आप-ही-आप बोल कर चुप हो रहे।

—सभव है, जरूरी काम हो, हम लोग भी फील करते हैं; मगर क्या वह कल के लिए टाला नहीं जा सकता?—मि० कैलाशपति ने वातावरण को संभालते हुए पूछा।

—नहीं, बिलकुल नहीं!

—क्या जान सकता हूँ कि वह कौन-सा काम है?—फिर राय बहादुर बोल उठे।

—यह मेरा प्राइवेट बिजनेस है, जिसे मैं बताने से असमर्थ हूँ।

डा० स्वरूप स्वयं चिंतित हो उठे, वह समझ नहीं सके कि इतना जल्द अभया के लिए कौन सा आवश्यक कार्य आ गया है जिसके लिए वह इतना तैयार हो बैठी है, जिसे वह बताना भी नहीं चाहती। मगर राजाबाबू प्रसन्न हैं, वह जानते हैं कि अभया कितनी कर्त्तव्य-परायणा है। वह जानते हैं कि उसे कहाँ जाना है और क्यों जाना है! फिर भी वातावरण में जो अभी शुष्कता आ गई है, इस ओर भी उनका ध्यान है। एक ओर अभया की कर्त्तव्य-परायणता पर जितनी ही उन्हें प्रसन्नता है, उतना ही उन्हें दुख भी है कि उसे इस प्रकार का उत्तर न देना ही अच्छा होता। उन्होंने वातावरण को संभालना चाहा और इसी उद्देश्य से वह बोल उठे—अभया जो कह रही है, उसकी गुरुता को मैं महसूस करता हूँ और यह भी जानता हूँ कि जो कुछ वह कह रही है, वह सच है; मगर क्यों अभया बेटी, एक दिन के लिए क्या तुम ठहर नहीं सकतीं? मैं जानता हूं, देर तो हो ही गई, फिर एक दिन और सही!

अभया इसबार फिर से हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही जवाब दिया—चाचाजी, यह आप क्या कह रहे हैं? और मैं क्या सुन रही हूँ आपके मुख से! सरकारी ओहदे का मोह, और इस बुढ़ापे में, देखती हूँ, आपको भी कुछ कम नहीं है! एक ओर कोई मरे और कोई दूसरी ओर जशन मनाए? आप यही चाहते हैं न! क्या सचमुच आप यही चाहते हैं?

इसबार डा० स्वरूप राजा बाबू की ओर मुखातिब हुए और कहा—बात क्या है, राजा भाई?

—बात!—राजा बाबू ने उन्हें याद दिलाते हुए कहा—मृणाल की चिट्ठी की बात आप क्या भूल गए, डाक्टर भाई?

—ओह, आई-सी !—डा० स्वरूप इस बार आराम कुर्सी से जरा उठे और आकृति पर प्रसन्नता की रेखा खींचते हुए बोले—क्या लल्लन ने वहाँ से कोई चिट्ठी नहीं लिखी ?

—बात क्या है, राजा बाबू ?—इस बार आनंद स्वयं बोल उठा—जान पड़ता है, कोई सिरियस मैटर है, नहीं तो अभया देवी से ऐसी आशा नहीं की जा सकती !

—क्योंकि आपकी ये फ्रेंड हैं न !—रायबहादुर ने व्यंग के स्वर में कहा।

—हाँ, फ्रेंड ही नहीं, मैं और भी कुछ हूँ, जो वह जानते हैं, आप नहीं जान सकते !—अभया इस बार बिगड़ कर बोल उठी।

—खैर, धन्यवाद, इतना तो मैंने जाना ही कि आप और भी कुछ हैं !—फिर रायबहादुर सिन्हा ने ताना मारा !

—देखती हूँ, आप में जरा भी आदमीयत नाम की चीज नहीं रह गई !—इस बार अभया उठ खड़ी हुई और रोष में ही आकर बोल उठी—पुलिस विभाग में काम करते-करते आप अपनी सभ्यता भी खो बैठे हैं, यह बहुत दुख की बात है। मैं ऐसों से बातें नहीं करती। आनंद बाबू, अपने मित्र को आप सँभालिए.........

अभया इसबार रुक न सकी, भीतर की ओर चल पड़ी। डा० स्वरूप भी भीतर-भीतर बड़े अप्रसन्न हो उठे, पर आनंद का दिल न दुखे, इस लिए वे कुछ न बोले। मगर मि० कैलाशपति को रायबहादुर सिन्हा का व्यवहार भद्रोचित न जान पड़ा, तभी वह बोल उठा—डा०स्वरूप, मुझे खेद है कि डा० अभया हमलोगों से अप्रसन्न हो गईं। मगर मुझे प्रसन्नता है कि वे अपनी ड्युटी

को ज्यादा पसंद करती हैं। नहीं तो यह कभी संभव न था कि मि० आनंद के उत्सव में वे शामिल न हों।

इसी समय एक साइकलिस्ट वहाँ आ पहुँचा, जो पोस्टल वर्दी में था। वह भीतर आकर एक तार का लिफाफा डा० स्वरूप के हाथ पर दिया और एक स्लिप, जिसपर उन्होंने स्वाक्षर कर लौटा दिया। तार अभया के नाम था, पर डा० स्वरूप ने ही उसे खोलकर पढ़ा और पढ़कर राजा बाबू की ओर उसे बढ़ाते हुए कहा—अभय का जाना ही ठीक है, राजा भाई!

—क्या कहा, उनका जाना ही ठीक है!—आनंद ने विस्मित होकर पूछा।

—हाँ, मृणाल ने लिखा है—डा० स्वरूप बोले—देखता हूं, मैं भी न रहूंगा आनंद! जीवन-मरण का प्रश्न जहाँ सामने है, वहाँ उत्सव कोई महत्व नहीं रख सकता! देखो राजा भाई......

राजा बाबू ने तार आनंद की ओर बढ़ा दिया, उसने एक ही दृष्टि में उसे पढ़ कर कहा—तबतो आप भी जाएंगे राजा बाबू?

—देखता हूं, मुझे भी जाना ही होगा, मि० आनंद!—राजा बाबू इस बार बड़े ही चंचल हो उठे और चंचल होकर ही बोले—मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है! अभी-अभी मैं अभया पर मन-ही-मन बिगड़ रहा था, मगर अब मैं पाता हूं कि वह अपनी जगह ठीक है। अब आप ही बतलाइए, क्या किया जाय! एक ओर हमारे घर पर उत्सव और दूसरी ओर मेरे दामाद मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहा हो! क्या करूँ—क्या न करूँ—कुछ समझ में नहीं आता। आप ही कहिए मि० कैलाशपति?

—भाई, यह कहना बड़ा मुश्किल है! मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि मैं क्या कहूं?—मि० कैलाश ने कहा—मगर इस वक्त तो गाड़ी कोई मिलेगी नहीं?

—नहीं, सवेरे सात बजे जाती है!

—तो क्या अच्छा हो, अभी कृपा कर फार्म पर साथ चलिए, डा० स्वरूप भी चलें, कम-से-कम काम का कुछ सिलसिला तो जोड़ ही लिया जाय!—मि० कैलाश ने कहा—और अगर अभया देवी इतने कुछ समय तक साथ दे सकें......

—आनंद तुम भीतर जाओ, कह कर देखो—डा० स्वरूप ने आनंद की ओर मुखातिब होकर कहा।

—नहीं, अब मैं उन्हें और न कह सकूँगा।

—अच्छी बात!—मि० कैलाश बोल उठे—अभी और कुछ कहना अच्छा न होगा। अब चला ही जाय! क्यों डा० स्वरूप?

और सबके-सब उठ खड़े हुए और सभी कार पर आ बैठे, कार अपनी दिशा में चल पड़ी।

अष्टादश परिच्छेद

अभया अपने कमरे में आकर निश्चिन्त नहीं है, रह-रह क
उसे याद आती है वह घटना, जो अभी-अभी घटी है। रा
बहादुर सिन्हा जिला के एस० पी० है। अभया पुलिश विभाग व
जानती है और यह भी जानती है कि उस विभाग के व्यत्ति
स्वभावतः संशयालु होते हैं! संभव है, उसने संदेह की दृष्टि र
ही उसे देखा हो; पर अभया को उसकी जरा भी चिन्ता नहीं है
उसे खेद है तो केवल इसी बात का कि उसने रायबहादुर की बातं
का जवाब रूखे और रोष भरे शब्दों में दिया है। उसी सिलसिले
में उसे आनंद का भी स्मरण हो आता है, जिसने सरकार से 'सर
को उपाधि पायी है और जिसके लिए उस उत्सव का आयोजन किया
गया है। उस उत्सव में वह स्वयं निमंत्रित भी है और इतना ही
नहीं, वह आनंद निमंत्रण का ही संदेश स्वयं आकर उसे दे रहा
था। आनंद के उत्सव में अभया उपस्थित न हो—अवश्य यह एक
विस्मय जनक बात है! मगर बात सच्ची है, अवश्य परिस्थिति
ही इतनी विरुद्ध आ पड़ी है कि जहाँ अभया स्वयं उलझन में
पड़ी है! दूसरा कोई समय होता तो लाख नुकसान सह कर भी
वह अवश्य उस उत्सव में सम्मिलित होती, पर उसके सामने तो
जीवन-मरण की समस्या है। ऐसे समय में जब कि मृणाल अपने
परम प्रिय रुग्ण पति के लिए विह्वल होकर अपने पत्र-द्वारा उसका

आह्वान करती है, तब वह उस आह्वान का अनादर कर अपनी मानवता को किस तरह कलंकित करे······नहीं-नहीं, उससे यह अधर्म का कार्य नहीं हो सकता! वह जायगी ही, अपनी सेवा अर्पित करेगी ही। जीवन-मृत्यु अपने बस की बात नहीं है; फिर भी जीवन की रक्षा के लिए लोग सतत तत्पर रहते ही आए हैं, यह उनका स्वाभाविक धर्म है, वह अपने धर्म पर अडिग है···

इसी समय नौकर उसे तार दे आता है, जो अभी-अभी डा० स्वरूप को मिला था, जिसे सब लोग देख चुके हैं। अभया उसके हाथ से उसे लेकर कह उठती है—क्या वे लोग चले गये? उत्तर में 'हाँ' कह कर वह नौकर बाहर निकल आता है। अभया उस तार को पढ़ती है, पढ़ती है कि केश सिरियस हो गई है, डाक्टर बाबू और बाबू जी (राजा बाबू) के साथ तुम लौटती ट्रेन से आओ। अभया अतीव चंचल हो उठती है, उसके सामने मृणाल की आकृति खिंच आती है, उसके साथ वही विवाह-मंडप पर आसीन मृणाल और आदित्य की युगल जोड़ी की अभिनव छवि उसके हृदय को और भी चंचल कर छोड़ती है! अभया अब लेटी पड़ी नहीं रह सकती, उठ खड़ी होती है, कमरे में टहलने लगती है। वह क्या करे—क्या न करे—कुछ समझ नहीं पाती, कुछ क्षण इसी तरह द्वंद्वात्मक अवस्था में पड़ी रहती है, फिर बाहर निकल पड़ती है······

अभया तीव्र वेग से राजा बाबू के दालान में आकर उनसे मिलना चाहती है; पर उसे मालूम होता है कि वे अबतक बाहर से लौट नहीं आए हैं, शायद अबतक आनन्द बाबू के साथ ही हैं। उसे विस्मय होता है, वितृष्णा होती है और खेद भी! वह रुकी नहीं

रहती, भीतर जाती है और सीधे चाची के निकट पहुँचकर कहती है—मैं लौटती वार मिल न सकी थी चाची जी, अभी सोचा कि चलकर मिल लूँ, फिर मिल न सकूंगी, मुझे भोर की गाड़ी से ही जाना है……

—क्या सच, अभया वेटी, भोर की गाड़ी से जा रही हो ?—उल्लसित होकर चाची वोल उठती है—भगवान भला करे, वेटी, मैं कितनी परेशान हूँ, मैं नहीं कह सकती, जव तक यहाँ खुशी की खबर आ नहीं जाती, तव तक न मुझे दिन को चैन मिलता है और न रात को ही नींद आती है……मुझे उम्मीद है कि, तुम्हारे जाने से मृणाल की चिंता मिटेगी और दुल्हा वावू जरूर अच्छे हो जाएँगे……

—उम्मीद तो ऐसी ही है, चाची जी!—अभया सरल गति में बोल उठी—मगर मुझे तो चाचा जी पर क्रोध होता है, जिन्हें अपने घर की वीमारी का पता हो और यह भी पता हो कि बीमारी साधारण नहीं; फिर वह इधर-उधर उत्सव मनाते फिरें—यह क्या तुम्हें अच्छा लगता है, चाचीजी ?

अभया आई थी, उसके साथ आप को वहाँ चलना ही होगा—चलना ही होगा। हाँ, चाची जी, देखेंगी—वह आप को टरका सकते है; पर मुझे टरकाना सहज नहीं। भोर की गाड़ी के लिए तैयार रहें।

अभया बोल कर चल पड़ी, वह भाभी से अभी मिल न सकी, चाची अपनी जगह बैठी रह कर अभया की ओर अपलक दृष्टि से देखती रही और मन-ही-मन सोचती रही कि अभया को मृणाल के प्रति कितना अधिक स्नेह है।

अभया घर लौट आई और अपने कपड़ों को चुन-चुन कर अपने सूटकेस में भरने लगी। इस तरह जब वह अपने सूटकेस को भर चुकी तब वह अपने पिता के कमरे में गई, उनके कपड़ों को सहेजा और उन्हें उनके सूटकेस में भरा। उसके बाद कुछ जरूरी चीजें रखीं। इस तरह अपनी तैयारी पूरी कर चुकने के बाद रसोई घर में जाकर भोजन करने बैठ गई। मगर, भोजन शेष भी न कर पाई थी, तभी डा० स्वरूप दालान में आते हुए दीख पड़े, और आते ही उन्होंने अभया को पुकारा। इसलिए वह झटपट भोजन शेष कर मुँह पोंछते-पोंछते ही उनके निकट पहुँच कर बोल उठी—क्या है बाबूजी!

डा० स्वरूप आराम कुर्सी पर लेट गए और लेटते हुए स्थिर होकर ही बोले—उस समय कह कर न जा सका अभय, राजा भाई ने भी तय कर लिया है वहाँ जाने को, भोर की गाड़ी ही पकड़नी है, यहाँ से कम-से-कम तीन-साढ़े तीन को ही चल देना चाहिए। कपड़े-लत्ते........

—कपड़े-लत्ते वगैरह सहेज कर मैंने सूटकेस में रख डाले हैं

बाबूजी—अभया अत्यंत प्रसन्न होकर ही बोली—अब इन सब के लिए कुछ करना-धरना नहीं है। आप ब्यालू कर लें और सो रहें। रात ज्यादा हो गई है। मैं आपका खाना यहीं भिजवाए देती हूँ।

अभया कह कर भीतर की ओर गई, उसे बड़ी प्रसन्नता हुई कि वह अकेली ही नहीं जायगी, बल्कि उसके बाबूजी और राजाबाबू भी उसका साथ देंगे।

अभया आकर लेट रही, पर उसे नींद न आई, वह इस तरह लेटी न रह सकी। उसके मस्तिष्क में एक ही साथ अनेक भावों का द्वंद्व-युद्ध जैसे छिड़ गया हो। इसलिए वह अपने को स्थिर करने में असमर्थ हो रही। जब बड़ी देर के बाद वह अपनी उलझन को कुछ सुलझा सकी, तब वह अपने बिछावन से उठी, टेबिल के पास आई, लैंप की बत्ती को उसका कर और तेज किया, और ड्रायर से राइटिंग पैड निकाल कर पत्र लिखने को बैठ गई। इस तरह जब वह पत्र को शेष कर सकी, तब उसने एक बार निश्चिंतता की साँस ली। फिर लैंप को धीमी कर बिछावन पर आ लेटी। इस बार उसे खूब गहरी नींद आई, और वह तब तक सोयी रही जब तक डा० साहब ने आकर उसे नहीं जगाया। सवारी के लिए कार पहले से ही आकर पड़ी थी। डा० साहब ने सोफर को उठा कर कार के साथ उसे राजाबाबू के पास भेजा, तब तक इधर अभया अपनी तैयारी में लगी।

कार राजाबाबू को लेकर आ पहुँची, डा० स्वरूप और अभया भी अपने सामानों के साथ कार पर आ बैठे। कार स्टेशन की ओर चल पड़ी। जब कार फार्म होकर दौड़ी जा रही थी, उस समय अभया ने देखा कि, स्थान-स्थान पर मेहराब लगे हैं, जो फूल और

पत्तों से सजाए गए हैं, बीच-बीच में बिजली की बत्तियाँ जल रही हैं, जो अत्यंत ही आकर्षक हो उठी हैं। अभया की दृष्टि में यह दृश्य बड़ा ही करुण, बड़ा ही विषादमय जँचा। वह और अधिक न सोच सकी। कार यथा समय स्टेशन पर आ लगी। सोफर ने उतर कर दरवाजा खोला, सभी उतर पड़े, सामान स्टेशन पर पहुंचाए गए। टिकटें कटाई गईं। गाड़ी आने में अब भी कुछ देर थी; सोफर भी उन सभी के साथ अब भी प्लेटफार्म पर था, अभया ने उसे अकेले पाकर अपने हाथ की अटैची से रात का लिखा वह पत्र निकाला और उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा—इसे आनंद बाबू को दे देना। उसी समय ट्रेन आ पहुँची और सब-के-सब डिब्बे में जा बैठे। यथा समय ट्रेन चल पड़ी।

राजाबाबू ने स्टेशन पर आकर अपनी पार्टी के साथ आने की सूचना तार-द्वारा देदी थी, इसलिए जैसे ही ये सब स्टेशन पर गाड़ी से उतरे वैसे ही लल्लन स्वयं स्टेशन पर मिला, अभया ने ही पहले पहल उसे देखा और वह तुरत निकल कर उसके पास आकर बोल उठी—आदित्य बाबू कैसे हैं भैया ? कुशल तो है ?

—हाँ, कुशल ही है अभया !—लल्लन ने निश्चिंतता की साँस लेते हुए कहा—पर अब भी उन्हें होश नहीं है। ये दिन बहुत बुरे कटे, पता नहीं, कब क्या हो जाय ? तुमने आने में बहुत देर कर दी !·········

तभी डा० स्वरूप नीचे उतरे और राजा बाबू भी। लल्लन ने उन दोनों के पाँव छुए, तभी डा० स्वरूप उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोल उठे—हाँ, आने में देर होगई लल्लन; तुम्हारा तार अगर कल न मिला होता तो शायद हमलोगों को आज यहाँ न पाते !

बड़ी-बड़ी मुश्किलों को पार कर हमलोग यहाँ आ सके हैं। मगर देर करने की जरूरत नहीं, बाहर चलो.........

और सभी बाहर आए, कार लगी थी, सामान बाहर बँध गए, सभी कार पर आ बैठे, कार अपनी गति में चल पड़ी।

कार जब सदर दरवाजे पर आ लगी, तब अभया ने देखा कि वह मकान क्या है, राजमहल है! बहुत बड़ी विस्तृत फुलवारी के बीच आलीशान महल स्वयं अपनी गुरुता उद्घोषित कर रहा है। अभया को मृणाल की याद हो आई, मृणाल इतनी सौभाग्यमयी है, उसे अब अनुभव हुआ। सब-के-सब उतर कर अंदर की ओर चल पड़े, कई मकानों को पार कर, लल्लन उन सभी के साथ उस कमरे में आया जहाँ आदित्य पलंग पर लेटा पड़ा है। उसके पास मृणाल है, दो नर्स हैं.........

अभया लल्लन के पीछे-पीछे दबे पाँव कमरे के अन्दर आई और मृणाल को अपनी भुजाओं में कसकर बोल उठी—आ गई हूँ, मृणाल, आ गई हूँ, बाबू जी भी आए हैं, चाचा जी भी आए हैं.....ओह, सूख कर कैसी काँटा हो उठी है पगली!

मृणाल कुछ न बोली, उसकी आँखों से आँसुओं की बाढ़ जैसे फूट पड़ी! उसी समय डा० स्वरूप और राजा बाबू ने कमरे के भीतर प्रवेश किया। मृणाल अपने पिता के पैरों पर गिरना ही चाहती थी कि डा० स्वरूप ने उसे बीच में ही रोक कर उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा—मंगलमय प्रभु सब मंगल ही करेंगे मृणाल! हमलोग आ गए हैं, कोई चिंता की बात नहीं। तुम अभया को अपने कमरे में ले जाओ, हमलोग यहाँ ठहरते हैं, अब इनकी देख-भाल का जिम्मा मुझ पर रहा।

डा० स्वरूप बीमार के सिरहाने की ओर कुर्सी लेकर बैठ गये। उन्होंने बीमार के सिर पर हाथ फेरा, उसकी नाड़ी देखी, स्टेथस्कोप लगा कर देखा और राजा बाबू से बोल उठे—घबराने की बात नहीं, राजा भाई, घबराने की बात नहीं········

—सो मैं कैसे कहूँ, डा० भाई!—राजा बाबू ने बीमार की देह पर हाथ फेरते हुए कहा—तुम डाक्टर हो; तुम ऐसा कह सकते हो, पर जब तक मैं इन्हें होश में नहीं देख लेता तब तक मेरे हृदय पर कैसा कुछ गुजर रहा है, सो मैं······

—सो मैं भी जानता हूँ राजा भाई!—डा० स्वरूप ने उनकी बात काटकर बीच ही में कहा— मगर मुझे परमात्मा पर भरोसा है और अपने आप पर विश्वास। मैं इतना सिरीयस नहीं समझता, टाइफाइट के केस में संसलेस रहना कोई खतरे की बात नहीं।

डा० स्वरूप ने हेंड बैग से दवा निकाली और इंजेक्सन की सिरींज में उसे भरा और रोगी के बाएँ हाथ को अपने हाथ में लेकर धीरे से सुई चुभो दी। घंटा भी न बीतने पाया कि डा० स्वरूप के अनुभव और दवा काम कर गई, रोगी ने धीरे से आँखें खोलीं, लगा जैसे गंभीर निद्रा से सोकर उठ रहा है वह। राजा बाबू के ओठ हिले, पर प्रसन्नता के मारे वह बोल नहीं सके! उधर रोगी ने आँख खोलते ही धीरे से पुकारा—मृणाल!

नर्स उसके सामने आई और आकर मुस्कराती हुई बोली—क्या मृणाल को बुला दूँ?

—मृणाल को!—रोगी ने इस बार स्पष्ट रूप से आँखें खोलीं और पाया कि सामने जो बैठे हैं, वह तो उनके श्वसुर हैं—श्व-

सुर ही तो! तो क्या वह आ गए हैं?—और तभी वह बोल उठा—नहीं रहने दो!

तभी राजा बाबू स्वयं बोल उठे—अब कैसा मालूम पड़ रहा है, बाबू? क्या मुझे पहचानते हो?

रोगी के ओठों पर एक क्षीण मुस्कराहट की रेखा दौड़ गई और धीमे स्वर में वह बोल उठा—बड़ा कष्ट किया आपने बाबू जी, मेरा प्रणाम······

रोगी ने अपने दोनों हाथों को जोड़ कर अपने सिर से लगाया। तभी डा० स्वरूप ने फिर से नाड़ी देखी और प्रसन्नता पूर्वक बोल उठे—आदित्य बाबू, मुझे पहचानते हो?

इसबार आदित्य ने उनकी ओर देखा और देखते ही बोल उठा—यह तो आपका अतिशय अनुग्रह है!

—अनुग्रह नहीं,—डा० स्वरूप प्रसन्न वदन बोल उठे—यह तो कर्त्तव्य था आदित्य बाबू! तुम तो कोई बेगाने हो नहीं। तुमने काफी कष्ट सहे हैं; पर अब और कष्ट में रहना न पड़ेगा। अभी एक सुई और दिए देता हूँ······

और डा० स्वरूप ने फिर से सुई भरी और मुस्कराते हुए रोगी से कहा—डाक्टर का काम भी बड़ा कठोर होता है, आदित्य बाबू। देखो न, जान-बूझ कर सुई चुभोनी पड़ती है! हाँ, देखूँ इस बार, दायाँ हाथ!

आदित्य ने अपना हाथ बढ़ाते हुए कहा—डाक्टर का काम कठोर होता है, यह सही है; मगर आपतो कठोर नहीं, बड़े दयालु हैं, दयालु न होते तो मेरे यहाँ······

—अभी ज्यादा बोलना ठीक नहीं आदित्य बाबू, आराम से

लेटे रहो—कहते हुए डा० स्वरूप ने बड़ी शीघ्रता से सुई चुभोई और धीरे-धीरे औषधि प्रवेश करा कर सुई निकालते हुए बोले—अब आराम से लेटे रहो, भगवान चाहेंगे तो इतना ही बहुत है, अब सुई चुभोने की और आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

इस बार आदित्य की आँखें कृतज्ञता के रस से सिक्त हो उठीं; पर वह मुँह से कुछ बोल न सका।

कहना व्यर्थ है कि डा० स्वरूप के सतत उद्योग और अनुभव से आदित्य में पुनः प्राण-प्रतिष्ठा हुई। वह तीन-चार दिन के भीतर ही उठ बैठा, उसे पथ्य दिया गया; पर वह अब भी दुर्बल है, बिछावन ही उसका सहारा है।

अभया उसकी सेवा में आ जुटी है। वह अपने हास-परिहास के भीतर ही उसमें प्राणों का संचार कर रही है। आदित्य अब अपने सहारे खड़ा होता है, अपने सहारे कमरे से निकल कर भीतर की फुलवारी के चबूतरे पर आकर आरामकुर्सी पर आ लेटता है, वहाँ अभया एक ओर रहती है और दूसरी ओर मृणाल। मृणाल भी अब बहुत वाचाल हो उठी है, जिस मृणाल ने अपने बुरे दिनों में रात को रात नहीं समझा, जो अपनी तपस्या में अपर्णा हो बैठी, वही अपनी सफलता की सीमा पर पहुँच कर पाती है कि उसका आराध्यदेव उसके निकट प्रसन्न वदन बैठा उसकी ओर स्नेहपूर्ण दृष्टि से निहार रहा है, उसी दृष्टि की मूक भाषा समझ कर मृणाल बोल उठती है—डाक्टर चाचा और पिता जी अब जाना चाहते हैं; क्या कहते हैं, अब वे जायें?

—क्यों, इतनी जल्दी क्या है, मृणाल!—आदित्य ज़रा चिंतित स्वर में कहता है—लल्लन बाबू तो गए ही हैं, घर की

देखभाल करेंगे ही, कुछ दिन रुक जाते तो······

—रुकने के लिए तो अभया बहन रुक ही रही हैं—मृणाल बोल उठी।

—मैं ही रुक कर अब क्या करूंगी, मृणाल ?—अभया तभी बोल उठती है।

—अभी आपने किया ही क्या है ?—आदित्य हँस कर बोल उठता है—अब तक तो डाक्टर चाचाजी की देख-रेख में मैं रोग-मुक्त हो पाया हूँ, मगर रोग की मुक्ति से ही तो मैं काम करने योग्य नहीं हो जाता ! जब तक पूर्ण सबल न हो लूँ, तब तक··· हाँ, तब तक तो आप को रहना ही चाहिए·····क्यों, आप को कोई कष्ट तो·········

—कष्ट !—अभया हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—खैर, मेरे कष्टों की ओर आप का ख़याल तो है! मुझे कोई कष्ट नहीं है—इसे स्वीकार करती हूं, पर अच्छा तो यह होता कि मैं भी उन लोगों के साथ ही चली जाती······क्यों, क्या कहते हैं आप ?

—मृणाल शायद जाने को कह सकती है; पर मैं तो आपसे अनुरोध ही करूँगा कि जब आप यहाँ आई ही हैं तो जब तक मैं काफी सबल नहीं हो लेता तब तक आप को रहना ही चाहिए। मृणाल मुझे सबल नहीं बना सकती, जितना आप बना सकती हैं·········इसे आप सच मानिए।

अभया उसके अंतिम वाक्य पर स्वयं लजा उठी, लज्जा से उसकी आकृति आरक्तिम हो उठी, वह कुछ क्षण चुप साधे बैठी रही, फिर बोल उठी—मृणाल, तुम क्या कहती हो, मैं तुमसे ही सुनना चाहती हूँ !

—मैं जानती हूँ, ये जो कह रहे हैं, सच कह रहे हैं,—मृणाल मुस्कराई और फिर बोल उठी—क्यों न और कुछ दिन ठहर ही जाओ अभया बहन, तुम्हें तो ऐसा कुछ काम है भी नहीं। अगर हो भी तो इससे ज्यादा वह आवश्यक न होगा—ऐसा मैं जोर देकर ही कह सकती हूँ। मैं जानती हूं, तुम्हारा रहना इनके लिए कितना आवश्यक है........

अभया इस बार क्षण भर चुप रही, फिर आप-ही-आप कुछ गंभीर होकर बोल उठी—तो मैं रहती हूँ, अब तो आप प्रसन्न हुए? क्यों मृणाल, अब तो तुम खुश हो?

—जरूर-जरूर!—मृणाल और आदित्य दोनों एक स्वर में और एक ही साथ बोल उठे।

आदित्य के आग्रह से डा० स्वरूप और राजाबाबू और भी एक सप्ताह रह गए। अब आदित्य वाहर भी आने लगा है, उसमें पहले से अभूतपूर्व परिवर्त्तन हो चला है। इतना शीघ्र और इतना द्रुतवेग में वह सबल हो उठेगा—इतनी कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

अंत में वह दिन भी आया जब डा० स्वरूप और राजाबाबू अपने घर के लिए प्रस्थित हुए। उस दिन उन्हें पहुँचाने के लिए स्वयं आदित्य स्टेशन तक आया, अभया और मृणाल भी आईं। यथा समय ट्रेन आई, दोनों डब्बे में जा बैठे, सामान रखवा दिए गए, खाने-पीने के लिए बहुत से पकवान और फल, उन दोनों की इच्छा के विरुद्ध भी, मृणाल ने चुपके से रख दिए। गाड़ी खुलने में अब भी देर थी, तभी राजाबाबू बोल उठे—बड़ी बीमारी के बाद चेंज में जाना अच्छा है बाबूजी, इसलिए मेरी बड़ी

इच्छा है कि कुछ दिनों के लिए तुमलोग अपने घर आ जाओ तो बड़ा अच्छा ! क्यों, डाक्टर भाई ?

—हाँ, हाँ, यह तो बहुत ही अच्छा होगा, ठीक कह रहे हो राजा भाई—डा० स्वरूप बोल उठे—आदित्य बाबू, मैं भी यही कहा चाहता था, तबीयत भी बहल जायगी और स्वास्थ्य में भी सुधार होगा। अरी अभय, देखना, जरूर साथ लाना। क्यों आदित्य बाबू, क्या कहते हो ?

—आज्ञा शिरोधार्य हैं, प्रयत्न तो रहेगा ही, पर काम सारे पड़े हैं, देखूँ किस तरह उन्हें संभाल पाता हूँ।

—मगर काम में ही ज्यादा झुक न पड़ना, आदित्य बाबू—डा० स्वरूप बोले—काम के लिए तो सारी ज़िंदगी पड़ी है, मगर सब से पहले अपने शरीर पर ही ध्यान देना उचित होगा। क्योंकि इसके अभाव में तो और कुछ किया नहीं जा सकता है ! इसलिए, शरीर पहले और काम पीछे—इसे याद रखो। तभी चेंज की बात मैं कह रहा था……

इस बार अभया हँसती हुई बोल उठी—इन्हें क्यों पूछते हो बाबूजी, मैं जब रह रही हूँ तो इसका मतलब साफ है कि इन्हें हमलोग लेकर ही आवेंगे। देखेंगे ये किस तरह नहीं जाते……

—सो ही तो आशा है, अभया बेटी !—इस बार बोलते हुए राजा बाबू हँस पड़े और उनकी हँसी में सभी ने एक-स्वर से साथ दिया।

गाड़ी चल पड़ी। जब तक गाड़ी प्लेटफार्म से निकल नहीं गई, तब तक ये सब स्टेशन पर खड़े-खड़े ट्रेन की ओर देखते रहे, फिर स्टेशन से बाहर आकर कार पर बैठे, कार अपनी गति में चल पड़ी।

उनविंश परिच्छेद

आदित्य जब स्टेशन से लौट आया तब संध्या हो रही थी। इधर बीमारी में जब तक कुछ अच्छा रहा, अखबार या रेडियो पढ़ता-सुनता रहा, पर ज्यों ही बीमारी बढ़ चली त्यों ही पढ़ना या सुनना रुक गया। आज संध्या को उसकी तबीयत रेडियो सुनने को लालायित हो उठी, तभी वह अपने कमरे से सटे लाइब्रेरी-हॉल में आकर सोफे पर बैठते हुए बोल उठा—मृणाल, रेडियो का प्लक ठीक कर दो तो! सुनूँ कुछ इधर-उधर की खबरें।

—खबरें ही सुनेंगे, गाना नहीं?—अभया बोल उठी।

—क्या गाना ही आप सुनना चाहती हैं?

—हाँ, रहे कुछ!

और लखनऊ के स्टेशन से मीटर जोड़ा गया, और गाना शुरू हुआ। लगातार दो-तीन गाने के बाद अभया बोल उठी—बस अब गाना शेष करो मृणाल।

—क्या और नहीं?

—नहीं, खबरें ही सुनी जायँ। इधर अखबार भी तो नहीं देख सकी। अब तो कांग्रेस वर्किंग कमिटी की मिटिंग खतम हो गई होगी! नहीं, क्यों?

—शायद!—आदित्य ने अनिश्चित रूप से कहा—क्या इधर सिटिंग चल रही थी? हाँ मृणाल, तब तो बंबई के स्टेशन से ही सुनना अच्छा होगा? क्यों? आज कौन सी ता० है......मुझे यह भी पता नहीं कि, कौन सा महीना है।

आदित्य बोल कर स्वयं हँस पड़ा। तभी अभया बोल उठी—आपतो उस समय आपही परेशान थे। मालूम हो भी कैसे? ता० और महीने से बीमार का क्या काम······

अभया बोल कर आपही ही हँस पड़ी, आदित्य भी हँसा। मृणाल ने बम्बई का मीटर जोड़ा और तभी रेडियो गड़गड़ा उठी और मोटी आवाज में सुन पड़ा—नौ अगस्त, शाम का वक्त······'क्विट इंडिया' रिज्योलेशन पास···महात्मा गांधी, जवाहर नेहरू, मौलाना आजाद··· जो जहाँ थे, वहीं से एक-एक कर सभी अहले सुबह गिरफ्तार हो गए······वर्किंग कमेटी के मेंबर बचने न पाए······पब्लिक में बड़ा सरगर्मी है—अजीब सनसनी है···अजीब जोश है······नहीं कहा जा सकता, नतीजा क्या होगा···क्विट इंडिया रिज्योल्युशन चाहे जैसा रहा हो, मगर अचानक इनकी गिरफ्तारी साफ बताती है कि... रात को ही टेलीफोन और टेलीग्राम के वायर काट डाले गए ताकि यहाँ की खबरें बाहर न जा सकें। अब तो पब्लिक भी काफी उफान पर आ रही है, समझ में नहीं आता—अब क्या हो जाय! आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं। अब यह खबर यहीं खतम होती है।

अभया की मुख-मुद्रा गंभीर हो उठी, वह उठ खड़ी हुई, उसने रेडियो का प्लग आफ कर दिया, वह अपने आप में बहुत ही चंचल हो उठी और तभी बोल उठी—आसार अच्छे नजर नहीं आ रहे हैं आदित्य बाबू, सचमुच आसार अच्छे नहीं दीखते।

—क्या खयाल है आपका?—आदित्य ने अपनी चंचलता लिए हुए इसबार अभया की ओर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

—खयाल?—अभया क्षण भर चुप रही, फिर जाने क्या सोच-कर गंभीर होकर ही बोली—बड़े भयंकर वक्त से हमलोगों को

गुजरना पड़ेगा ! लगता है—क्रांति की सृष्टि हो चुकी है, जो आग इतने दिनों से छिपी पड़ी थी, लगता है, जैसे वह भभक उठी है। नेताओं की गिरफ्तारी इस बात का सबूत है कि नौकरशाही ने जो भूल की है, वह ऐसी नहीं, जो तुरत भुलाई जा सके, वह हमारे इतिहास की एक चीज होकर रहेगी।

—क्या कह रही हो अभया बहन!—इसबार मृणाल निस्तब्धता को भंग करती हुई कुछ घबरायी हुई सी बोल उठी—तुम्हारी बातें कुछ समझ नहीं पा रही, साफ-साफ कहो, अभया बहन, बात क्या है ?

—दिल्ली स्टेशन को देखो तो भला, मृणाल !

मृणाल ने रेडियों की स्वीच को ठीक किया, पर रेडियो गड़गड़ा कर रहगई, दिल्ली स्टेशन से कुछ भी आवाज न आई। तभी मृणाल बोल उठी—अब क्या करूँ, अभया बहन?

—करोगी क्या तुम पगली !—अभया इस बार हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली—क्यों तुम जेल जाने से घबरा रहीं मृणाल? आज तो हमारे नेता ही गिरफ्तार हुए हैं, काल तो हमारी ही बारी आयगी ! उस समय तुम क्या करोगी, मृणाल ?

—मैं क्या करूंगी, सो मैं खुद नहीं जानती—मृणाल अत्यन्त गंभीर होकर बोल उठी—मगर मुझे तो भय है कि कहीं आप न गिरफ्तार कर लिएँ जायें ! आप अभी तक पूर्ण सबल भी तो नहीं हो पाए हैं······

मृणाल की बातों पर आदित्य हँस पड़ा और हँसते-हँसते ही बोला—इतना सबल जरूर हूँ कि जेलखाने जा सकूँ ! चेंज में तो जाना था ही मृणाल, फिर जेलखाना ही क्या बेजा होगा ? मगर मुझे दुख है कि

अभया देवी को मैंने क्यों रोक रखा ? आप सकुशल चली गई होतीं तो अच्छा होता······

—अच्छा क्या खाक होता!—इस बार अभया का मुख तमतमा उठा, वह अपनी निर्भय वाणी में बोल उठी—जब आदित्य बाबू जेल जा सकते हैं तो यह अभया भी खुशी-खुशी जेल जा सकती है। अभया कभी किसी से पीछे नहीं रह सकती !······मगर अभी तो इन बातों को यहीं छोड़िए। जैसा समय आयगा, देखा जायगा, अभी से उसके लिये क्यों चिंता की जाय ! क्यों परेशान हों ? मगर इतना जरूर है कि अब तो हमें तैयार हो रहना चाहिए, जाने कब किधर से भूत टपक पड़े ! मगर अभी इन बातों पर विचार करना फिजूल है, अब हमलोग उठें। मुझे भूख लग रही है, फिर हमलोग साथ मिल कर खा सकेंगे वा नहीं, नहीं कहा जा सकता। चलो मृणाल, महाराज से कहो—खाना परोसें। उठिये आदित्य बाबू, चल कर मुँह-हाथ धोइए···और अभया बोल कर उठ पड़ी, मृणाल भी उठी, आदित्य भी उठा। उस दिन की मजलिस आनंद और उल्लास में वहीं खतम हुई।

भोजन कर चुकने के बाद आदित्य अपने पलंग पर आ लेटा। मृणाल और अभया दोनों अपने कमरे में आकर बड़ी देर से गपशप कर ही रही थीं कि इसी समय दरवान भीतर आया। अभया ने उसे अपने कमरे से ही आते देख लिया था, वह कमरे के दरवाजे के पास आकर बोल उठी—क्या चाहते हो ?

—बाहर दालान में बहुत से कांगरेसी बाबू आए हैं, बाबू से मिलना चाहते हैं।

—उन्हें कह क्यों नहीं दिया कि बाबू सो रहे हैं?—अभया ने

किंचित रुष्ट होकर ही पूछा।

—कह तो दिया था, बाबू रात को अधिक जगते नहीं हैं!

—फिर?

—फिर वे कहते हैं कि बहुत जरूरी काम है, अभी मिलना ही चाहिए।

—अभी मिलना ही चाहिए!—अभया ने अपने आप इन शब्दों को दुहराया, फिर कुछ क्षण तक चुप रह कर बोल उठी—चलो मैं खुद चलती हूँ! बड़ी मुश्किल से तो अभी उनकी जान बची है और आए उन्हें तंग करने! ये सब उन्हें चैन न लेने देंगे।

अभया बोलकर द्रुग गति से दालान की ओर चल पड़ी। मृणाल भी उन दोनों की बातें सुन रही थी, वह भी कमरे से निकली और उस ओर को चल पड़ी।

अभया ने दालान में आकर देखा—कोई बीस-पचीस की संख्या में होंगे, काँगरेसी सज्जन बैठे हैं, सब-के-सब खादी-धारी हैं, सब-के-सब सुसभ्य और सज्जन हैं। मगर सभी की मुख-मुद्राओं पर जिज्ञासा की रेखाएँ इकत्रित हो उठी हैं।

अभया वहाँ पहुँच कर एक ओर खड़ी हो रही, फिर निसंकोच होकर पूछा—बाबू से आपलोग क्या कहा चाहते हैं?

सभी ने अभया की ओर देखा, सभी की दृष्टि में वह अपरिचित-जैसी लगी। सब एक दूसरे की ओर देखने लगे। तभी उनमें से एक जरा संकुचित होकर बोल उठा—मगर बाबू से ही कहना ज्यादा अच्छा होता।

—क्यों, मुझ से आप भय खाते हैं!—अभया हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही बोली—मगर भय खाने की कोई आवश्यकता

नहीं। आपको जानना चाहिए कि, जब मैं इस घर में रह रही हूँ तब जो कुछ मैं कहूँगी--अधिकार-पूर्ण ही कहूँगी, उचित ही कहूँगी।

अभया बोल कर चुप हो रही, क्षण भर वहाँ निस्तब्धता बनी रही, फिर उन में से एक ने कहा—क्या मृणालिनी देवी भी सो रही हैं ?

—हाँ, मृणालिनी भी सो गई हैं—अभया इसबार कुछ सतेज होकर ही बोल उठी—मगर मैं उनकी बहन हूँ और मृणालिनी देवी या आप लोग जो काम करते हैं वही मैं भी करती हूँ, मैं कोई दूसरी नहीं......

—तो आप जानती होंगी, महात्मा जी......

—हाँ जानती हूँ, वे गिरफ्तार हो चुके हैं और उनके साथ अन्य दूसरे भी......मगर आप कहा क्या चाहते हैं, उसे ही साफ-साफ कह डालिए तो ज्यादा अच्छा।

अभया बोल कर जन-समूह की ओर देखने लगी। वातावरण कुछ क्षणों तक उसी तरह स्तब्ध रहा; पर स्तब्धता उसी तरह रह नहीं सकी, जब उनमें से कई एक स्वर में बोल उठे—हमें लीड चाहिए.........

—लीड !—अभया क्षण भर सोचती रही, फिर गंभीर स्वर में बोल उठी—हाँ लीड चाहिए ही; मगर इस समय और कोई लीड न करेगा, लीड तो सब से ज्यादा आपकी अंतरात्मा ही कर सकती है ! जो आवश्यक और उचित जँचे, उसीके आह्वान पर करते जाइए.........अभी और सोचने-विचारने का वक्त नहीं है, ऐसे समय में और सोचना हो ही क्या सकता है। जब घर में आग लग चुकी है......यह आग युगों के

बाद भड़की है, इसे हम-आप रोक भी नहीं सकते···प्रकृति अपना काम करके ही रहेगी। अभी आप लोग जाइए, आराम कीजिए और आराम करने के वक्त अपनी अंतरात्मा से पूछिए, फिर जो वह आज्ञा दे, वही कीजिएगा। बस, अब जाइए, नमस्कार।

सभी आगंतुक सज्जन उठ खड़े हुए। सभी ने एकबार अभया की ओर प्रसन्न दृष्टि से देखा, प्रतिवाद के रूप में कोई कुछ न बोल कर सभी चलने को उद्यत हो उठे। अभया उन्हें विदा कर भीतर आई, मृणाल वहीं खड़ी थी, वह हँस पड़ी और हँसते-हँसते कहा—अच्छी लीड कर आई अभया बहन ?

—क्या इसमें भी तुम्हें संदेह था मृणाल ? तुम छिप-छिप कर यहीं सुन रही थीं पगली ?

—नहीं तो......

उसके बाद दोनों अपने-अपने पलंग पर आ लेटीं। आज का दिन हँसते-खेलते ही समाप्त हुआ था, पर रात किस तरह कटी—उसे अभया ने न जाना; पर मृणाल की आकृति प्रातःकाल स्वयं बता रही थी कि उसे रात को खूब गाढ़ी निद्रा न आ सकी।

रात-ही-रात बिजली की तरह चारो ओर गिरफ्तारी के समाचार फैल चुके हैं और रात-ही-रात सभी ने अपनी अंतरात्मा की पुकार सुन ली है। प्रातःकाल उठते ही लगा जैसे विषाद का बादल सर्वत्र आकाश में छाया हुआ है, वातावरण अत्यंत ही शुष्क हो उठा है, जहाँ तक दृष्टि जाती है, दीख पड़ता है कि प्रकृति अत्यंत अशांत और रुद्र हो उठी है, वह लीलने को जैसे मुँह बाए खड़ी जैसी दीख रही है। लगता है जैसे प्रलय होकर ही रहेगा ! वायु का वेग इतना सूक्ष्म हो उठता है कि लगता है जैसे साँस रुक-रुक कर चल रही है,

बाल सूर्य की ओर देख कर लगता है कि काल पुरुष की खोपड़ी को चूर-चूर कर जैसे किसी ने लहू-लुहान कर दिया है, और सर्वत्र जो पूर्व दिशा की ओर लालिमा छा गई है, वह लगता है जैसे भारतीय नारियों का सुहाग-सिन्दूर सिमिट कर आकाश में जा लगा है। राज-पथपर स्वयं विराट जन-समूह जैसे कौनसा निमंत्रण पाकर अपं आप बढ़ा जा रहा है—कहाँ, क्यों जा रहा है, क्या करने जा रहा है उसे इसका कुछ भी पता नहीं, फिर भी वह बढ़ता जा रहा है, वह ब भी नहीं पाता, तभी दूसरा, उससे भी बड़ा समूह, आ पहुँचता है, फि तीसरा, फिर चौथा,—इसी तरह जाने मरण-यज्ञ की तैयारी में घ छोड़-छोड़ कर बढ़े चले जा रहे हैं। मृणाल छत पर जाकर देखती ं और टकटकी बांध कर देखती रह जाती है, अभया वहाँ जा पहुँचत है, वह देखती है और आप ही आप बोल वह उठती है—रुद्र क प्रलयंकर रूप कितना भयावह है! ओह कितना भयानक, क्य उसका तांडव नृत्य देखोगी मृणाल ?

—तांडव नृत्य !—चकित-विस्मित दृष्टि से मृणाल देखने लगत है अभया की ओर, वह समझ नहीं पाती कि अभया उसे क्या कह रही है; मगर अभया उस ओर नहीं देखती—देखती है राज-पथ क ओर, फिर देखती है दूसरी दिशा की ओर—और जिधर देखती है उधर ही वह पाती है कि उद्दाम गति में बढ़ने वाला संक्षुब्ध-जन समुद्र में जाने कैसा ज्वार आ गया है ! यह संक्षुब्ध जन-समुद्र क्य यों ही शांत हो जाने को है ? जिधर ही वह बढ़ेगा, प्रलयंक दृश्य दिखा कर ही दम लेगा ! कौन ऐसा है जो बढ़ते हुए सागर प्रवाह को रोक सका है ! वह क्या रुकने की चीज है ? अभया वहीं से देखती है—देखती है कि ये जन-समूह कई रूपों में, कई

दिशाओं में बंट गए हैं। कुछ तो रेलवे स्टेशन की ओर बढ़कर उत्पात मचा रहे हैं, कुछ सड़कों के बिजली के खंभों, टेलीग्राम और टेली-फोन के तारों को तोड़ रहे हैं। कुछ जन-समूह पोस्ट-आफिस को घेरे हुए हैं, कुछ पुलिस-स्टेशनों की ओर बढ़े जा रहे हैं......अभया अब स्वयं समझ नहीं पाती कि वह क्या देख रही है और जो-कुछ वह देख रही है, वह वास्तव है या केवल स्वप्नमात्र ! आखिर उसे वह क्या समझे ? जब कि अपनी आँखों पर ही विश्वास नहीं हो रहा ? वह और वहाँ ठहर कर देखने के लिए पड़ी नहीं रह सकती, उतर पड़ती है, मृणाल जाने कब उतर कर वहाँ से नीचे आचुकी है। अभया वहाँ से उतर कर सीधे आदित्य के कमरे में दाखिल होती है, पर वह वहाँ न तो आदित्य को ही पाती है और न मृणाल को ही; फिर वे दोनो कहाँ हैं ? बाहर तो नहीं निकल गए ? ओह, कितना बुरा होगा ? आदित्य अभी-अभी तो बिछावन से उठ बैठे हैं ? तो क्या वह सचमुच बाहर चले गए ?

अभया ने बड़ी कठिनाई से दिन काटा, रात काटी, सवेरा हुआ, उसे आशा हुई कि अब तो वे दोनों आ पहुँचेंगे; पर उन दोनों का कहीं पता नहीं। वह कहाँ जाय, क्या करे ! फिर भी वह दूसरे दिन अपने को रोक न सकी, बाहर निकली, सड़क पर आई और वहाँ से स्टेशन की ओर चल पड़ी; पर स्टेशन तक पहुँच न सकी—उसने पाया कि स्टेशन-रोड का पुल बुरी तरह तोड़ डाला गया है, दूसरी ओर से कुछ लोग इक्के-दुक्के आ रहे हैं, सवारी तो बिलकुल दीख नहीं पड़ती, दूकानें बंद हैं, कोर्ट के आफिसों में ताले पड़े हुए हैं, कागजों का अंबार लगा है, जो बुरी तरह जल रहा है ! जो नगर नयन-मनोहर था, आज वह शंकर की श्मशान भूमि बन रहा है ! यह संक्षुब्ध

आत्माओं का कितना विकट अट्टहास है ! अभया आगे न बढ़ सकी, तभी वह आदित्य-निवास की ओर लौट पड़ी ? मगर, भगवान शंकर को धन्यवाद, अभया के घर पहुँचते ही मृणाल स्वयं हँसती हुई आकर बोल उठती है—कहाँ से आरहीं अभया बहन ? क्या तांडव नृत्य देखने गई थीं !

—तांडव नृत्य !—अभया भवों पर बल डाल कर गंभीर वाणी में बोल उठती है—खूब खुल कर देखो तांडव नृत्य, कौन रोकता है तुम्हें और दिखाओ अपने पति देवता को.........

तभी दूसरी ओर से पति देवता स्वयं वहाँ आकर हँसते हुए कहता है—यह रुद्र का तांडव नृत्य ही तो है अभया देवी ! क्या बताऊँ, जबसे बाहर निकला, एक क्षण के लिए मुझे चैन न मिला। लोगों को समझाता फिरा, ऊँचे मंच पर खड़े हो-होकर कितने भाषण दिए, कितना कहा-सुना, पर कुछ असर न हुआ। नक्कारखाने में भला तूती की आवाज सुनी जाती है ! रात-दिन एक कर दिया, मगर जो होना था, होकर ही रहा, जाने और क्या होने वाला है, कुछ पता नहीं चलता ! और कब तक ऐसा चलता रहेगा—यह भी नहीं कहा जा सकता ! ओह,वह दृश्य—वह दृश्य, क्या बताऊँ, अभया देवी, कितना भयंकर है ! कितना प्रलयंकर है !!

—हाँ,—प्रलयंकर तो तो है, आदित्य बाबू—अभया उदास होकर बोल उठी—अब मैं जा कैसे सकूंगी ! मेरा जाना ही अच्छा था।

—आप के जाने की तो मुझे चिंता नहीं !—आदित्य बोल उठे—मगर डाक्टर चाचा और बाबूजी के लिए अवश्य मुझे चिंता है। वे तो शायद रास्ते में ही रोक लिए गए हों ! तार के कनेक्शन भी तो नहीं रहे ! फिर मालूम ही किया जाय तो कैसे ? यह आग तो

सिर्फ यहीं नहीं भड़की है, यह तो सर्व व्यापी है ! भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक। ऐसा विद्रोह और इतने अल्प क्षण में होकर रहेगा—इसे कौन जानता था ?

और यह विद्रोह एक सप्ताह तक प्रचंड और साधारण वेग में, रुक कर-थम कर, फिर थम कर-रुक कर चलता रहा। लगा जैसे चारो ओर से स्वतंत्रता की एक हल्की सी लहर दौड़ पड़ी है ! सड़कों पर आजादी के गीत गाए जा रहे हैं, पार्कों में जो जहीं बैठे या घूम रहे हैं, सभी की आकृतियों पर एक उल्लास है, आँखों में स्वप्न की रंगीन तस्वीरें हैं—जाने ये कैसी तस्वीरें !

इसके बाद--हाँ, इस के बाद वे दिन आते हैं जिनकी याद खून से लिखे इतिहास के पन्ने देते रहेंगे ! वह पकड़-धकड़, वह मार-पीट, वह गोली, वह शूटिंग, वह फाइरिंग !!! मगर जनता की ओर से नहीं— उसकी ओर से जिसे शासन का अधिकार है, वह नादिरशाही, वह नौकरशाही जिसके सामने मनुष्य एक शिकार-मात्र है, उसकी इज्जत, उसकी अस्मत सिर्फ पुस्तकों के पृष्ठों पर लिखी रह गई है……खुल कर गोली काँड चल रहे हैं, कौन बचेगा—कौन रहेगा—यह वह स्वयं नहीं जानती। औरतें अपनी अस्मत लिए पनाह खोजती-फिरती हैं, बूढ़े और मरणोन्मुख रोगी अपनी बिछावन पर मृत्यु की घड़ियाँ गिन रहे हैं, खोज-खोज कर जवान पकड़े जा रहे हैं। उन पर मार पड़ती है, वे घुटनों के बल दौड़ाए जाते हैं, उनके सामने उनकी पत्नियों, बहनों पर अत्याचार किए जाते हैं, यह सब खुले आम हो रहा है। घर-घर तलाशियाँ ली जा रही हैं, उनकी घरेलू चीजें लूटी जाती हैं, संदूकें और बक्सें तोड़-तोड़ कर जेवर और रुपयों से जेबें भरी जा रही हैं। खास कर खादी-धारियों को बड़े सशंक दृष्टि से

देखा जा रहा है, उनकी खिल्लियाँ उड़ाई जा रही हैं, उनके हाथों में हथकड़ियाँ और पैरों में बेड़ियाँ डाल कर वे लारियों में भर कर जेल पहुँचाए जाते हैं! जिनपर जरा भी संदेह हुआ, वे छूट न पाए! वहाँ कौन तटस्थ है और कौन कसूरवार—इसे देखने-सुनने वाला है कौन ?

और एक दिन खूब तड़के-तड़के एस० पी० कुछ मिटिलरी जत्थे के साथ आदित्य के घर पर आ लगा है और दरवान से कह रहा है—कहो, साहब आया है, वह बाबू से मिलना चाहता है।

दरवान भीतर जाता है और वह आदित्य से सब समाचार कह सुनाता है। आदित्य क्षण भर रुका रहता है, फिर बाहर की ओर चल पड़ता है, मृणाल रोकना चाहती है, पर वह रुकता नहीं, हँस कर कहता है—यह तो मैं जानता ही था मृणाल! संभव है, तुम भी कहीं गिरफ्तार कर लिए जाओ! यदि ऐसा हुआ तो कोई बात नहीं, अगर कहीं तुम बच रहीं तो देखना—तुम अपने रास्ते पर अडिग रहना, कहीं यह आग बुझने न पाए! हमलोग फिर कभी मिल लेंगे।

मृणाल कुछ क्षण के लिए किंकर्त्तव्य-विमूढ़ होकर रह जाती है। आदित्य आगे बढ़ जाता है। वह दालान में प्रसन्न होकर आ पहुँचता है, तभी एस० पी० सूखी हँसी हँस कर बोल उठता है—आइए मिस्टर आदित्य, माफ कीजिएगा, मुझे दुख है कि आज आप को गिरफ्तार करने आया हूँ!

—दुख!—आदित्य मुस्कराते हुए बोल उठता है—इसमें दुख की क्या बात, यह तो आपका कर्त्तव्य ही ठहरा!

—क्या मिसेज आदित्य को बुलाने का कष्ट नहीं कर सकते?—एस० पी० ने अपने गंभीर स्वर में कहा।

—क्यों, उनके नाम से भी वारंट है ?

—हाँ !—कहते हुए एस० पी० ने दोनों वारंट अपनी जेव से निकाल कर उसके सामने टेविल पर रख दिए।

आदित्य ने उन्हें उठाकर देखा, फिर हँसते हुए बोला—तो अच्छी बात है, बुलाए देता हूँ !

आदित्य बोल कर उठ पड़ा और उठते हुए बोल उठा—क्या चाय मंगवाऊँ ?

—नहीं; धन्यवाद !—अपने रिष्टवाच की ओर दृष्टि डालते हुए एस० पी० बोल उठा—ज्यादा वक्त हो चुका है, चलिए, फिर कभी पी लेंगे !

आदित्य भीतर गया, मृणाल बगल में आकर स्वयं खड़ी-खड़ी सब कुछ सुन रही थी, वह उससे वहीं मिला और मिलते ही कहा—मृणाल, देखती क्या हो ? हम दोनों-के-दोनों गिरफ्तार हैं।

—सो तो सुना, पर इसके लिए आप इतने चिंतित क्यों दीख रहे हैं ?—मृणाल बोल उठी—जैसा हमलोग सोच रहे थे, आखिर वही तो होने जा रहा है, कुछ नई बात नहीं; फिर विलंब क्यों ? चलिए, कुछ आवश्यक कपड़े और कुछ चीजें तो रख ही लिए जायँ !

फिर दोनों अपने कमरे में आए, और जितनी जल्दी बन सका, कुछ चीजें अपने-अपने सूटकेशों में सहेज कर दोनों तैयार हुए। अभया वहीं खड़ी-खड़ी देख रही थी, उसे लग रहा था कि जैसे कोई तीर्थयात्री अपनी यात्रा के लिए प्रस्तुत हो रहे हों। अभया उन्हें विदा करने के लिए पहले से तैयार पड़ी थी। उसने मृणाल के सिर पर सिंदूर लगाया और आदित्य के ललाट पर चंदन की टीका की, फिर एक-एक हार दोनों को पहनाया, उस समय

मृणाल सचमुच उच्छ्वसित हो उठी, पर अभया ने उसकी पीठ थप-थपाते हुए कहा—यह क्या मृणाल ?

—मुझे अपने लिए कोई दुख नहीं, अभया बहन, तुम्हें अकेली छोड़े जा रही हूं……मृणाल के स्वर में कंपन था !

—अब और ज्यादा रुकना ठीक न होगा, मृणाल—आदित्य बोल उठा—अभया बहन, आप जब तक यहाँ रहना चाहें, रहेंगी; किसी तरह का कष्ट न होने पावे, घर आपका है, सम्पत्ति आपकी हैं जब आप जाने लगेंगी—दीवानजी को मेरी ओर से कह दीजिएगा, वे सभी बातों की देखभाल रखेंगे। उनसे मेरी भेंट न हो सकी—इस बात का मुझे खेद है।

और इस तरह दोनों अभया के साथ-साथ बाहर आए। अभया ने दोनो को अपने कार पर बिठाया, एस० पी० ने अपनी कार ले लेने की इजाजत दे रखी थी, एस० पी० भी इसी कार पर आ बैठे, सोफर की सीट पर एक मिलिटरी मैन को बैठा दिया, कार का सोफर बगल की सीट पर बैठा, कार आगे-आगे चल पड़ी और इसके पीछे-पीछे मिलिटरी से लदी लारी भी।

अभया खड़ी-खड़ी देखती रही, जाने कब तक देखती रही, पर उनकी आकृति पर विषाद की रेखा न थी। वह जानती है—देश भक्ति का यही सबसे बड़ा पुरस्कार है। अपनी मातृभूमि का उद्धार इन्हीं जैसे पुरुष-सिंहों से हो सकता है, जो अपने जीवन के सारे अर-मान—सारी अकाँक्षाएँ मातृ-चरणों पर न्यौछावर करने में सतत तत्पर रहते आए हैं। आज अवश्य वे लांछित-अपमानित और त्याज्य समझे जाएँ, पर भविष्य उनके चरणों पर अपना मस्तक झुकाएगा ही, भविष्य का इतिहास अपने पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों से उनकी यशःकृति

को अंकित करेगा ही। उसे लगा कि क्यों न वह स्वयं इस कार्य के योग्य समझी गई ? क्यों न उसके नाम वारंट निकाला गया ? क्यों न वह स्वयं अपने आप को पकड़वाने के लिए एस० पी० से कुछ कह सकी ? उसे अपने आप पर ही वितृष्णा हो आई, पर अब क्या होता है ? अब तो मृणाल और आदित्य उनकी दृष्टि से ओझल हो चुके हैं; किन्तु उनका भव्य भवन आज उनके अभाव में उदास जड़-सा खड़ा अपनी असमर्थताओं पर पश्चाताप की अग्नि में स्वयं तप रहा है। कैसी बेबशी है, कितनी बेबशी !

अभया खड़ी-खड़ी और अधिक न सोच सकी, वह चुपचाप भीतर आई, पर भीतर आकर स्थिर न रह सकी, वह सीढ़ियों की राह ऊपर गई, खुले छत पर पहुँच कर उसने एक बार चारोंओर अपनी दृष्टि डाली, उसने पाया कि लोगों का आना-जाना बिलकुल बंद है। राज-पथ योंही जन-शून्य पड़ा उदास-खिन्न होकर जैसे बता रहा है कि वह कितना निस्संग है, कितना असमर्थ, कितना असहाय······

विंश परिच्छेद

अभया के ये दिन कैसे कटे—इसे बताना सहज नहीं है। दीवानजी आते हैं, अभया उससे आ मिलती है; उनसे बहुत तरह की बातें होती हैं, बहुत तरह के विचार उठते हैं, पर वे किसी काम के नहीं होते, उनसे न तो उसके हृदय की परितृप्ति मिलती है, न आश्वासन मिलता है। दीवानजी वयो वृद्ध व्यक्ति हैं, सज्जन हैं, सहृदय हैं, दयालु हैं, वे अभया को वात्सल्य पूर्ण दृष्टि से देखते हैं, उस दृष्टि को पाकर अभया के हृदय में उनके प्रति भक्ति-भाव की सरिता फूट निकलती है, तभी वह कह उठती है—आप तो हैं ही दीवानजी, मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं घर जा सकूँ। पिता जी की क्या अवस्था होगी, चाचाजी किस तरह उद्विग्न हो रहे होंगे !!—नहीं, मुझे जाना ही चाहिए—अब तो मुझे जाना ही चााहिए, दीवान जी !

और तभी दीवानजी हँसकर कहते हैं—जाना तो है ही बेटी, मगर जा कैसे सकोगी; अभी तो ट्रेन चलती भी नहीं है, सुना है, अब रास्ते ठीक हो रहे हैं, दो-चार दिन और ठहर जाओ, इसके सिवा दूसरा चारा ही क्या है ?

अभया निरुत्तर हो रहती है। वह स्वयं जानती है कि ट्रेन चलने में अभी कुछ विलंब है। उसके हृदय में उपद्रवियों के प्रति विक्षोभ हो उठता है, वह घृणा से मन-ही-मन बोल उठती है—क्षणिक

आवेश में कुछ-का-कुछ कर बैठना क्या यही देश-सेवा है ? इससे हम क्या स्वाधीनता अर्जन कर सकते हैं ? इसीके द्वारा हम अपनी मातृ-भूमि का त्राण कर सकेंगे ? नहीं, यह गलत तरीका है, बिलकुल गलत······· फिर अभया द्वंद्वात्मक स्थिति में आ जाती है, वह मन-ही-मन अपनी बातों का आप खंडन करने लगती है। उसके सामने एक प्रश्न उठ खड़ा होता है—आखिर इन उत्पातों के मूल में कौन-सा विचार काम कर रहा है ? क्या वह विचार उपेक्षणीय है ? क्या उसका उद्गम शोषित-शासित, अपमानित और पदस्थ अंतरात्मा से नहीं है ? वह अंतरात्मा जो पराधीनता के पाश में आवद्ध होकर कराह रही है, जिसकी कराह शासकों की दृष्टि में एक व्यंग मात्र है ? क्या यह व्यंग जले पर नमक छिड़कना नहीं कहा जायगा ? क्या यह मानवता का अपमान नहीं है ? अपमान ?—अभया इसके बाद और अधिक नहीं सोच सकती। सचमुच अपमान शब्दमात्र के स्मरण से उसके कान की जड़ें गर्म हो उठती हैं, भवोंपर बल पड़ जाते हैं, उसकी मुट्ठियाँ आप-से-आप बंध जाती हैं, उसके नथुने फूलने लगते हैं और अपने ओठों को दाँतों से कुचलते हुए वह भीतर-ही-भीतर बोल उठती है—तेरा सर्वनाश हो !······ इसबार उसकी आँखें चमक उठीं, दर्प से उसकी आकृति खिल उठी, उसके दृष्टि-पथ पर उसदिन के दृश्य प्रत्यक्ष हो उठे, जब क्षुब्ध मानव का अपार स्रोत जाने कहाँ से फूट कर वह निकला था, वह क्षुब्ध मानव जो अभिशप्त जीवन से ऊब चुका है, जो अपमान से स्वयं जर्जर है······अभया और कुछ सोच न सकी, वह पलंग पर आकर लेट रही······ओह, ये दिन उसके कितनी बुरी तरह कटे !

अब ट्रेन चलने लगी है, उसमें जन-साधारण की संख्या नगण्य है। सच तो यह कि वह केवल मिलिटरी फोर्स के आवागमन के लिए चलाई जा रही है। अभया आज अपने घर के लिए प्रस्थित हो सकी है, दीवान जी स्वयं उसे पहुँचाने के लिए स्टेशन आए हैं! टिकट कटा ली गई है, अभया प्लेटफार्म पर आकर ट्रेन की प्रतीक्षा कर रही है। प्लेटफार्म पर यात्रियों की संख्या कम है, अधिकांश पुलिस और मिलिटरी फोर्स बंदूकों और बोगचों से लैश इधर-उधर दौड़-धूप लगा रहे हैं, फोर्सों में टामियों और बलूचियों भी संख्या ही अधिक है, जिनकी भाषाएँ अभया समझ नहीं पाती। वे अभया की ओर घूरते हैं, कोई सिसकारियाँ भरता है, कोई सीटी बजाता है और कोई अश्लिल गजलें गाता है'''अभया की भवें वक्र होकर रह जाती हैं, तभी ट्रेन आ पहुँचती है, अभया सतर्कता से फर्स्टक्लास के डिब्बे को खोल कर एक बर्थपर जा बैठती है, उसकी दृष्टि बगल के बर्थ पर जाती है, जिस पर कोट-पैंटधारी एक सज्जन बैठे दीख पड़ते हैं, उनकी वेश-भूषाओं से मालूम पड़ता है कि वह कोई ऊँचे दर्जे के आफिसर हों! अभया निश्चिंतता की साँस लेकर खिड़की से मुँह बाहर किए बोल उठती है—मैं आपको पाकर बड़ी ही गौरवान्वित और प्रसन्न हूँ दीवान जी! आज़ मैं निश्चिंत होकर ही जा रही हूं। उम्मीद है, आप की उपस्थिति में आदित्य बाबू के काम-काज........

—काम-काज!—दीवान जी गंभीर होकर बोल उठते हैं—कामकाज चलाने लायक क्या यह शरीर रह गया है, बेटी? आदित्य को बचपन से पाल-पोस कर बड़ा किया है, अभी तो यह लड़का ही है. लड़कपन तो होना ही चाहिए; मगर देखो तो भला, वह

अपने मनकी ही सदा से करता आया और आज पींजड़े में वंद है ! वहूजी आईं, उम्मीद थी, आदित्य अव काम पर लगेगा; मगर वह भी उसी रंग में रंग गईं !······खैर, चिंता की कोई वात नहीं, जव तक मैं उसकी थाती फिर से उसे थमा नहीं देता, तव तक तो·········

इसी समय गाड़ी ने सिटी दी। इंजिन भीम गर्जन कर उठी। दीवानजी की आँखें छलछला आईं और तभी वे वोल उठे—घर जाकर समाचार लिखना वेटी, तुम्हारी याद·······

गाड़ी चल पड़ी, अभया ने एकवार पुनः दीवानजी के प्रति अपना नमस्कार ज्ञापन किया। गाड़ी चल रही है, अभया खिड़की की राह वाहर के दृश्य देखती जा रही है ! लाइन के किनारे टेलिग्राम और टेलिफोन के खंभे भागते-जैसे दीख रहे हैं, अभया उन्हें गिनती जाती है; पर गिन नहीं सकती, वह उलझ पड़ती है। उसके मस्तिष्क में वहुत तरह की वातें इकट्ठी हो उठती हैं, वह किसे संभाले, किसे रखे, किसे भुलावे वह—समझ नहीं पाती। फिर भी उसकी मजे में राह कटती जा रही है, वक्त कटता जा रहा है। ट्रेन आकर स्टेशन पर रुकती है, वहुत चढ़ते हैं, वहुत उतरते हैं, अभया का मन वहल जाता है; वह खुली आँखों स्टेशनों की दुर्दशा देखती है, देखती है कि किसी की दीवारें ढाह दी गई हैं, किसी के खपड़े उधेड़ दिए गए हैं, किसी की कीवाड़ें और खिड़कियाँ ही गायव हैं ! कहीं स्टेशन के मकान जला दिए गए हैं, कहीं माल-गाड़ी के डिब्वे उलटा दिए गए हैं और कहीं पैसेंजर गाड़ी के डिब्वे अधजले कंकाल की याद दिला देते हैं। अभया इन सव की ओर जव-जव देखती है तव-तव वह अनायास हँस पड़ती है, जाने

वह हँसी कैसी है ? जाने उस हँसी में समवेदना है या परिहास !

और इस तरह हँसती-देखती और देखती-हँसती हुई जब वह अपने स्टेशन पर गाड़ी से उतर पड़ती है, तब वह पाती है कि वहाँ का स्टेशन तो मानो श्मशान-जैसा भयावह हो उठा है, आग की लपटों से मकान की दीवारें चिटख उठी हैं, लगता है जैसे वे गलित कुष्ठ हों। ऊपर की छावनी जल चुकी है, और सभी दीवारें धुएँ से काली हो उठी हैं ! आफिस का काम अभी अलग टेंट खड़ा करवा कर किया जा रहा है। मिलटरी फोर्स का संगीन पहरा है······उतरने वाले पर कड़ी निगाह रखी जाती है, कौन है, क्या नाम है, कहाँ से आया है, कहाँ जायगा—उनसे पूछे जा रहे हैं। स्टेशन पर अनेक वेश में, अनेक रूप में सी-आई-डी के व्यक्ति इधर-उधर डोल रहे हैं। अभया उतर कर क्षणभर चारों ओर देखती है, उसी समय एक कुली सामने आता है, अभया अपने सामान की ओर उसे इशारा करती है, कुली सामान अपने सिर पर उठाकर गेट की ओर चल देता है, अभया भी चल देती है। गेट पर टिकट देने के समय एक आदमी उसके सामने आकर पूछता है—आप कहाँ जायँगी ?

—मैं ?—अभया भवों पर बल डाल कर बोल उठती है—आइए न मेरे साथ, देखिए कि मैं कहाँ जा रही हूँ।

अभया बिना उसकी ओर देखे, तमक कर, जरा तन कर बाहर निकल पड़ती है, पूछनेवाले को फिर हिम्मत नहीं होती कि उसे फिर वह छेड़े ! अभया किराए की गाड़ी पर बैठ जाती है, कुली सामान रखकर अपनी मजूरी लेकर चल देता है, इधर गाड़ी गंतव्य पथपर चल पड़ती है।

अभया के मन की बड़ी विचित्र दशा है। वह रास्ते में कहीं रुकती नहीं, वह गाड़ीवान से कहती है, इनाम का प्रलोभन देती है, वह उसे जल्द पहुँचाए अपने घर पर, वह बड़ी व्यग्र है, उत्कंठित है घर पहुँचने के लिए। इतनी उत्कंठित वह क्यों है, वह स्वयं नहीं समझती, फिर भी चाहती है कि वह किस तरह जितनी जल्द हो सके—घर पहुँचे। और इस तरह जब अभया अपने दरवाजे पर गाड़ी से उतर पड़ती है, तब किसुन उसके पास पहुँच कर कह उठता है—आगईं रानी बेटी—आ गईं।

अभया हँस कर कहती है—हाँ, आ गई किसुन ! कहो अच्छे हो न !

—हाँ सभी अच्छे हैं !—गाड़ी पर से सामान उतारते हुए किसुन बोल उठता है।

—बाबूजी कहाँ हैं ?—अभया गाड़ीवान को किराया और इनाम के रुपए थमाती हुई पूछती है—अच्छे हैं तो वे ?

—अच्छे ही तो हैं, अभी-अभी तो राजा बाबू के साथ शायद उनके घर पर गए हैं।

अभया प्रसन्न बदन दालान होकर अपने कमरे में आती है। रास्ते की लंबी यात्रा की थकावट से वह शिथिल होकर सोफे पर लुढक पड़ती है। किसुन सामान रख जाता है, अभया उसे फिर से बुलाकर पूछती है—अपने गाँव में आन्दोलन कैसा रहा किसुन ?

—आंदोलन !—किसुन चकित-विस्मित होकर बोल उठता है—क्या पूछती हो अभया बेटी, जो कभी नहीं देखा, जो कभी नहीं सुना, वैसा देखना पड़ा, वैसा सुनना पड़ा। और आए दिन क्या-क्या न देखना पड़े ! क्या कहूं और कैसे कहूं ?—कह कर किसुन

चुप हो रहता है, अभया उसकी ओर अपनी उत्सुक दृष्टि डालती है। उसे लगता है कि वह किसुन कहने के लिए जैसे अपने में बल का संग्रह कर रहा है और सचमुच किसुन अपने में बल संग्रह करके ही बोल उठता है—उस दिन जवानों की बात तो अलग रही, हम बूढ़ों की नशों में गर्मी आ गई थी, जाने कैसी गर्मी! आंदोलन के बहुत पहले फारम में जलसा हुआ था, साहब-सूबे आए थे; हाकिम-हुक्काम सब आए थे। देखने लायक जलसा था; मगर गाँव वाले देखने से रोक दिए गए थे। रास्ते पर पुलिस और चौकीदारों के पहरे बैठाए गए थे! क्या मजाल कि उस होकर कोई निकल जाय! यह तो इंतजाम था इंजिनियर साहब का! पूरे साहबी ठाट! गाँव में जलसा हो, मगर गाँव वाले देखने को तरसा करे! यह दुख तो था ही, उसके बाद आया आंदोलन—और ऐसा कि समझ में न आया कि क्या होने वाला है। कौन अगुआ था, नहीं कहा जा सकता। बूढ़े-बच्चे-जवान जो जहाँ थे, सभी घर से निकल पड़े! न आगे देखा, न पीछे—सभी ने बम बोल दिया। जय माँ काली, जय माँ दुर्गा कह कर सभी दौड़ पड़े! कितना बड़ा मजमा था वह, रानी बेटी, कैसे बताऊँ कि वह कितना बड़ा मजमा था!

किसुन बोलते-बोलते आप-ही-आप रुक गया। अभया सुनने को अतीव उत्कंठित हो पड़ी। वह बोल उठी—फिर क्या हुआ किसुन?

—ओह, क्या हुआ, सो क्या बतलाऊँ रानी बेटी?—किसुन ने एक गहरी आह भरी, फिर बोल उठा—यह मत पूछो कि क्या हुआ? यही पूछो कि क्या नहीं हुआ! सारी भीड़ टूट पड़ी।

पहला जोश फारम पर ही पड़ा, उसके मकान जलाए गए, मशीनें बर्बाद की गईं, बिजली के तार टूक-टूक किए गए, गल्लों को तहस-नहस किया गया, कुछ बखारियों में आग फेंक दी गई। उसके बाद थाने की ओर भीड़ चल पड़ी। दारोगा ने आव देखा न ताव, भीड़ पर गोली दागना शुरू किया! नतीजा यह हुआ कि कई आदमी खेत रहे, कुछ घायल हुए, उन मुर्दों और घायलों को देख कर भीड़ तैश में आ गई, तभी थाने पर छापा मारा, बंदूकों की कोई परवा न की, मकानों में आग फूँकी, तभी एक ओर से दौड़े हुए बिरजू बाबू आ पहुँचे। उन्होंने लाख कोशिशें कीं, लाख समझाया, लाख मनाया; मगर वहाँ कौन सुनता है? दारोगा को लोगों ने पकड़ लिया, बंदूक छिनकर आग में फेंक दी गई, वह धधकती हुई आग में उसे निकालने को आग की ओर बढ़ा, मगर उधर से वह लौट नहीं सका। उसमें जो गिरा तो सँभल न सका। वह वहीं लटपटा कर ढेर हो गया! किसी ने उसके लिए आह तक न भरी! अपनी करनी का फल उसे हाथो-हाथ मिल गया। कुछ कांस्टेबल उसी समय दूसरे कमरे से भागे जा रहे थे, उन्हें भीड़ ने घेर लिया, ये वेही थे जो कुछ देर पहले भीड़ पर गालियों की वर्षा कर चुके थे, अब उन्हीं पर लात-जूते पड़ने लगे। मगर उसी समय किसी ने उन्हें बचा लिया। उसके बाद उन्हें शपथ खिलाई गई, उन्हें चीटें पहना कर अपने दल में लेकर भीड़ चलती बनी……

किसुन इस बार फिर चुप हो रहा। अभया चकित हो, साँस रोके उसकी सारी बातें सुनती रही, उसके बाद वह बोल उठी—जानते हो, स्टेशन किसने जलाया किसुन?

—किसने जलाया, मुझे नहीं मालूम !—किसुन बोल उठा—सुना—उस ओर परले सिरे के गाँव वालों ने उसे जलाया, उन-लोगों ने ही रेलकी पटरियाँ उखाड़ फेंकीं, तार तोड़े, खंभे खोद-खोद कर उखाड़ डाले, मालगाड़ियों को लूटा......

अभया उसकी सारी बातें कान खोल कर सुनती रही, उसके बाद उसकी ओर देखते हुए बोल उठी—बिरजू बाबू कहाँ हैं, किसुन? आश्रम का क्या हाल है?

—आश्रम !—किसुन बोल उठा—आसरम में तो मिलटरी रहती है अब, और बिरजू बाबू तो उसी दिन से फरार हैं !

—फरार !

—हाँ, फरार है ! पुलिस गाँवों में छापा मारती फिरती है। घुड़सवार चारो तरफ दौड़ लगाते हैं, मिलटरी दिन-दहाड़े गाँवों पर छापा मारती है, तलाशी लेती फिरती है। चर्खे और करघे निकाल-निकाल कर तोड़-फोड़ डालती है, घर वालों पर बेंत पड़ती है, बंदूकों के कुंदे से मार पड़ती है, घोड़ों के टापों से वे रौंदे जाते हैं। जवान औरतें सरे आम बेइज्जत की जाती हैं......क्या पूछती हो अभया बेटी, इन दिनों बुरा हाल है गावों का ! सुना है, सारा कसूर बिरजू बाबू पर थोपा जाता है, उनको पकड़ने के लिए पुलिस रात को किसी भी घर पर छापा मार सकती है, कोई भी गाँव घेरा जा सकता है, पाँच हजार का इनाम सरकार ने सुना रखा है बिरजू बाबू पर ! मगर वह बेचारा तो बेगुनाह है, गुनाह कौन करे और फल कोई भुगते—यह तो अंधेर है—अंधेर...... मगर रानी बेटी, सुनने-सुनाने को तो बहुत-कुछ है, मैं जानता ही कितना हूँ ! मैं बंगले छोड़ कर कहीं जाता भी तो नहीं, फिर सुनी-

सुनाई बातों पर इतबार ही क्या ? उठो; रानी बेटी, थकी-मांदी आई हो, नहा-धोलो, महाराज भी चौके में होगा—उसे चल कर कह तो दूँ कि तुम्हारे लिए वह थोड़ा जलपान तो बनाकर दे... किसुन कह कर वहाँ से चौके की ओर चल पड़ा।

अभया कुछ क्षण तक उसी तरह पड़ी रहीं; पर पड़ी न रहसकी, वह उठी और बाथ-रूम की ओर चल पड़ी।

डा० स्वरूप बड़ी रात को घूमते-घामते अपने घर पहुँचे, पहुँचते ही किसुन ने अभया के आने की बात उनसे कह सुनाई, डा० स्वरूप बड़े प्रसन्न होकर अभया के कमरे में आए और आकर देखा कि वह तो बेखबर सोई पड़ी है। उन्होंने उसे उठाया नहीं; वे अपने कमरे में आकर लेट रहे। उसी समय महाराज ने कहा—बाबूजी, आप तो भोजन कर लें।

—क्या अभय ने भोजन कर लिया है?—डा० स्वरूप ने पूछा।

—नहीं, वह तो जलपान करके ही शाम को सो गई हैं, क्या उन्हें उठा दूं?

—नहीं, नहीं, उसे सो लेने दो, रास्ते की थकी है, थोड़ा रुक जाओ, मैं भी उसके साथ ही खाऊँगा।

महाराज बाहर निकल आया। डा० स्वरूप पास के रखे मासिक पत्र को उठा कर पढ़ने लगे।

अभया नींद में ही चौंक उठी, लगा जैसे स्वप्न देख कर वह भयभीत हो उठी हो, वह वास्तव में इतनी भयभीत थी कि सजग होकर भी वह जान न सकी कि वह उसका स्वप्न था; पर जब कुछ क्षणों के बाद वह आश्वस्त हुई, तब उसने आँखें मींजीं, वह

सजग होकर उठ पड़ी और बाहर आई। उसने पाया कि उसके पिता के कमरे में लैंप बहुत तेज रोशनी दे रही है, उसे लगा कि बाबू जी आगए हैं और यह विचार उठते ही वह उस कमरे की ओर चल पड़ी—उसने आकर देखा कि वे तो निश्चिंत होकर एक मासिक पत्र पढ़ रहे है। ठीक उसी समय उनका ध्यान भी इस ओर खिंचा और दरवाजे की ओर देखते ही जरा उठंग कर बैठते हुए बोल उठे—आगई अभय ? कुशल तो है ? क्यों, आदित्य नहीं आए ?

—आदित्य आते कैसे ?—अभया सरल गति में बोल उठी—वे तो इनटर्न कर लिए गए हैं, मृणाल भी इनटर्न हैं—दोनों की गिरफ्तारी साथ-साथ हुई है……

—तो क्या वे दोनों उपद्रवियों में सामिल थे ?

—सामिल ?—अभया ने स्पष्ट रूप में कहा—वे दोनों तो समझाते फिरते थे; मगर वहाँ, मानता ही कौन ?

—यही तो मेरा भी खयाल था।

—मगर उस दिन क्या तुम लोग ठीक से पहुँच गए थे बाबूजी ?

—पहुँचना क्या इतना आसान था ?—डा० स्वरूप निश्चिंतता की साँस लेकर बोल उठे—उस दिन दुर्भाग्य तो देखो अभय, इंजिन अपने आप रास्ते में बिगड़ गई, उसे ठीक करने में गाड़ी सात घंटे डीटेन हो गई, उसके बाद चालू हुई, समझा, क्या हुआ, देर से ही पहुँचेंगे; मगर इंजिन फिर से बिगड़ गई, फिर उसे चालू करने में चार घंटे लगे। जी भिन्ना उठा, मगर दूसरा चारा क्या था ! फिर-गाड़ी चल पड़ी, और इस बार चार-पाँच स्टेशन तो मजे में हमलोग आ ही पाए थे कि एक स्टेशन पर

गाड़ी आकर रुकी और रुकी ही रह गई। तभी मालूम हुआ कि आगे के स्टेशन से लाइन क्लिअर नहीं आ रही है, लगा जैसे फोन के तार ही काट डाले गए हैं। स्टेशन मास्टर से खुद मैंने पूछा, उत्तर में उनने कहा कि मालूम नहीं, बात क्या है, कोई जवाब ही नहीं आ रहा है······हमलोग बड़ी चिंता पड़े, स्टेशन बहुत मामूली था, पर संयोग से हम लोगों के पास खाने के लिए पकवान और फल थे। राजा भाई ने कहा—देखते क्या हो, मृणाल ने जो चीजें छिपाकर रख छोड़ी हैं, उनका उपयोग तो अब करना ही पड़ेगा। खैर, खाने-पीने की दिक्कत तो न रही। उम्मीद थी—तार ठीक हो जाने पर लाइन क्लियर आयगी और ट्रेन चल पड़ेगी, मगर तभी पिछले स्टेशन से तार मिला कि क्रांतिकारी रेल की पटरियों को उखाड़ रहे हैं, तार काटे जा रहे हैं, सावधानी से काम चलाइए······और सचमुच हमलोगों ने अपनी आँखों देखा—किस तरह हजारों की संख्या में गाँव वाले इकट्ठे होकर उपद्रव करने को टूट पड़े हैं। हमलोग ट्रेन से उतार दिए गए। उसके बाद का समाचार बड़ा ही दुखद है! बड़ी मुश्किल से सात मील पैदल रास्ता तय कर गंगा के किनारे पहुँचे, बहुत ज्यादा दाम लगा कर एक नौका ठीक की और उसी पर चढ़कर यहाँ तक आ सके······

इसी समय महाराज ने आकर कहा—रसोई ठंढी हो रही है!

—ओह उठो, अभय—डा० स्वरूप उठते हुए बोल उठे—मैं तुम्हारे लिए ही रुका हुआ था। चलो, भोजन करलें।

दोनों चौके में आकर बैठ गए। भोजन करते हुए अभया ने पूछा—सुना, आनन्द बाबू की बड़ी नुकसानी हुई है।

—नुकसानी तो होनी ही थी, अभय !

—सो क्यों ?—अभया ने अपने पिता की ओर देखते हुए कहा—वह तो कोई सरकारी संस्था है भी नहीं।

—न हो; मगर लोग कैसे समझें ! जब वे लोग समझ बैठे थे कि जहाँ बड़े-बड़े हाकिम-हुक्काम बुलाए जाते हैं, जहाँ जिले के कलक्टर-जज, एस० पी० और डिविजन से कमिश्नर और प्रांत से गवर्नर तक बुलाये जाते हैं और साधारण पब्लिक के देखने पर भी रोक लगाई जाती है, पहरे बैठाए जाते हैं तो वे क्या समझें ? यह जलसा क्या था, जनसाधारण के दिलों पर चोट पहुँचानी थी ! नतीजा साफ था .....और आज सचमुच वह आनन्द आनन्द ही नहीं रह गया ! 'सर' की टाइटिल क्या मिली, उसका सर ही फिर गया ! आदमी इतना बदल जा सकता है, सो उसे ही पाया ! आज तो मिलिटरी का खासा कैंप बन रहा है वह फार्म !

मगर अभया को अपने पिता की ये बातें प्रिय न जँचीं। उसके हृदय में अब भी आनन्द के प्रति आदर है—एक सम्मान है। वह उसके विरुद्ध कुछ भी नहीं सुना चाहती ! इसलिए वह उसका पक्ष समर्थन करते हुए बोल उठी—मिलिटरी से वह अपने जान-माल की रक्षा न करे तो क्या करे, इसमें उनका क्या दोष !

डा० स्वरूप अभया के स्वर और उनकी बातों को समझ गए और समझ कर ही हँसते हुए बोल उठे—जो अपनी रक्षा आप नहीं कर सकता, वह दूसरों के सहारे अपने को कब तक बचा सकता है अभय ? आज उसके पास कमिश्नर आते हैं, कलक्टर आते हैं, एस० पी०, दारोगा, सी० आई० डी० इंस्पेक्टर

सभी आते हैं, फिर भी उसे हिम्मत नहीं होती कि वह खुल कर मैदान में आ खड़ा हो! भय की जिंदगी भी कोई जिंदगी हैं भला! कापुरुष दिन में सौ-सौ बार मरा करते और मर-मर कर जीते हैं अभय,—यह तुम्हें याद रहना चाहिए। आज वह बागी बन बैठा है, वह ब्रजेन्द्र को पकड़वाने की ताक में लगा है, उसपर सरकार की ओर से पाँच हजार का इनाम सुनाया गया है। वह बेचारा निर्दोप, जिसने सिवा समझाने-बुझाने के कुछ किया नहीं, उस पर हमले करवाना, वैर साधना नहीं तो और क्या है? वह इसलिए कि उसने निमंत्रण के उत्तर में स्पष्ट कहा था कि जिस उत्सव में बाहर के बड़े-बड़े अफसर तो बुलाए जा रहे हैं मगर निकट के जन-साधारण को उसे देखने से रोका जाता है, उसमें वह भाग नहीं ले सकता! तुम्हीं बतलाओ, ब्रजेन्द्र का ऐसा लिखना क्या खुला विद्रोह था? आज वह विद्रोही समझा जाता है, वह अपने को छिपाने के लिए दर-दर की ख़ाक छानते फिरता है, खुफिया पुलिस उसका पीछा करती-फिरती है, संदेह में घर वालों पर मार पड़ती है, उनके बहू-बेटियों की इज्जत बर्बाद की जाती……

अभया और अधिक सुन नहीं सकती, वह उठकर मुँह-हाथ धोने लगती है, डा० स्वरूप भी हाथ-मुँह धोकर चल पड़ते हैं! अभया साथ हो लेती है और चलते-चलते ही बोल उठती है—क्या ब्रजेन्द्र से भेंट नहीं हो सकती, बाबूजी?

—हो सकती क्यों नहीं!—डा० स्वरूप अपने कमरे में आकर बिछावन पर लेटते हुए बोल उठते हैं,—मगर बड़ी सावधानी से मिलना चाहिए अभय! तुम पर भी आनन्द का संदेह है, मगर

यही तो खैरियत रही कि तुम बाहर रहीं! अच्छा ही रहा, तुम इस समय व्रजेन्द्र की सहायता पहुँचा सकती हो। वह निर्दोष है, और उसे सहायता की आवश्यकता भी है।

अभया कुछ क्षण पिता के सामने खड़ी रह जाती है, फिर वह अपने कमरे की ओर चल पड़ती है।

दूसरे दिन खूब तड़के जब डा० स्वरूप टहलने को बाहर निकल गए हैं, अभया तैयार होकर फार्म की ओर द्रुत गति से चल पड़ती है। आज का दिन अभया के लिए सब से पहला दिन है जब वह बिना बुलाए हुए फार्म की ओर चल पड़ी है। कुछ ही क्षण के बाद एक मिलिटरी जत्था बंदूक कंधे से लटकाए रात की गस्ती लगा कर बातें करते हुए उसी रास्ते पर आ लगता है, जिस रास्ते से अभया जा रही है, मगर उसका ध्यान उसकी ओर नहीं है, फिर भी उसकी बातों पर अवश्य उसका ध्यान है। वह अपने साथियों के बीच कहता जा रहा है—रात को किस तरह एक आदमी चुपके से बढ़ा जा रहा था और उसे किस तरह हिट किया गया, वह वार मामूली नहीं था, मगर वह कहाँ जा छिपा—इसका पता न लगा। न भी लगे, मगर गोली खा कर कबतक जीता रह सकता है··· बशर्त्ते कि वह फरार साबित हो जाय·········

—फ़रार!—अभया भीतर-ही-भीतर काँप उठी, उसे रह-रह कर याद आता कि फरार तो व्रजेन्द्र भी है, तो क्या वह व्रजेंद्र के प्रति ही कहा जा रहा है? वह सदा से चौकस रहने वाला आदमी इस तरह गोली खा जाय, क्या यह संभव है? अभया अपने आप में इस बात का समाधान न पा सकी, वह जिस तरह बढ़ती जा रही

थी, बढ़ती ही रही······वह जब आनंद-निवास के निकट जा पहुँची, तब उसने दूर से ही देखा कि आनंद फार्स के चौराहे पर कुछ व्यक्तियों के साथ खड़े-खड़े बातें कर रहा है; पर अभया उस ओर न जाकर उसके बंगले की ओर गई। बंगले पर एक पुलिस कांस्टेबल बंदूक लिए फेरी लगा रहा है, उसने अभया को हाते के भीतर घुसते ही उससे पूछा—किन को खोजती हैं आप?

—जिनका यह बंगला है, उनसे एक जरूरी काम है मुझे!—अभया ने सीधे तन कर कहा।

—वह अभी बाहर हैं, भीतर मत आइए।

—सो मैं जानती हूं, वह बाहर चौराहे पर खड़े हैं, उन्हें खबर दो—कह कर अभया द्रुत गति में कमरे के बरामदे पर आकर टहलने लगी।

उसी समय अभया का एक परिचित आदमी बंगले से निकला, उसने डा० अभया को देखा और सलाम करके मुस्कराते हुए पूछा—ओह, आप हैं, क्या साहब को खबर दूँ?

—हाँ खबर दो, कहो—डा० अभया आप से मिलना चाहती हैं?

वह आदमी भीतर से बैठने के लिए एक कुर्सी निकाल लाया और अभया से कहा—आप बैठिए तब तक, मैं जाकर खबर दे आता हूं—कह कर वह आदमी चौराहे की ओर चल पड़ा।

अभया को ज्यादा देर बैठना न पड़ा, आनंद अपने हंटिंग सूट में लैश, छड़ी घुमाते हुए एक ओर से आकर हँसते हुए बोल उठा—ओह, आप अभया देवी! नमस्ते! कब आईं?

—नमस्ते आनंद बाबू!—अभया उठ खड़ी हुई और बोली—

मैं कल पिछली वेर ही आगई थी, मगर मैं इधर न आ सकी।

—मगर अभी कैसे आईं ?

—आती कैसे नहीं—अभया कुछ रुष्ट होकर बोल उठी—क्या मेरा आना गुनाह था ! फिर हँस कर बोली—आज कल आप तो पूरे साहब बन बैठे, मुझे यह मालूम न था, नहीं तो वैसा इंतजाम कर आती !

—क्या करूं, साहब बनना पड़ा है!—आनंद निःसंकोच बोल उठा—इसके वगैर तो काम चल सकता नहीं। जान इतनी सस्ती नहीं, अभया देवी !

—कौन कहता है, इतनी सस्ती नहीं है ?—अभया ने व्यंग से ही कहा—दिन-दहाड़े आदमियों का शिकार किया जाता है, गोली के निशाने बनाए जाते हैं—यह सस्ता सौदा नहीं तो क्याहै !

—क्या आप यही कहने आई हैं ?—आनंद ने अभया की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा।

—नहीं, मैं आपको धन्यवाद देने आई हूँ ! अभया व्यंग के रूप में तन कर बोल उठी।

—धन्यवाद ?

—हां, धन्यवाद ही तो !—अभया उसी तरह फिर बोल उठी—और इसलिए कि आप से जितना बने, आप सरकार की मदद करें ! लोगों के घरों की तलाशी करवाएँ, उन्हें वेंत लगवाएँ, उनकी बहू-बेटियों की इज्जत को खाक में मिलाएँ, भेड़ बकरियों-जैसा उनके साथ सलूक करें। आज आप 'सर' हैं, कल आप और कुछ बनेंगे ! जो-कुछ बनाना हो, जितना बनना हो, यह वक्त भागा जा रहा है, बनलें, दिल में कोई हविश बाकी न रह

जाय ! फिर ऐसा वक्तकब नसीब हो ! कौन जानता है—नसीब हो—न भी हो ! अच्छा, मैं चली और आपसे कुछ कहना नहीं है—और आपसे मैं कुछ आशा नहीं रखती……मेरा नमस्ते लीजिए, इन बातों पर ठंढे दिल से फिर कभी विचार कीजिएगा, अगर मेरी कभी जरूरत महसूस हो तो मैं हाजिर हूँगी……

अभया तीर की तरह बाहर निकल पड़ी, आनंद से कुछ कहते न बना। अभया उसके मुंह पर इतनी बातें कर गईं, वह कान पटाकर सुनता रहा, उसके चले जाने पर भी वे बातें अब भी उसके कानों में उसी तरह गूँज रही हैं। वह उसी तरह शून्य दृष्टि से बाहर की ओर देखता रहा—जाने कबतक देखता रहा…

अभया वहाँ से चलकर सीधे राजा बाबू की हवेली में गई, वह चाची से मिली, भाभी से मिली ; पर रुकी नहीं, केवल थोड़े से शब्दों में मृणाल और आदित्य का समाचार सुना गई, वह राजा बाबू से मिलना चाहती थी, पर उनसे भेंट न हुई, वह ठहरी नहीं, उसे घर-घर घूमना था, उसे पता लगाना था कि कहाँ कैसा गुजरा है, कहाँ कौनसी मुसीबत अब तक है। वह जहाँ जाती है, प्रश्नों की झड़ी लगा देती है, और उत्तर में जो-कुछ सुन पाती है, सुनकर चल देती है। इस तरह घूमते-फिरते वह एक गाँव से दूसरे में, दूसरे से तीसरे में पहुँच कर चंपी के घर जा पहुँचती है ; पर चंपी दीख नहीं पड़ती, वह लौट पड़ती है, अब वह कहाँ जाय—सोचकर उसका पाँव आगे नहीं उठता, वह कुछ थमक जाती है, तभी एक ओर से चंपी दौड़ी हुई आती है और आकर बोल उठती है—कब आईं अभया बहन, कब आईं ?

—कल शाम को आई हूं, चंपी, सब कुशल तो है?—अभया बोल कर उसकी ओर देखने लगती है।

चंपी की आँखों में आँसू आ जाते हैं, उसका गला रुद्ध हो जाता है और रुद्ध गले से ही वह बोल उठती है—कुशल तो उनके साथ ही चली गई, अभया बहन!

—तो क्या मंगल नहीं है? क्या हुआ था उसे?

—हुआ था क्या—सो मैं पीछे कहूंगी, अभया बहन!—चंपी चारो ओर देखते हुए बोल उठी—आओ, मेरे साथ, घर पर आओ, रास्ते-पैंड़े में तो यह सब बात कही नहीं जा सकती!

चंपी आगे-आगे बढ़ी, पीछे-पीछे अभया चली। चंपी अपने आँगन में आकर ओसारे पर एक टूटी-सी खाट डालकर उसे बैठने को कह कर उसके सामने खड़ी हो रही, जब अभया बैठ गई, तब चंपी ने कहा—वह तो बहादुर थे, बहादुरों की ही मौत मरे! दारोगा की गोली का शिकार सबसे पहले उन्हीं को तो होना पड़ा, जब थाने पर······

और न सुनाओ चंपी,—अभया सहानुभूति के स्वर में बोल उठी—यही तो बड़ी दुखद बात है!

—क्या कहती हो अभया बहन, यह दुखद बात है!—चंपी गम्भीर होकर बोल उठी—नहीं, यह तो गलत बात है! मरना किसे नहीं है बहन, मगर इसतरह बहादुरी की मौत वही मरता है जिसका कलेजा उतना ही मजबूत रहता है! कुत्ते-बिल्ली की मौत भी कोई मौत है अभया बहन! वैसी मौत तो हिजड़े पसन्द करते हैं, मर्द नहीं! वह शराबी जरूर थे, जुआड़ी जरूर थे, मगर वह मरना भी जानते थे। जबतक आश्रम में काम करते रहे, शराब

हाथ से न छुई, अपने आका के वफादार बन कर ही रहे। चाहे गलती समझो-चाहे सही, वह मजमें में सामिल हुए, उस समय विरजू बाबू आश्रम में न थे—कहीं बाहर थे, शायद वे मौजूद रहते तो वे उन्हें रोक लेते; मगर रोक कैसे और कौन सकता था, जब कि उन्हें इसी राह से मौत के घाट उतरना था। विरजू बाबू अब भी उनके लिए दुखी हैं······

—क्या ब्रजेन बाबू से तुम्हारी भेंट होती है?

चंपी इस बार मुस्कराई और मुस्करा कर ही बोली—भेंट कैसे न होगी, उनकी (मंगल की) जगह मैं ही तो उनके काम आ रही हूँ, अभया बहन!

—यह तो बड़ी अच्छी बात सुनाई तुमने, चंपी! अभया उसकी पीठ थपथपाती हुई उल्लास में बोल उठी—तो क्या उनसे भेंट हो सकेगी? वे कहाँ हैं?

—कहाँ हैं, यह बतलाना तो मेरे लिए भी मुश्किल है, अभया बहन!—चंपी बोलती चली—वह तो एक जगह टिक कर रहते नहीं; जान कितनी जोखिम में है—तुम खुद समझ सकती हो! मगर जब उनसे भेंट होगी, तुम्हारे बारे में कहूंगी और खुद मैं तुम्हें खबर पहुंचाऊँगी······समझीं।

—अच्छी बात है, चंपी—अभया इसबार उठ पड़ी और उठते हुए बोल उठी—जरूर मुझे खबर देना चंपी, भूल न जाना।

—यह क्या कहती हो, अभया बहन—भूल जाऊँगी? और तुमको?

इस बार अभया बाहर की ओर चल पड़ी, दरवाजे तक चंपी पहुंचाने आई और उससे अलग होने के समय वह धीरे से बोल

उठी—देखना, अभया बहन, दूसरों को इस बात का जरा भी पता न लगे ! कौन दोस्त है और कौन दुश्मन—इस वक्त समझना मुश्किल है।

अभया हँस पड़ी और हँसती-हँसती ही बोली—ठीक है, री चंपी, ठीक है, मगर खातिर जमा रखो·········

अभया वहाँ से निश्चित होकर घर की ओर चल पड़ी।

एकविंश परिच्छेद

कौन दोस्त है और कौन दुश्मन !—चंपी की बात अब भी अभया के कानों में गूंज रही है। विद्रोह जब फूट कर निकलता है तब वह स्वयं फैसला सुना जाता है कि सावधान रहो, दुश्मन उतनी हानि नहीं पहुँचा सकता, जितना दोस्त पहुँचा सकता है ! मगर यह बात सर्वांश में सच्ची नहीं कही जा सकती, संभव है, अधिकांश में यह ठीक हो भी, पर कुछ ऐसे भी दोस्त जरूर मिलते हैं, जो शांति काल से अधिक भयंकर स्थिति में ही सबसे ज्यादा काम आते हैं और मर कर काम आते हैं। जिस ब्रजेंद्र पर गाँववाले एक दिन अपना सर्वस्व न्यौछावर करने में अपना गौरव समझ रहे थे, आज विपत्ति काल में पड़े उसी ब्रजेंद्र को कोई अपने घर आश्रय देने में भी आगा-पीछा करते हैं—आगा-पीछा ही नहीं, अधिकांश आदमी तो यही चाहते हैं कि कब वह किनारे लगे और कब गाँव शांत हो ! पर जब वह ब्रजेंद्र हठात् किसी के घर आ पहुँचता है, तब वह मुंह पर कुछ नहीं कह सकता, बल्कि उसका समादर ही करता है और जो कुछ वह आज्ञा करता है, उसे पूरा करने में भी नहीं हिचकता। अभया गाँव में आकर—चक्कर लगाकर ये सब बातें जान गई है ! उसे इन बातों पर हँसी नहीं आती, दुख होता है ! दुख होता है इसलिए कि मनुष्य अपने स्वार्थ के सामने कितना जल्द घुटने टेक देता है !

मगर ब्रजेंद्र आज जितना ही लांछित है, उपेक्षित और विताड़ित है, उतना ही अभया उसके प्रति सजग है, उतना ही उसके प्रति वह सदय भी। पर ब्रजेंद्र है कि वह उसे ऐसा अवसर ही नहीं देना चाहता। वह नहीं चाहता कि वह अभया को अपने स्वार्थ के लिए विपत्ति में डाले, उसका जीवन संकटापन्न बनाया जाय। वह जिस संकट से अपने आप गुजर रहा है, जिन कष्टों के बीच उसके प्राण घिरे हैं, वह चाहता है कि उसका संपूर्ण उपभोग वह स्वयं करे—उसमें किसी का हिस्सा न बटाए। मगर, इन कष्टों के बीच रह कर भी वह किसी का अनिष्ट नहीं चाहता, उसके जीवन का जो मिशन है, उस पर वह अब भी अडिग है, अचल है! वह पूर्ण रूप से सेवा-व्रती है, पूर्ण रूप से स्वाधीनता का परम पुजारी है। वह जब कभी गाँव आता है तो उसका मतलब साफ है कि वह अपने लिए नहीं आया है, किसी और के लिए आया है—जो बिलकुल निःसहाय है, निःसंबल है—नितांत निःस्व है। उसके सामने उपेक्षा कोई मूल्य नहीं रखती, उपहास कोई अर्थ नहीं रखता। वह इससे ऊपर है—बहुत ऊपर! वह उपेक्षित जीवन को इसलिए नहीं ढोता कि उसे मरने से भय लगता है, वरन इसलिए वह उपेक्षित हो कर भी जीना चाहता कि उसका जीवन किसी और के लिए वास्तव में जीवन हो उठा है। वह अपने अपेक्षितों के लिए उपेक्षाओं को मुक्तावली की तरह गले का हार बना कर रखना चाहता है और इसीलिए जी रहा है, उसके जीवन का यही एक लक्ष्य है—यही एक उद्देश्य है......

अभया प्रतीक्षा लगाए बैठी है, वह घर से बाहर नहीं निकलती —नहीं निकलती इसलिए कि कब चंपी कोई खबर लेकर

आ जाय और उसे न पाकर खाली हाथ लौट जाय। मगर चंपी का पता नहीं! वह चंपी पर झुंझलाती है, मन-ही-मन बिगड़ती है, पर बिगड़कर भी चंपी को वह पा नहीं रही। तो क्या ब्रजेन्द्र इन दिनों चंपी से मिला नहीं? तो फिर वह है कहाँ? कहाँ जा छिपा है वह? कौन बतायगा कि वह है कहाँ......

एक रात को जब वह खा-पी कर बिछावन पर आ लेटी है, येही प्रश्न बार-बार उसके सामने आते हैं, पर इनका समाधान वह कर नहीं पा रही! इसी अवस्था में वह अपने पिता के कमरे में आ पहुँचती है और आतेही बोल उठती है—क्या ब्रजेन्द्र का कुछ पता न दे सकोगे बाबूजी? एक बार भी तो उनसे भेंट हो जाती......

डा० स्वरूप तकिए के सहारे उढँग कर बैठते हुए बोल उठते हैं—ब्रजेन के बारे में कह रही हो अभय? सच तो, इन दिनों तो उसका कुछ पता नहीं चलता..... वह गाँव में आया होता तो जरूर मुझे खबर लग गई होती; मगर इतनी व्यग्र क्यों हो अभय? वह खुद चौकस रहने वाला आदमी है, जहाँ कहीं होगा—आराम से होगा......उसके लिए चिंता कैसी? चिंता तो उसके लिए करनी चाहिए जो निरीह है, कमजोर है।

उसी समय अभया को उस दिन की बात याद हो आती है जब मिलिटरी का जत्था रास्ते में कहता जा रहा था गोली लगने की बात—और उसी के आधार पर चिंतित होकर अभया बोल उठती है—यह तो मैं भी जानती हूँ कि वह कमजोर नहीं हैं, जहाँ कहीं होंगे, आराम से होंगे; मगर मुझे तो भय है, कहीं गोली के शिकार तो वह नहीं हो गए? सुना है, इधर एक आदमी पर, जब कि अंधकार

में भागा जा रहा था, किसी फौजी सिपाही ने गोली चलाई है—और शायद उसे लगा भी है......

—भगवान के नाम पर ऐसा न कहो, अभय—डा० स्वरूप स्थिर-शांत होकर बोले—वह कोई और हो सकता है, व्रजेन्द्र नहीं .....सच कहता हूँ. व्रजेंद्र नहीं !

इसके बाद कुछ क्षण तक डा० स्वरूप शांत होकर चुप हो रहे, फिर आप-ही-आप बोल उठे—यह जो आशंका तुम्हारे हृदय में घर कर गई है, वह शायद अस्वाभाविक नहीं। प्रियजनों के प्रति आशंकित हो उठना स्वाभाविक ही है, अभय !

अभया पिता के वचनों से प्रसन्न न हो सकी, वह लजाई और लज्जासे उसका मस्तक आप-से-आप अवनत हो गया। डा० स्वरूप ने एक वार उसकी ओर अपनी दृष्टि डाली, वह अबतक सिर झुकाए उसी तरह पड़ी थी, पिता की दृष्टि से वह छिपी न रह सकी। उन्होंने उस दृष्टि में जो कुछ पाया, वह स्वाभाविक था। उनका हृदय कुछ क्षण के लिए विह्वल हो उठा, फिर उन्होंने उसी क्षण के भीतर अपने को संयत किया, फिर वे बोल उठे—आशंका मुझे भी कुछ कम नहीं हो रही है, अभय; पर मैं इतना जरूर समझता हूँ कि व्रजेन अपना मिशन पूरा कर चुका है, उसके हृदय में अपनी मातृ-भूमि के प्रति कितना अनुराग है, वह उसके कार्य से स्पष्ट दीख रहा है! इतना त्याग कुछ साधारण त्याग नहीं अभय ! आज जिसओर से निकलता हूँ, उसकी ही चर्चा होती है; पर उसका मूल्य आँकने वाले आज कितने हैं ? ज़वाहर का पारखी कोई जौहरी ही हो सकता है, कुँजड़े नहीं ! यहाँ तो कुंजड़े ही कुंजड़े ठहरे, फिर

अगर वे अपनी दृष्टि से चाहे जो कहल, उसकी कीमत ही क्या ?

—मगर यही तो दुख की बात है, बाबूजी!—अभया अपने उत्तेजित स्वर में बोल उठी—जिसने अपनी सेवा अर्पित कर गाँवों में जान फूँकी, जीवन डाला, देखने और परखने की दृष्टि डाली, आज वे ही गाँव उनके प्रति घृणा प्रदर्शित करते हैं—इससे अधिक और क्या दुखद होगा, बाबूजी ? हमारा पतन साधारण पतन नहीं है। हम इतने गिरे हुए हैं कि कौन अच्छा है और कौन बुरा—अपने स्वार्थ के निकट इतना भी परख नहीं सकते! आज वह बागी समझा जाता है, देश का दुश्मन और जाने क्या क्या लोग उसे कहा करते हैं……

—यह उनका दोष नहीं, अभय, उनके संस्कार का दोष है—डा० स्वरूप शांत स्वर में बोल उठते हैं—वे क्षमा के पात्र हैं! जिन्हें समझने का ज्ञान नहीं, वे ऐसा कहते हैं तो इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। हीरा हीरा ही रहेगा और कंकड़ कंकड़ ही।

अभया और ठहर न सकी, वह अपने कमरे में आई और बिछावन पर लेट गई।

प्रातः काल हुआ। डा० स्वरूप अपने नित्य के कार्य-क्रम के अनुसार टहलने को निकल गए हैं। अभया उठी है, वह अपने नित्य-नैमेतिक कामों को पूरा कर अपनी फुलवारी में टहल रही है; लगता है, जैसे उसे और कोई काम करने को मिल नहीं रहा है। वह कहाँ जाय, क्या करे—कुछ निश्चय कर पा नहीं रही है। फिर भी वह निश्चिन्त होकर ही अपनी भाभी से मिलने को निकल पड़ी।

हाँ, अभया अपनी भाभी से ही मिलने आ गई है, उससे

आज बहुत-सी बातें कहनी-सुननी हैं। उसके सिवा दूसरा है ह
कौन, जो उसके हृदय के अत्यन्त निकट हो। भाभी प्रसन्न-वदन
है, हास्य मुखी है, विदग्ध-हृदया है, उसकी वाणी में सरसता औ
आँखों में मधुरिमा है। आज उसी भाभी के निकट आकर अभय
कुछ कहना ही चाहती है कि तभी भाभी स्वयं उससे कह बैठत
है—आजकल मेरी अभया बहन को जाने कैसे पर लग गए हैं वि
एक क्षण के लिए भी फ़ुर्सत नहीं मिलती। उस दिन मैं कितन
रोकती रही, मगर रुक न सकीं। क्या आदित्य बाबू के निक
जाकर यही सीख आईं, अभया बहन ?

अभया मुस्कराई और मुस्कराती हुई बोली—आदित्य मुझे
क्या सिखलाते भाभी, वे तो अभी निरे बच्चे हैं! सीखना तो
आपसे चाहती हूँ जो अपनी विद्या में किसी से सानी नहीं रखतीं।
कहिए, भाभी, और कितने दिन? कब आप मुँह मीठा करती हैं!

इस बार भाभी हँस पड़ी और हँसते हँसते ही बोली—इसक
जवाब मुझसे अधिक तो कोई डाक्टर ही दे सकता है! औ
आप तो स्वयं डाक्टर हैं......

—वाह, यह तो खूब कही भाभी!—अभया उसी तरह हँसती
हुई बोली—गठरी तो आप ढोएँ और वजन मैं बताऊँ ? ऐसा तो
कहीं देखा नहीं। मगर यह कहने से काम न चलेगा भाभी,
देखती हूँ, आप मिठाई खिलाना नहीं चाहतीं......

—मिठाई से कब इन्कार है?—सिर झुका कर हँसती हुई
भाभी बोली!

—मगर यही कह कर ठग न सकोगी, बहूरानी—हठात
चाची स्वयं वहां आकर बोल उठी—अभया बेटी आती हैं और

इसी तरह लौट जाती हैं, यह क्या ठीक है ? तुम केवल मीठी-मीठी बातों में इसे भुलाकर रखना चाहती हो बहूरानी—मैं खूब समझती हूँ ! मगर आज इस तरह मैं अपनी बेटी को कैसे जाने दूंगी ? देखो, जलपान तैयार हो चुका होगा—ले आओ ।

—मुझे इससे कब एतराज है, चाचीजी !—अभया हँसती हुई बोली—चाहे यहाँ खाऊँ चाहे वहाँ, बात तो एक ही है, चाची जी। खाना तो वहाँ भी मिल सकता है; मगर भाभी की मीठी बातें तो वहाँ नहीं मिल सकतीं ! जभी तो मैं उन्हें पाने को यहाँ दौड़ पड़ती हूँ ! क्यों, भाभी ?

इसबार भाभी और अभया दोनों हँस पड़ीं, चाची ने भी उस हँसी में योग दिया ।

भाभी हँसती हुई बाहर की ओर दौड़ पड़ी । इधर चाची ने मृणाल और आदित्य का सविस्तर समाचार जानना चाहा । सच तो यह कि इसे ही जानने के लिए वह स्वयं यहाँ आ पहुँची हैं । अभया ने भी इसे समझा और उसने एक-एक कर वहाँ की सारी बातें कह सुनाईं । चाची ने स्थिर-शांत होकर सारी बातें सुनीं और सुन कर बोल उठी—आदित्य कितना पागल है बेटी, क्या बताऊँ ! जो खाने-खेलने के दिन थे, वे दिन जेल में कटेंगे—यह कितना दुर्भाग्य है ! मगर मृणाल को देख कर मुझे और भी दुख होता है, एक पागल रहे तो रहे—दोनो के दोनो पागल ! मैं तो पहले से ही जानती थी—देश-सेवा कोई फैशन नहीं है, वह तो खाँड़े की धार पर चलना है ! मगर उस दिन मृणाल ने सुन कर हँस दिया था……

—मृणाल तो उस दिन भी हंस रही थी, चाचीजी, जब वह

जेल जाने के लिए कार पर आ बैठी।……और पागल होने की बात कहती हो, चाचीजी; पागल बने बगैर कुछ मिला भी है कहीं ?

—खाक मिला है !—चाची जरा खिन्न होकर ही बोली—उस दिन यहाँ के लोग भी तो पागल बने थे ! जाने कैसे-कैसे उत्पात न किए ! मगर नतीजा क्या निकला ? पुलिस और फौजी सिपाही चक्कर लगा रहे हैं, घुड़सवार आदमी को आदमी नहीं समझते ! लोगों पर मार पड़ी, बेगुनाह जेल में डाले गए…आज बेचारे ब्रजेन बाबू की कैसी दुर्दशा हो रही है ? छिपने को भी जगह नहीं मिलती ……

ब्रजेंद्र का नाम सुनकर अभया सजग हो उठी, उसे लगा कि वह क्यों यहाँ दौड़ी आई, शायद उसका समाचार लेकर चंपी इंतजार करते-करते थक न गई हो ? वह अब क्या करे, कैसे कहे अपनी चाची को, कि उ न अब जाना ही चाहिए। वह भीतर-ही-भीतर अत्यंत ही चंचल हो उठी, मगर चंचलता को छिपाए बोली—ठीक कहती हो चाची जी, पागलों को इसी तरह की सजाएँ मिलनी ही चाहिएँ।

इसके बाद झटपट अभया उठ खड़ी हुई और खड़ी होती हुई बोली—मैं बाबूजी से बगैर मिले ही आ गई थी चाचीजी, अभी मुझे घर जाना ही चाहिए।

—मगर, यह कैसे होगा, अभया बेटी, भाभी जो जलपान लाने गई है……

—जलपान उसी जगह जाकर कर लेती हूँ, चाचीजी !—अभया हँसती हुई बोली—जलपान क्या मैं यों ही छोड़ कर चली जाऊँगी ?—कह कर हँसती हुई अभया वहाँ से बाहर की ओर दौड़

पड़ी, ठीक उसी क्षण भाभी उधर से बहुत-सी चीजें थाली में भर-भरा कर उसी ओर आ रही थी, बीच रास्ते में ही अभया को आते हुए देख कर बोल उठी—मैं तो आ ही रही थी, अभया बहन...

मैं तो आपको ही देखने जा रही थी भाभी !—अभया हँस कर उसके पास आकर बोली—मैंने देखा कि भाभी चुपचाप वहीं बैठ कर खाने तो नहीं लगीं, क्यों न चल कर वहीं उन्हें पकड़ूँ !

—और आपने पकड़ ही लिया ?

दोनो एक दूसरे को देख कर हँस पड़ीं। मगर अभया हँसते-हँसते ही बोली—सुबह-सुबह मुझे जलपान करने की आदत नहीं, भाभी, मैं न खा सकूंगी। मगर आप तो यों ही मुझे छोड़ेंगी नहीं, तभी तो मुझे कुछ खा लेना पड़ेगा—कहकर अभया ने थाली उनके हाथ से लेली और झपट कर बरामदे की टेबिल पर उसे रख कर वह वहीं खड़ी-खड़ी खाने लगी। भाभी हँसती हुई बोलीं—इस तरह नहीं खाया जाता, अभया बहन.........

—इसी तरह खाया जाता है जरूरत पर, भाभी !—अभया मुस्करा कर ही बोली—फौजी सिपाही इसी तरह लड़ाई के मैदान में खाते हैं, यह तो सुना होगा भाभी ?

—तो क्या आप भी फौजी सिपाही हैं ?—भाभी हँस पड़ीं।

—कौन नहीं जानता—मैं फौजी सिपाही से कुछ कम नहीं हूँ !

फिर दोनो हँस पड़ीं। अभया सचमुच चंचल हो उठी थी, उसने बड़ी चतुराई से अपने लिए छुट्टी निकाली। वह वहाँ अटकी हुई न रह सकी, पानी पीकर मुँह पोछते-पोछते वह बाहर की ओर चल पड़ी। भाभी समझ नहीं सकी कि उसे इतनी जल्दी क्या है ! वह पनी जगह अचल-अटल खड़ी हो उसकी ओर देखती रही।

उपसंहार

घर लौट आने पर अभया को न तो चंपो मिली और न कोई समाचार ही; मगर उसने पाया कि उसके पिता बरामदे पर की आराम कुर्सी पर लेटे हैं, उनके सामने कुछ और लोग हैं, जो बीमार हैं, जिन्हें या तो दवा लेनी है या सलाह······अभया की ओर दृष्टि जाते ही डा० स्वरूप उत्कंठित हो बोल उठे—कहाँ से आ रहीं, अभय ?

—राजा चाचा की हवेली से बाबूजी, क्यों ?

—क्या तुम्हें मालूम है रात को रामपुर में घेरा पड़ा था, सुना है, गोली चली है ?

—रामपुर में !—अभया ने चकित-विस्मित होकर पूछा—किसने कहा, बाबूजी ?

—रास्ते में ही मालूम हो गया था अभय, जब मैं टहल कर वापस आ रहा था।

—तो क्या कोई मरा भी है ?

—मरा तो नहीं, मगर दो-एक को गोली जरूर लगी है।

—लगने दो इन अभागों को—कह कर अभया भीतर की ओर जा रही थी कि डा० स्वरूप ने कहा—ये पुर्जे लिए जाओ अभय, दवा दे दो।

अभया भीतर से ही बोली—भेज दो रोगियों को खिड़की पर बाबूजी, मैं वहीं जाती हूँ।

अभया के लिए यह अच्छा रहा, उसे काम मिल गया। इसी तरह वह अपने काम के भीतर अपने को कुछ घंटे लगाए रही। जब यह काम शेष हुआ, तब निश्चिंत से वह बाथ-रूम की ओर गई और बड़ी इतमीनान के साथ उसने स्नान किया, कपड़े बदले, केशों को सुखाया, तेल मले, कंघी की, फिर खाना खाया। इस तरह जब वह अपने सारे कामों से छुट्टी पा गई, तब वह अपने कमरे में आराम करने आई। उसे दिन को सोने की आदत न थी, इसलिए सोई नहीं, लेट-गोट करती रही, पर लेटे-लेटे ही उसे नींद हो आई और गहरी नींद........

और इस तरह जब उसने नींद पूरी कर आंखें खोलीं, तब झुट-पुटा हो चुका था। उसने आँखें खोलते ही पाया कि वहाँ तो चंपी जाने कब से आकर टेबिल के एक सिरे पर बैठी उसके उठने की प्रतीक्षा कर रही है! अभया धड़फड़ा कर उठ बैठी और उठते-उठते ही बोली—क्या हाल है री चंपी?

—हाल अच्छा नहीं है, अभया बहन!—चंपी उसके पास आकर कानों-कानों में बोली—उन्हें गोली लगी है, उनका बुरा हाल है, तुम्हारी बड़ी जरूरत है अभया बहन!

—मेरी जरूरत है उन्हें, यह क्या कहती हो चंपी?

—हाँ, ठीक कहती हूँ अभया बहन, तुम्हीं उन्हें बचा सकती हो।

—मगर वह है कहाँ अभी?

—सो मैं तुम्हारे साथ रहूँगी!

अभया कुछ क्षण मौन साधे जाने क्या सोचती रही, फिर आप-ही-आप बोल उठी—तो क्या करना होगा, चंपी! मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ।

—करना क्या होगा अभया बहन !—चंपी जरा मुस्काई—घबराओ नहीं, अभया बहन ! मैं जो कहती हूं सो सुनो। यहां से तो कोई सवारी पर चलो, मैं भी तुम्हारे साथ रहूँगी। कोई पूछे तो कहना—जगदीशपुर के ठाकुर साहब के घर बीमारी देखना है, वहाँ तो तुम गई ही हो, उन तक जाने में कोई दिक्कत है भी नहीं। वहाँ जाकर दूसरी सवारी का इंतजाम करना होगा। तुम तो घोड़े पर चढ़ती हो भी, तुम्हें कुछ दिक्कत न होगी, उनके हाथी पर भी जा सकती हो, जरा जंगल का रास्ता है.........मैं वहाँ कह भी आई थी, शायद अब तो सवारी आ भी जानी चाहिए.........

अभया उठ कर बाहर गई; मुंह-हाथ धोया, फिर अपने कमरे में आकर चीड़-फाड़ के औजारों को ठीक किया और कुछ आवश्यक दवाइयां अपने हैंडबेग में भर-भरा कर, कपड़े बदल कर वह तैयार हो उठी। सवारी आ चुकी थी, तब तक संध्या की छाया सघन भी न हो पायी थी कि अभया गाड़ी पर आ बैठी, चंपी को भी अपने पास ही बैठा लिया, गाड़ी यथा संभव तेज चाल में चल पड़ी। जगह-जगह आदमी तैयार थे, चंपी का काम अभया को एक हद तक पहुँचा देना था, वह गाड़ी से जगदीशपुर गाँव के बाहर ही उतारी गई, वहीं दो तेज घोड़े मिले, अभया गाड़ी से उतर कर चंपी से बोली—क्या तू मेरे साथ न जायगी चंपी ?

—नहीं, अब तो ये आपके साथ जायंगे, मैं नहीं।

अभया कुछ न बोली, वह घोड़े पर चढ़ी, दूसरा आदमी घोड़े पर चढ़ा, चंपी ने अस्त्र और दवा की पेटी उसे थमाई। वह आगे बढ़ा, अभया पीछे चली। दोनों अंधकार में बढ़ते रहे—बढ़ते रहे—अंधकार के सिवा और कुछ देखने में न आया। हां, जंगलों में

इधर-उधर कुछ सियार अवश्य भूँक-भूँक कर अपने अस्तित्व का परिचय दे रहे थे। अधिक नहीं, दो घंटे के भीतर वे लोग पद्मा के एक किनारे आकर रुक गए। अगला आदमी रुक कर बोल उठा—अब हमलोग नाव पर चलेंगे,—कह कर उसने टार्च की लाइट फेंकी··· प्रकाश में अभया ने देखा कि पास ही एक छोटीसी नाव बंधी पड़ी है, उसमें ऊपर से छप्पर डाला हुआ है, जिसके भीतर शायद दो-एक आदमी लेटे पड़े दीखे·········

उस आदमी ने कहा—उतरिए आप, घोड़े छोड़ दीजिए यहीं, आदमी है यहां, आकर बैठिए नाव पर·········

अभया आकर चुपचाप नाव पर बैठ गई, वह आदमी भी दवा की पेटी के साथ आ बैठा। नाव खोल दी गई। कई टेढ़ी-मेढ़ी दिशाओं को पार कर नाव एक जगह आ लगी। अभया ने अलग से ही देखा कि एक जगह से प्रकाश की क्षीण रेखा आ रही है, शायद वह जुगनू की कतार हो·········पर नहीं, वह जुगनू की कतार न थी, अभया की नाव वहां आकर टकराई, तब उसे पता लगा कि वह भी तो नाव ही है और तभी उसे भीतर से कराह की आवाज भी सुन पड़ी······

अभया इस नाव से चल कर उस पर गई, उस पर भी छप्पर डाला हुआ था और दरवाजे पर कपड़े के पर्दे पड़े हुए थे। अभया ने पर्दे को हटाया, भीतर घुसी, वहां उसने पाया कि व्रजेन मोटे गद्दे पर लेटा पड़ा है, उसके बदन के [illegible]न से वहां की जगह बुरी तरह पट रही है, उसके पास कुछ नौजव[illegible] बैठे प्रत्याशित दृष्टि से उसकी ओर देख रहे हैं। लैंप धीमी गति [illegible]ं जल रही है·········

अभया ने सब से पहले लैंप क[illegible] बत्ती तेज की और उसके तीक्ष्ण

प्रकाश में उसने एक बार व्रजेन की आकृति की ओर देखा, व्रजेन भी उसे देख कर प्रसन्न वदन कुछ बोलना ही चाहता था कि अभया स्वयं ही बोल उठी—यह क्या देख रही हूँ व्रजेन बाबू ?

—यही तो देखने को बुलाया है, अभय !—व्रजेन मुस्कराया और तकिए के सहारे उठने को उद्यत हुआ, मगर अभया ने उसे उठने न दिया, वह बोल उठी—नहीं, आप इसी तरह पड़े रहें, हिलना-डोलना आपके लिए ठीक नहीं।

अभया घाव की जगह को गौर से देखने लगी, देखा—कुछ घाव तो साधारण हैं सही, पर छाती का घाव बड़ा ही सांघातिक है। उसे देख कर अभया आप-ही-आप सिहर उठी ; पर उसने अपने को तुरत सजग किया और सजग होकर ही बोली—क्या आप बता सकेंगे कि सब से ज्यादा कहां दर्द है ?

—सब से ज्यादा तो छाती में ही है, अभय !—व्रजेन बोला—मेरा खयाल है, यहीं से पहले गोलियाँ निकाल दो। भीतर तीर की तरह टीस मार रही है.........

अभया ने अपनी पेटी मंगवाई और उन बैठे हुए लोगों से कहा—अगर आपलोगों को विशेष कष्ट न हो तो आपलोग उस नाव चले जाइए। मुझे अपने तरीके से ही अपना काम करना होगा और वह काम मैं अकेली ही अच्छी तरह कर सकूँगी।

वे सब-के-सब चुपचाप दूसरी नाव पर चले आए।

अभया ने अपनी साड़ी के पल्ले को अपनी कमर में लपेटा, पेटी खोली, औजार झनझना उठे, फिर उसने इंजक्सन की दवा निकाली, सिरिंज में भरी, उसे इंजेक्ट किया और तब वह हँस कर बोल उठी—आप डाक्टर की छुरी सह सकेंगे, व्रजेन बाबू ?

—जो बंदूक की गोलियाँ सह सकता है, वह क्या डाक्टर की छुरी सह नहीं सकेगा ?—ब्रजेन के ओठों पर हँसी आ गई—तुम्हें मैं अपनी ओर से अधिकार दिए देता हूँ, अभय, तुम्हें जहाँ चीरना हो, जिस तरह चीरना हो—चीरो, निर्भय होकर चीरो, मैं आह तक न लूंगा।

—आप से ऐसी ही आशा रखती हूँ, ब्रजेन बाबू !

अभया बड़ी मुस्तैदी से लग गई। उसके दोनों हाथ बड़ी तेजी से चल रहे थे, उसकी छुरी चल रही थी, अनेक छोटे-बड़े अस्त्र काम में लाए जा रहे थे ! वह इस तरह काम में लगी थी जैसे वह अपने आपको भूल चुकी है, वहां केवल खच-खुच के सिवा और जैसे कुछ सुन ही नहीं पड़ रहा हो। घावों से बड़ी सावधानता पूर्वक गोलियां निकाली जा रही हैं, मगर छाती का घाव कुछ साधारण नहीं ! यद्यपि ब्रजेन ने कह रखा है, कि वह सब कुछ सह लेगा, तथापि अभया सावधान है कि ऐसी अवस्था में उसे किस तरह काम लिया जाना चाहिए। और वह जो कुछ कर रही है, अपने प्रत्युत्पन्नमतित्व और पूर्ण निश्चिंतता के साथ ही कर रही है। अनवरत तीन घंटे के बाद अभया एक बार निश्चिंतता का साँस लेती और बोल उठती है—अब तो मेरा खयाल है, उस तरह का दर्द न होना चाहिए। क्यों ?

—ठीक कहती हो, अभय, अब मैं मरूंगा नहीं, जी गया, जी गया, अभय !—ब्रजेंद्र मुस्करा उठा।

ब्रजेन ने उठने की कोशिश की, पर अभया ने उसे बीच में ही रोक कर फिर से अच्छी तरह लिटाते हुए कहा—आप लेटे ही रहिए, अभी तो इन पर पट्टियां बांधनी जो हैं.........अभी काम पूरा हुआ कहाँ है ?

अभया अब क्षत स्थानों को साफ करती जा रही है और उसके साथ इधर-उधर की बातें भी हँस-हँस कर करती जाती है। इस तरह ब्रजेन का मन भी बहला रहा है और अभया का काम भी पूरा हो रहा है। इसी तरह बात-ही बात में अभया पूछ बैठती है—अगर मैं बाहर से घर पर न आगई होती तो आज यह काम कौन करता, ब्रजेन बाबू ?

ब्रजेन हँस पड़ता है और हँसते-हँसते ही कहता है—तुम रुक कैसे सकती थीं, अभय ? विल-फोर्स (आत्म-शक्ति) की बात तो तुमने पढ़ी ही होगी ?

—ओह, जाना !—अभया जरा भवों पर बल डालती हुई कहती है—क्या आपका विल-फोर्स इतना जबर्दस्त है कि······

—सो मैं कैसे कहूँ,—बीच में ही बात काट कर ब्रजेन बोल उठता है—मेरा ज्यादा है या तुम्हारा ? मुझे लगता है कि, तुम्हारा ही विल-फोर्स काम कर गया, अभय नहीं तो मैं तुम्हें एक तरह से भूल ही बैठा था, तुम्हारी याद भी न रही इन दिनों। और याद रख कर ही क्या करता, जब कि तुम्हारी अनुपस्थिति में यहां सब कुछ हुए, मैं स्वयं इसमें उलझा, भागा-भागा फिरा, काम तो कुछ रह भी नहीं गया है, सारी कांग्रेस जेल के सीखचों में बंद है, कुछ मुझ जैसे अभागे इधर-उधर डोल रहे हैं; मगर उनकी सुनता ही कौन है ?···फिर तुम याद आतीं कैसे ?

—मगर मैं आई कैसे ?

—जभी तो मैं कह रहा था—ब्रजेन मुस्कराया—जानती हो अभय, मरने के समय सबसे अधिक वही याद आता है जो सबसे अधिक आत्मीय है ! तुम नहीं जानतीं—तुम्हारे प्रति मेरे हृदय में

कितना आदर है ! वह इसलिए नहीं कि तुम अच्छी कार्यकर्त्ता रहीं, इसलिए नहीं कि, तुम विदुषी हो, इसलिए नहीं कि, तुम्हें भगवान ने अपने हाथों रचने में कोई कंजूसी नहीं की है; पर इसलिए कि मुझे लगता है, तुम मेरे लिए ही ऐसी तैयार होकर आई थीं। मैं तुमसे बहुत बार झगड़ चुका हूं, बहुत बार तुम्हारी झिड़कियाँ भी सही हैं ; पर मैंने तभी यह भी पाया है कि, कोई है जो मेरे हृदय के भीतर घुस कर कह रहा है कि मैं यहाँ हूँ, यह जगह मेरी है.........

व्रजेंद्र कुछ क्षण चुप साधे पड़ा रहा, फिर अभया का हाथ अपनी छाती पर रखते हुए वह बोल उठा—देखो, अभय, यहीं जो देख रही हो जिस जगह से तुमने कुरेद-कुरेद कर गोलियाँ निकाली हैं—क्या तुम नहीं पातीं कि वहाँ वह तुम्हारे भीतर की चीज घुस कर पड़ी हुई है.........

व्रजेंद्र अभया की तलहथी को अब तक छाती पर रखे हुए है, अभया उसे वहाँ से हटाती नहीं, पर बोल उठती है—तुम्हारी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं, तुम क्या कह रहे हो ? मगर तुम चुप रहो, तो अच्छा !

इस बार व्रजेंद्र खिलखिला कर हँस पड़ता है और हँस कर ही कहता है—चुप तो हो लूंगा अभय, मगर इस समय नहीं ! आज हमलोग जिस क्षण में मिल रहे हैं, वह क्षण क्या फिर कभी आने वाला है ?...इस जीवन में...... इस जीवन में !

—यह पागलपन की बात न सुनाओ, व्रजेन ! लेट जाने की कोशिश करो, ज्यादा बोलना अच्छा नहीं ! मैं कहे देती हूँ—मैं कुछ नहीं सुना चाहती !

—क्या सच कह रहीं, अभय, सुना नहीं चाहतीं ? सच कहती

इतनी ममता है, उसका मूल्य जन-साधारण की दृष्टि में क्या रह गया है ? क्या देश-सेवा का यही मूल्य है ? हाँ, यही तो—यही तो ! जभी तो इसे आज छिपने के लिए जगह नहीं मिलती, आश्रय नहीं मिलता, न कोई अपेक्षा, न उपचार हो, न सगे-संबंधी, न हित-मित्र ! अभया इससे अधिक सोच नहीं सकती, उसका हृदय वितृष्णा से भर उठता है और जितना ही वितृष्णा से भर उठता है, उतनी ही उस उपेक्षित व्रजेंद्र के प्रति उसकी श्रद्धा उमढ़ पड़ती है। इसी समय सहसा व्रजेंद्र सजग हो उठता है और सजग होकर ही बोल उठता है—तुम्हें याद है अभय ? एक दिन प्रथम-प्रथम मैं गया था तुम्हें आमंत्रित करने को ? याद है तुम्हें—याद है ?

—हाँ, याद है।

—हाँ, याद तो होगी ही। वह एक चिर स्मरणीय घटना है ! तुमने एक दिन मेरा आमंत्रण स्वीकार किया था अभय, और मैं धन्य हुआ था तुम्हारी स्वीकारोक्ति को सुन कर। वह तुम्हारा मुझ पर अतिशय अनुग्रह था और वह अनुग्रह मैं एक-रस आज तक तुमसे पाता रहा। लगता है, वह आमंत्रण आज पूरा हो रहा है ! उस दिन मैं ही क्या जानता था कि वह आमंत्रण आज तुम इस रूप में पूरा करोगी !

अभया इस बार और भी सशंकित हो उठती है। वह समझ नहीं पाती क इन अनर्गल बातों का क्या उत्तर दे उसे। वह अपने आप में व्यथित हो उठती है, और उसी व्यथा को लेकर बोल उठती है—क्यों तुम इस तरह अनर्गल बके जा रहे हो ? नींद लाने का प्रयत्न करो !—यह कह कर अभया बड़े स्नेह के साथ धीरे-धीरे उसकी छाती सहलाने लगती है।

व्रजेन्द्र की आकृति प्रसन्न दीखने लगती है और प्रसन्न-वदन ही वह बोल उठता है—तुम्हारे स्पर्श-मात्र से मेरे हृदय में कितनी शांति मिल रही है अभय ? ओह, यह स्पर्श...यह स्वर्गिम स्पर्श...अभय...अभय यह स्पर्श !......व्रजेंद्र भावावेश में आ जाता है और उसे अपनी ओर खींच लेता है। वह उसकी छाती पर झुक पड़ती है, व्रजेंद्र का हाथ उसकी पीठ पर आ पड़ता है और उसे अपनी उंगलियों से थपथपाते हुए बोल उठता है—इसी तरह मेरी छाती पर पड़ी रहो, अभय ! ओह, कितनी ज्वाला थी यहाँ ? मगर तुम्हारा स्पर्श...तुम्हारा स्पर्श...छाती ठंढी हुई जा रही है ! ओह, एक बात कहूँ अभय ? अभय, तुम कितनी मेरी अपनी हो ! मैं नहीं जानता था कि तुम मेरे हृदय के इतने निकट हो ! मगर, हाँ, अभय, एक बात कहूँ ? कहूँ अभय ? मानोगी ? बोलो ? बोलो ?

अभया मंत्र-मुग्ध की तरह टकटकी बाँधे उसकी ओर देखती हुई बोल उठती है—कहो, क्या कहते हो।

—क्यों, संकोच तो नहीं कर रहीं अभय ?

—नहीं।

—तो एक बार प्रिय कह कर मुझे पुकारो न, अभय ! प्रिय, हाँ, बस इतना ही।

इस बार अभया की आँखें आँसुओं से छलछला उठती हैं, उसका सारा शरीर काँप उठता है और काँपते हुए स्वर में वह कहती है—नहीं-नहीं, प्रिय नहीं !

व्रजेंद्र विहँस उठता है, उसकी आकृति विहँस उठती है और उसी रूप में वह बोल उठता है—मैं इतने से ही धन्य हुआ, प्रिय ! मेरे

में······आकाश में, अंतरिक्ष में······बाहर-भीतर—सर्वत्र! वह अग्नि...वह लपलपाती हुई आग···हाँ, वह आग जो सदियों से राख बनी पड़ी है, उसे बड़ी मुश्किल से संजोया है,...बड़ी मुश्किल से हमारे देश-बंधुओं ने इसके महत्व को समझा है······अभय .. वह आग...मैं चाहता हूँ, वह बलती रहे, धधकती रहे, वह बुझने न पाय······मैं हिन्दू हूँ और आर्य-शास्त्रों को मैं जानता हूँ—श्रद्धा भी करता हूँ, मुझे पुनर्जन्म पर विश्वास है। मैं जबतक फिर लौट कर नहीं आता तबतक यह आग······प्रतिक्षण...प्रतिपल जलती रहे···यह मेरी अंतिम साध है···

व्रजेन इससे अधिक न बोल सका, उसकी आँखें अभया की ओर लगी हैं जिनमें स्पष्टतः एक जिज्ञासा है। अभया एक बार उसकी ओर देखती है और अपनी अभय-निर्भय वाणी में वह बोल उठती है—तुम्हारी आज्ञा मेरी सिर-आँखों पर! मैं प्रयत्न करूंगी, प्रिय! प्रयत्न करती चलूंगी······जिससे यह आग बुझने न पाय।

—क्या सच अभय? ऐसा कर सकोगी?

—हाँ, सच मानो, अभया एक बार 'हाँ' कह कर 'ना' कहना नहीं जानती। जबतक आपकी अभया जीती रहेगी—इस आग को अपनी आत्मा को तरह संजोए रहेगी······यह अग्नि ही आज से इसकी देवता रही, यही धर्म और यही कर्म! तुम विश्वास मानो, प्रिय...इसके लिए चाहे जो भी कुर्बानी मुझे···चाहे जो भी बलिदान······सच मानो, यह आग बुझने न पायगी।

—हाँ, बुझने न पाय!

व्रजेंद्र की आँखें प्रसन्नता से चमक उठती हैं। लगता है जाने